॥ सूचना ॥

दूसरे [illegible] में इस पुस्तक का दाम दो आना घटा दिये [illegible] परन्तु पृष्ठों की संख्या कम देखकर यह न समझिये कि उतने शब्द भी निकाल दिये गये हैं। ऐसा नहीं है क्योंकि सिवाय एक क्षेपक शब्द के (जो सहजो बाई का है और उनकी पुस्तक में छपा है और दो शब्द जो भूल से दो बार छप गये थे और तीन झूलने जो "ज्ञान गुदड़ी रेख़्ते और झूलने" की नई पुस्तक में छप रहे हैं) एक शब्द भी नहीं छोड़ा गया है। पृष्ठों की कमी पंक्तियों के बीच की जगह घटा देने और जहाँ हो सका दो पंक्तियों की एक पंक्ति कर देने से की गई है। इस नये छापे में कितनी ही त्रुटियाँ पाठ और शब्दों के अर्थ की शुद्ध कर दी गई हैं और नये नोट (टिप्पनी) भी देदिये गये हैं जैसा कि पुराने और नये छापे के मिलान करने से जान पड़ेगा॥

॥ सूचीपत्र ॥

शब्द

अ

उ

ऋ

शब्द | पृष्ठ

ए

ऐ

क

ख

शब्द पृष्ठ

ग

च

छ

ज

शब्द	पृष्ठ

शब्द पृष्ठ

र

शब्द पृष्ठ

ल

व

स

शब्द 	पृष्ठ

शब्द | पृष्ठ

ह

ज्ञ

कबीर साहेब का जीवन-चरित्र

संसार का कुछ ऐसा नियम सदा से चला आया है कि किसी महापुरुष के जीवन समय में बहुत कम लोग इस बात के जानने की परवाह करते हैं कि वे कहाँ पैदा हुए, कैसी उनकी रहनी गहनी है, क्या उन में विशेष गुण हैं और क्या गुप्त भेद मालिक और रचना का प्रकाश करने और परमार्थ का लाभ देने के लिये उन्हों ने जीवन धारन किया है। लेकिन जब वे इस पृथ्वी को छोड़ देते हैं और उन का अद्भुत तेज जिस से संसार के तिमर हटाने का लाभ प्राप्त होता था गुप्त हो जाता है तब बहुत से लोग नींद से जाग उठते हैं और उन महापुरुष के सम्बन्ध में अपनी बुद्धि के अनुसार तरह २ की कल्पनायें करने लगते हैं और बहुत सी बातें बढ़ावे के साथ या नई गढ़कर मशहूर करते हैं। इन्हीं कारनों से प्राचीन महात्माओं का विशेषकर उन का जिन की बाबत उन के समय के लोगों ने कुछ नहीं बयान किया है ठीक ठीक जीवन-चरित्र लिखना बहुत कठिन हो जाता है।

कबीर साहेब का जीवन-चरित्र भी इन्हीं कारनों से ठीक रीति से नहीं लिखा जा सक्ता परंतु जहाँ तक मालूम हुआ वह संक्षेप में नीचे लिखते हैं।

ऐसा जान पड़ता है कि कबीर साहेब सिकंदर लोदी बादशाह के समय में वर्तमान थे। भक्तमाल और दूसरे ग्रंथों में लिखा है कि सिकंदर लोदी ने कबीर साहेब के मरवा डालने का यत्न किया था, इस बात का इशारा कीन साहेब की पुस्तक "टेक्स्ट बुक आव इन्डियन हिस्टरी" में भी किया है।

"कबीर कसौटी" नाम की पुस्तक में एक साखी इस प्रकार की है:—

पन्द्रहसौ पचहत्तरा, कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन॥

इसके अनुसार विक्रम सम्वत १५७५ अर्थात सन १५१८ ईसवी में कबीर साहेब का देहाँत हुआ। सिकंदर लोदी १५१० ईसवी में मरा था इस से पक्का अनुमान होता है कि कबीर साहेब सिकंदर लोदी के समय में थे। "कबीर कसौटी" में कबीर साहेब की अवस्था देहांत के समय १२० बरस की होना लिखा है यदि यह ठीक है तो कबीर साहेब का जन्म सम्वत १४५५ अर्थात १३९८ ईसवी में ठहरता है।

कबीर साहेब के पिता का नाम नूरअली और माता का नाम नीमा था जो काशी में रहते थे। किसी किसी का कथन है कि नीमा के पेट से कबीर साहेब पैदा हुए परंतु विशेष कर ऐसा कहा जाता है कि नूरअली जुलाहा गंगा नदी अथवा लहरतारा तलाव के किनारे सूत धो रहा था कि उस को एक बालक बहता दिखाई दिया उस ने उसको निकाल लिया और अपने घर लाकर पाला पोसा। पंडित भानुप्रताप तिवारी चुनारगढ़ निवासी जिन्हों ने इस विषय में बहुत खोज किया है उन के अनुसार कबीर साहेब की असल मा एक हिन्दुनी विधवा थी जो सन १४१४ ईसवी में रामानंद स्वामी के दर्शन को गई। डंडवत करने पर रामानंद जी ने अशीर्वाद दिया कि तुम को पुत्र हो। स्त्री घबरा कर रोने लगी कि मैं तो विधवा हूँ मुझे पुत्र क्योंकर हो सकता है। रामानंद जी बोले कि अब तो मुँह से निकल गया पर तेरा गर्भ किसी को लखाई न पड़ेगा। उसी दिन से उस विधवा को गर्भ रहा और दिन पूरा होने पर लड़का पैदा हुआ जिसे उसने लोक निन्दा के डर से लहरतारा के तलाव में डाल दिया जहाँ से उसे नूरू जुलाहा निकाल कर लाया। कबीर कसौटी के अनुसार जेठ को बड़सायत सोमवार के दिन नीरू ने बच्चे को पाया।

बालपने ही से कबीर साहेब ने बानी द्वारा उपदेश करना आरम्भ कर दिया था। ऐसा कहते हैं कि कबीर साहेब रामानंद स्वामी के जो रामानुज मत के अवलंबी थे शिष्य हुए। यद्यपि कबीर साहेब स्वतः संत थे और उनकी गति रामानंद स्वामी से कहीं बढ़कर थी तौ भी गुरू धारन करने की मर्यादा क़ायम रखने को उन्हों ने इन को गुरू बना लिया। कहते हैं कि रामानंद स्वामी को अपने चेले की कुछ ख़बर भी न थी। एक दिन वह अपने आश्रम में परदे के भीतर पूजा कर रहे थे, ठाकुर जी को स्नान करा के बस्त्र और मुकट पहिरा दिया परंतु फूलों का हार पहिराना भूल गये, इस सोच में पड़े थे कि यदि मुकट उतार कर पहिरावें तो बेअदबी है और मुकट के ऊपर से माला छोटी पड़ती थी कि इतने में ड्योढ़ा के बाहर से आवाज़ आई कि माला की गाँठ खोल कर पहिरा दो। रामानंद स्वामी चकित हो गये और बाहर निकल कर कबीर साहेब को गले लगा लिया और कहा कि तुम हमारे गुरू हो।

कबीर साहेब के रामानंद जी का शिष्य होने से यह न समझना चाहिये कि वह उन के धर्म के अनुयायी थे-उन का इष्ट सत्य पुरुष निर्मल चैतन्य देश का धनी था जो ब्रह्म और पारब्रह्म सब से ऊँचा है। उसी की भक्ति और उपासना उन्हों ने दृढ़ाई है और अपनी बानी में उसी परमपुरुष और उस के धुन्यात्मक "नाम" की महिमा गाई है और इस के व्यतिरिक्त जो शब्द कबीर साहेब के नाम से प्रसिद्ध हैं वह पूरे या थोड़े बहुत क्षेपक ह।

कबीर साहेब ने कभी किसी प्रचलित हिन्दू या मुसलमान मत का पक्ष नहीँ किया वरन सभोँ का दोष बराबर दिखलाया। उन का कथन है :—

हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपस मेँ दोउ लड़े मरत हैँ, दुविधा मेँ लिपटाना॥
घर घर मंत्र जो देत फिरत हैँ, महिमा के अभिमाना।
गुरुवा सहित शिष्य सब डूबे, अंत काल पछिताना॥

कहते हैँ कि रामानंद स्वामी ने जो कर्मकांड पर भी चलते थे एक बार अपने पिता के श्राद्ध के दिन पिंडा पारने को कबीर साहेब से दूध मँगाया। कबीर साहेब जाकर एक मरी गाय के मुँह में सानी डालने लगे। यह तमाशा देख कर उन के गुर-भाइयोँ ने पूछा कि यह क्या कर रहे हो मरी गाय कैसे सानी खायगी! कबीर साहेब ने जवाब दिया कि जैसे हमारे गुरूजी के मरे पुरखा पिंड खायँगे।

मांस, मद्य वरन हर प्रकार के नशे का कबीर साहेब ने अपनी बानी मेँ निषेद किया है।

कबीर साहेब जुलाहा के घर मेँ तो पले थे ही और आप भी कपड़ा बुनने का काम करते थे। वह गृहस्थ आश्रम मेँ थे, और भेषोँ के डिम्भ पाखंड और अहंकार को बहुत निंदनीय कहा है। कबीर साहेब की स्त्री का नाम लोई और बेटे और बेटी का कमाल और कमाली था। किसी २ ग्रंथकारोँ का कथन है कि कबीर साहेब बालब्रह्मचारी थे और कभी ब्याह नहीँ किया, एक मुर्दा लड़के और लड़की को जिलाकर उनका नाम कमाल और कमाली रक्खा और उनके पालन का भार लोई को जो उनकी चेली थी सौँप दिया पर यह ठीक नहा जान पड़ता।

जो कुछ हो लोई कबीर साहेब की सच्ची और ऊँचे दर्जे की भक्त थी। एक बार का ज़िकर है कि कबीर साहेब ने किसी खोजी को भक्ति का उदाहरण दिखाने के लिये अपने करगह में जहाँ वह लोई के साथ दोपहर को ताना बुन रहे थे धीरे से ढरकी अपनी बँहोली मेँ छिपा ली और लोई से कहा कि देख ढरकी गिर गई है उसे ज़मीन पर खोज। वह उसे तुर्त ढूँढ़ने लगी आख़िर को हार कर काँपती हुई उसने अर्ज़ की कि नहीँ मिलती। इस पर कबीर साहेब ने जवाब दिया कि तू पागल है रात के समय बिना दिया बाले ढूढ़ती है कैसे मिलै। अपने स्वामी के मुख से यह वचन सुनतेही उस को सचमुच ऐसा दरसने लगा कि अँधेरा है, बत्ती जलाकर ढूढ़ने लगी जब कुछ देर हो गई कबीर साहेब ने

ग़फ़ा होकर कहा कि तू अंधी है देख मैं ढूँढ़ता हूँ और उस के सामने उसकी चँगोली से गिरा कर फिर उठा लिया और उसे दिखा कर कहा कि कैसे झटपट मिल गई। इस पर लोई रोकर बोली कि स्वामी छिमा करो न जानें मेरी आँख में क्या पत्थर पड़ गये थे। तब कबीर साहेब ने उस जिज्ञासू से कहा कि देखो यह रूप भक्ति का है कि जो भगवंत कहें वही भक्त को वास्तविक दरसने लगे।

बहुत सी कथायें कबीर साहेब की बाबत प्रसिद्ध हैं जिन का लिखना अनावश्यक है क्योंकि वह समझ में नहीं आतीं। इस में संदेह नहीं कि भक्त-जन सर्व समर्थ हैं और उन के लिये कोई बात असंभव नहीं है पर इसी के साथ यह भी है कि संत करामात नहीं दिखलाते अपने भगवंत को भाँति अपने सामर्थ्य को प्रायः गुप्त रखते और साधारन जीवों की तरह संसार में बर्ताव करते हैं। तौभी थोड़े से चमत्कार जिन का भक्तमाल और दूसरे ग्रंथों में वर्णन है और महात्मा ग़रीबदास और दूसरे भक्तों ने भी उन को संकेत में अपनी बानी में कहा है नीचे लिखे जाते ह क्योंकि उन्हें न केवल सर्व साधारन पसंद करेंगे वरन उन से महात्माओं की बानी जहाँ यह कौतुक इशारे में लिखे हैं भली प्रकार से समझ में आवेगी।

(१) एक बार काशी के पंडितों ने जो कबीर साहेब से बहुत इर्षा रखते थे कबीर साहेब की ओर से कंगलों के खिलाने का न्यौता चारो ओर फेर दिया हज़ारों आदमी कबीर साहेब के द्वारे पर इकट्ठा हुए। जब कबीर साहेब को इसकी ख़बर हुई तो एक हाँडी में थोड़ा सा भोजन बनवा कर और कपड़े से ढाँक कर अपने किसी सेवक से कहा कि हाथ भीतर डाल कर जहाँ तक निकले लोगों को बाँटते जाव इस प्रकार से सब न्योतहरी पेट भर कर खागये और जब कपड़ा उठाया गया हाँडी ज्यों की त्यों भरी निकली। इस कथा को ऐसे भी लिखा है कि भगवत आप बंजारे का रूप धर कर बैलों पर अन्न लादे आये और कबीर साहेब के ओसारे में गाँज दिया जो सब मँगतों को बाँटने पर भी न चुका।

(२) जब कबीर साहेब की सिद्धि शक्ति की महिमा काशी में बहुत फैली और संसारियों की बड़ी भीड़ भाड़ होने लगी तो कबीर साहेब अपनी निंदा कराकर लोगों से पीछा छुड़ाने के हेतु एक दिन एक हाथ किसी वेश्या के गले में डाल कर और दूसरे हाथ में पानी से भरी बोतल, शराब का धोखा देने को, लेकर बजार भर घूमे जिस से लोगों ने समझा कि वह पतित हो गये और उनके घर जाना छोड़ दिया।

(३) ऐसाही रूपक धरे कबीर साहेब काशिराज के दर्बार में पहुँचे वहाँ किसी ने आदर सत्कार न किया। जब दर्बार से लौटने लगे तो थोड़ा सा जल बोतल से धरती पर डाल कर सोच में हो गये। राजा ने सबब पूछा तो जवाब

दिया कि इस समय पुरी के मन्दिर में आग लग जाने से जगन्नाथ जी का रसोइया जलने लगा था मैं ने यह पानी डाल कर आग बुझा दी और रसोइये की जान बचा ली। राजा ने पुरी से समाचार मँगाया तो वह बात ठीक निकली।

(४) सिकंदर लोदी बादशाह ने कबीर साहेब को मार डालने के लिये सिक्कड़ से बँधवा कर गंगाजी में डलवा दिया पर न डूबे तब आग में डलवाया पर एक बाल बाँका न हुआ फिर मस्त हाथी उन पर छोड़ा वह भाग गया।

कबीर साहेब के गुरमुख शिष्य जो संत गति को प्राप्त हुए धर्मदास जी एक प्रसिद्ध वैश्य साहूकार थे। वह पहले सनातन धर्म के अनुयायी थे और ब्राह्मणों की उन के यहाँ बड़ी भीड़ भाड़ रहा करती थी। उन से कबीर साहेब मिले और सत मत की महिमा गाई इस पर धर्मदास जी ने उनका काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ कराया जिस में यह लोग पूरी तरह परास्त हुए और धर्मदास जी ने कबीर साहेब को गुरू धारन करके उन से उपदेश लिया और बहुत काल तक उनका सतसंग और सुरत शब्द का अभ्यास करके आप भी संत गति को प्राप्त हुए। उन की बानी बचन से उन की गुर भक्ति, अपूर्व प्रेम और गति विदित होती है।

कबीर साहेब ने मगहर में जो काशी से कुछ दूर बस्ती के ज़िले में है देह त्याग की। उन के गुप्त होने का समय जैसा कि ऊपर लिख आये हैं सम्वत १५७५ आन पड़ता है। उन के मगहर में शरीर त्याग करने के बहुत से प्रमान हैं, धर्मदास जी ने अपनी आरती में इस भाँति लिखा है :—

अठई आरती पीर कहाये। मगहर आगी नदी बहाये॥

नाभा जी ने कहा है :—

भजन भरोसे आपने, मगहर तज्यो शरीर।
अविनाशी की गोद में, बिलसैं दास कबीर॥

दादू साहेब का वाक्य है :—

काशी तज मगहर गये, कबीर भरोसे नाम।
सनेही साहेब मिले, दादू पूरे काम॥

इन के अंत काल के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि हिन्दुओं ने इन के मृतक शरीर को जलाना और मुसलमानों ने गाड़ना चाहा इस पर बहुत झगड़ा हुआ अंत को चद्दर उठा कर देखा तो मृतक स्थान पर शरीर नदारद था सुगंधित फूल पड़े थे। तब हिन्दुओं ने फूल लेकर मगहर में उनकी समाधि बनाई और

मुसलमानों ने क़बर। यह समाधि और क़बर अब तक वर्तमान हैं और इस बात को जनाती हैं कि यह सब वर्ण के झगड़े संतों ने तुच्छ और केवल संसारियों के योग्य विचार कर उन्हीं के लिये छोड़ दिये।

इस में संदेह नहीं कि कबीर साहेब सच्चे संत थे जिन्हों ने संसार में कर्म भर्म मिटाने और सच्चे परमार्थ का रास्ता दिखाने को कलियुग में पहला संत अवतार धरा जैसा कि उनकी बानी वचन से जिसमें पूरा भेद पिंड, ब्रह्मांड और निर्मल चैतन्य देश का दिया है विदित है। इस के प्रमाण में दो शब्द "कर नैनों दीदार महल में प्यारा है" और "कर नैनों दीदार यह पिंड से न्यारा है" (सफ़हा ७६ और ८१ देखिये) काफ़ी हैं-इन में पूरा भेद सिलसिलेवार दिया है और उन को एक प्राचीन लिपि से लेकर अमृतसर के कबीरपंथी महंत भाई गुरदत्त सिंह जी ने भेजा है।

कबीर साहेब की बानी जैसी मधुर, मनोहर और प्रेम से भिनी हुई है उसका असर पढ़ने से मालूम होता है—उस से किसी बड़े से बड़े कवि या विद्वान की बानी का मुक़ाबला नहीं हो सकता क्योंकि संतमुख बानी अनुभवी है और कवियों की बानी विद्या बुद्धि की॥

॥ इति ॥

कबीर साहेब की शब्दावली

॥ पहिला भाग ॥

सतगुरु और शब्द महिमा

॥ शब्द १ ॥

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुधि लाइये ।
कीजे साहेब से हेत, परम पद पाइये ॥ १ ॥
सतगुर सब कछु दीन्ह, देत कछु न रह्यो ।
हमहिँ अभागिनि नारि, सुक्ख तज दुख लह्यो ॥ २ ॥
गई पिया के महल, पिया सँग ना रची ।
हिरदे कपट रह्यो छाय, मान लज्जा भरी ॥ ३ ॥
जहवाँ गैल सिलहली, चढ़ौँ गिरि गिरि पड़ौँ ।
उठहुँ सम्हारि सम्हारि, चरन आगे धरौँ ॥ ४ ॥
जो पिय मिलन की चाह, कौन तेरे लाज है ।
अर्धर मिलो किन जाय, भला दिन आज है ॥ ५ ॥
भला बना संजोग, प्रेम का चोलना ।
तन मन अरपौँ सीस, साहेब हँस बोलना ॥ ६ ॥
जो गुरु रूठे होयँ, तो तुरत मनाइये ।
हुइये दीन अधीन, चूक बकसाइये ॥ ७ ॥
जो गुरु होयँ दयाल, दया दिल हेरि हैँ ।
कोटि करम कटि जायँ, पलक छिन फेरि हैँ ॥ ८ ॥
कहैँ कबीर समुझाय, समुझ हिरदे धरो ।
जुगन जुगन करो राज, अस दुर्मति परिहरो ॥ ९ ॥

॥ शब्द २ ॥

सतगुरु चरन भजस मन मूरख, का जड़ जन्म गँवावस रे ॥ टेक
कर परतीत जपस उर अंतर, निसि दिन ध्यान लगावस रे ॥१
द्वादस कोस बसत तेरा साहेब, तहाँ सुरत ठहरावस रे ॥२॥
त्रिकुटी नदिया अगम पंथ जहँ, बिना मेँह झर लावस रे ॥३॥
दामिनि दमकत अमृत बरसत, अजब रंग दरसावस रे ॥४॥
इँगला पिँगला सुखमन से धस, नभ मंदिर उठि धावस रे ॥५॥
लागी रहे सुरत की डोरी, सुन्न मेँ सहर बसावस रे ॥६॥
बंकनाल उर चक्र सोधि के, मूल चक्र फहरावस रे ॥७॥
मकर तार कै द्वार निरखि के, तहाँ पतंग उड़ावस रे ॥८॥
बिन सरहद अनहद जहँ बाजै, कौने सुर जहँ गावस रे ॥९॥
कहैँ कबीर सतगुरु पूरे से, जो परिचै सो पावस रे ॥१०॥

॥ शब्द ३ ॥

मैँ तो आन पड़ी चोरन के नगर, सतसंग बिना जिय तरसे ॥१
इश सतसँग मेँ लाभ बहुत है, तुरत मिलावै गुर से ॥२॥
मूरख जन कोइ सार न जानै, सतसँग मेँ अमृत बरसे ॥३॥
सब्द सा हीरा पटक हाथ से, मुट्ठी भरी कंकर से ॥४॥
कहैँ कबीर सुनो भाई साधो, सुरत करो वहि घर से ॥५॥

॥ शब्द ४ ॥

साधो सतगुर अलख लखाया, जब आप आप दरसाया ॥ टेक॥
बीज मध्य ज्याेँ वृच्छा दरसै, वृच्छा मद्धे छाया ।
परमातम मेँ आतम तैसे, आतम मद्धे माया ॥ १ ॥

ज्यों नभ मद्धे सुन्न देखिये, सुन्न अंड आकारा ।
निःअच्छर तें अच्छर तैसे, अच्छर छर बिसतारा ॥२॥
ज्यों रबि मद्धे किरन देखिये, किरन मध्य परकासा ।
परमातम तें जीव ब्रह्म इमि, जीव मध्य तिमि स्वाँसा ॥३॥
स्वाँसा मद्धे सब्द देखिये, अर्थ सब्द के माहीं ।
ब्रह्म तें जीव जीव तें मन यों, न्यारा मिला सदाहीं ॥४॥
आपहि बीज बृच्छ अंकूरा, आप फूल फल छाया ।
आपहि सूर किरन परकासा, आप ब्रह्म जिव माया ॥५॥
ओंकार सुन्न नभ आपै, स्वाँस सब्द अरथाया ।
निःअच्छर अच्छर छर आपै, मन जिव ब्रह्म समाया ॥६॥
आतम मैं परमातम दरसै, परमातम मैं झाँईं ।
झाँईं मैं परछाँईं दरसै, लखै कबीरा साईं ॥७॥

॥ शब्द ५ ॥

भाई कोई सतगुर संत कहावै । नैनन अलख लखावै ॥टेक॥
डोलत डिगै न बोलत बिसरै, जब उपदेस दृढ़ावै ।
प्रान-पूज्य* किरिया तें न्यारा, सहज समाधि सिखावै ॥१॥
द्वार न रूँधे पवन न रोकै, नहिं अनहद अरुझावै ।
यह मन जाय जहाँ लग जबहीं, परमातम दरसावै ॥२॥
करम करै निःकरम रहै जो, ऐसी जुगत लखावै ।
सदा बिलास त्रास नहिं मन मैं, भोग मैं जोग जगावै ॥३॥
धरती त्यागि अकासहुँ त्यागै, अधर मड़इया छावै ।
सुन्न सिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावै ॥४॥

---

*प्रान से पूजने योग्य सतगुर।

भीतर रहा सो बाहर देखै, दूजा दृष्टि न आवै ।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागवन मिटावै ॥५॥

॥ शब्द ६ ॥

जब तेँ मन परतीति भई ॥ टेक ॥
तब तेँ अवगुन छूटन लागे, दिन दिन बाढ़त प्रीति नई ॥१॥
सुरति निरति मिलि ज्ञान जैा हरी, निरखि परखि जिन बस्तु लई ।
थोड़ी बनिज बहुत है बाढ़ी, उपजन लागे लाल मई ॥२॥
अगम निगम तू खोजु निरंतर, सत्त नाम गुरु मूल दई ।
कहैँ कबीर साध की संगति, हुती बिकार सो छूटि गई ॥३॥

॥ शब्द ७ ॥

साधो सब्द साधना कीजै ।
जेहिँ सब्द तेँ प्रगट भये सब, सोई सब्द गहि लीजै॥टेक॥
सब्दहि गुरू सब्द सुनि सिष भे, सब्द सो बिरला बूझै ।
सोई सिष्य सोइ गुरू महातम, जेहिँ अंतर गति सूझै ॥१॥
सब्दै वेद पुरान कहत है, सब्दै सब ठहरावै ।
सब्दै सुर मुनि संत कहत हैँ, सब्द भेद नहिँ पावै ॥२॥
सब्दै सुनि सुनि भेष धरत हैँ, सब्द कहै अनुरागी ।
षट दरसन सब सब्द कहत है, सब्द कहै बैरागी ॥३॥
सब्दै माया जग उतपानी, सब्दै केरि पसारा ।
कहैँ कबीर जहँ सब्द होत है, तवन भेद है न्यारा ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

साधो सब्द सोँ बेल जमाई ॥ टेक ॥
तीन लोक साषा फैलाई, गुरु बिन पेड़ न पाई ॥ १ ॥

साषा के तर पेड़ छिपाना, साषा ऊपर छाई ।
साषा तेँ बहु साषा उपजी, दुइ साषा अधिकाई ॥ २ ॥
बेल एक साषा दुइ फूटी, ता तेँ भइ बहुताई ।
साषा के बिच बेल समानी, दिन दिन बाढ़त जाई ॥ ३ ॥
पाँचो तत्त तीन गुन उपजे, फूल बास लपटाई ।
उपजा फल बहु रंग दिखावै, बीज रहा फैलाई ॥ ४ ॥
बीज माहिँ दुइ दाल बनाई, मध अंकूर रहाई ।
कहैँ कबीर जो अंकुर चीन्है, पेड़ मिलैगा आई ॥ ५ ॥

॥ शब्द ६ ॥

साँईं दरजी का कोइ मरम न पावा ॥ टेक ॥
पानी की सुई पवन कै धागा, अष्ट मास नव सीयत लागा॥१
पाँच पेवँद की बनी रे गुदरयिा, तामेँ हीरा लाल लगावा॥२
रतन जतन का मकुट बनावा, प्रान पुरुष को ले पहिरावा३
साहिब कबीर अस दरजी पावा, बड़े भाग गुरु नाम लखावा४

॥ शब्द १० ॥

साधो सब्द सभन से न्यारा । जानैगा कोइ जाननहारा॥टेक॥
जोगी जती तपी सन्यासी, अंग लगावै छारा ।
मूल मंत्र सतगुरु दाया बिनु, कैसे उतरै पारा ॥ १ ॥
जोग जज्ञ ब्रत नेम साधना, कर्म धर्म ब्योपारा ।
सो तो मुक्ति सभन से न्यारी, कस छूटै जम द्वारा ॥ २ ॥
निगम नेति जा के गुन गावै, संकर जोग अधारा ।
ब्रह्मा बिस्नु जेहि ध्यान धरतु हैँ, सो प्रभु अगम अपारा ॥३॥
लागा रहै चरन सतगुरु के, चन्द चकोर की धारा ।
कहैँ कबीर सुनो भाई साधो, नषसिष सब्द हमारा ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

तोहिं मोरि लगन लगाये रे फकिरवा ॥ टेक ॥
सोवत ही मैं अपने मंदिर मैं, सब्दन मारि जगाये रे (फ०)॥१
बूड़त ही भव के सागर मैं, बहियाँ पकरि समुझाये रे (फ०)२
एकै वचन वचन नहिं दूजा, तुम मोसे बंद छुड़ाये रे (फ०)॥३
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सत्तनाम गुन गाये रे (फ०)॥४

॥ शब्द १२ ॥

गुरू मोहिं घुँटिया अजर पियाई ॥ टेक ॥
जब से गुरु मोहिं घुँटिया पियाई, भई सुचित मेटी दुचिताई १
नाम औषधी अधर कटोरी, पियत अघाय कुमति गइ मोरी २
ब्रह्मा विस्नु पिये नहिं पाये, खोजत संभू जन्म गँवाये ॥३॥
सुरत निरत कर पियै जो कोई, कहैं कबीर अमर होय सोई॥४

॥ शब्द १३ ॥

जिनकी लगन गुरू सौं नाहीं ॥ टेक ॥
ते नर खर कूकर सम जग मैं, बिरथा जन्म गँवाहीं ॥१॥
अमृत छोड़ि विषय रस पीवैं, धृग धृग तिन के ताईं ॥२॥
हरी बेल की कोरी तुमड़िया, सब तीरथ करि आई ॥३॥
जगन्नाथ के दरसन करके, अजहुँ न गई कडुवाई ॥४॥
जैसे फल उजाड़ को लागो, बिन स्वारथ झरि जाई॥५॥
कहैं कबीर बिन बचन गुरू के, अंत काल पछिताई ॥६॥

---
*धी, रही।

बिरह और प्रेम।

॥ शब्द १ ॥

॥ चौपाई ॥

दरसन दीजे नाम सनेही। तुम बिन दुख पावे मेरी देही॥टेक॥

॥ छंद ॥

दुखित तुम बिन रटत निसि दिन, प्रगट दरसन दीजिये।
बिनती सुन प्रिय स्वामियाँ, बलि जाउँ बिलंब न कीजिये।१।

॥ चौपाई ॥

अन्न न भावे नींद न आवे। बारबार मोहिं बिरह सतावे॥२॥

॥ छंद ॥

बिबिधि बिधि हम भई ब्याकुल, बिन देखे जिव न रहे।
तपत तन जिव उठत झाला, कठिन दुख अब को सहे॥३॥

॥ चौपाई ॥

नैनन चलत सजल जलधारा। निसिदिन पंथ निहारौं तुम्हारा॥४

॥ छंद ॥

गुन अवगुन अपराध छिमाकर, औगुन कछु न बिचारिये।
पतित-पावन राखपरमति*, अपना पन न बिसारिये ॥५॥

॥ चौपाई ॥

गृह आँगन मोहिं कछु न सोहाई।
बज्र भई और फिरो न जाई ॥ ६ ॥

॥ छंद ॥

नैन भरि भरि रहे निरखत, निमिख नेह न तोड़ाइये।
बाँह दीजे बंदी-छोड़ा, अब के बंद छोड़ाइये ॥ ७ ॥

---

* उच्च मति या भाव।

॥ चौपाई ॥

मीन मरै जैसे बिन नीरा। ऐसे तुम बिन दुखित सरीरा॥८॥

॥ छंद ॥

दास कबीर यह करत बिनती, महा पुरुष अब मानिये।
दया कीजे दरस दीजे, अपना कर मोहिं जानिये ॥९॥

॥ शब्द २ ॥

मन मस्त हुआ तब क्यौं बोले ॥ टेक ॥
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार बार वा को क्यौं खोले ॥१॥
हलकी थो जब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्योँ तोले॥२॥
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गइ बिन तोले ॥३॥
हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यौं डोले ॥४॥
तेरा साहेब है घट माहीं, बाहर नैना क्योँ खोले ॥५॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिल गये तिल ओले* ॥६

॥ शब्द ३ ॥

गुरु दयाल कब करिहो दाया।
काम क्रोध हंकार बियापै, नाहीं छूटै माया ॥१॥
जौं लगि उतपति बिंदु रचो है, साँच कभूँ नहिं पाया।
पाँच चोर सँग लाय दियो है, इन सँग जन्म गँवाया ॥२॥
तन मन डस्यो भुवँगम† भारी, लहरै वार न पारा।
गुरु गारुड़ी‡ मिल्यो नहिं कबहीं, विष पसस्यौ बिकरारा§ ३
कहैं कबीर दुख का सोँ कहिये, कोई दरद न जानै।
देहु दीदार दूर करि परदा, तब मेरो मन मानै ॥ ४ ॥

---

*ओट। †साँप। ‡जिसको साँप के बिष उतारने का मंत्र आता है। §भारी।

॥ शब्द ४ ॥

बालम आओ हमारे गेह रे। तुम बिन दुखिया देह रे॥टेक
सब कोइ कहै तुम्हारी नारी, मो को यह संदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसो सनेह रे ॥ १ ॥
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह बन धरै न धीर रे।
ज्यौं कामी को कामिनि प्यारी, ज्यौं प्यासे को नीर रे॥२॥
है कोइ ऐसा परउपकारी, पिय से कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भये हैं, बिन देखे जिउ जाय रे॥३॥

॥ शब्द ५ ॥

सतगुरु हो महराज, मो पै साँईं रँग डारा॥ टेक ॥
सब्द की चोट लगी मेरे मन मैं, बेध गया तन सारा॥१॥
औषध मूल कछू नहिं लागे, क्या करे बैद बिचारा ॥२॥
सुर नर मुनि जन पीर औलिया, कोइ न पावे पारा॥३॥
साहेब कबीर सर्ब रँग रँगिया, सब रँग से रँग न्यारा ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

भींजै चुनरिया प्रेम रस बूँदन ॥ टेक ॥
आरत साज के चली है सुहागिन, पिय अपने को ढूँढन॥१॥
काहे की तोरी बनी है चुनरिया, काहे के लगे चारो फूँदन२
पाँच तत्त की बनी है चुनरिया, नाम के लागे फूँदन॥३॥
चढ़ि गे महल खुल गइरे किवरिया, दासकबीर लागे झूलन४

॥ शब्द ७ ॥

दुलहिनी गावहु मंगलचार।
हम घर आये परम पुरुष भरतार ॥ १ ॥

तन रत करि मैं मन रत करिहौं, पंच तत्व तब राती ।
गुरूदेव मेरे पाहुन आये, मैं जोबन मैं माती ॥ २ ॥
सरीर सरोवर बेदी करिहौं, ब्रह्मा वेद उचार ।
गुरूदेव सँग भाँवरि लेइहौं, धन धन भाग हमार ॥३॥
सुर तैंतीसो कौतुक आये, मुनिवर सहस अठासी ।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरुष एक अबिनासी ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

मैं अपने साहेब संग चली ॥ टेक ॥
हाथ मैं नरियर मुख मैं बीड़ा, मोतियन माँग भरी ॥१॥
लिल्ली घोड़ी जरद बछेड़ी, तापै चढ़ि के चली ॥ २ ॥
नदी किनारे सतगुरु भैंटे, तुरत जनम सुधरी ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, दोउ कुल तारि चली ॥४॥

॥ शब्द ९ ॥

सखियो हमहूँ भई ससुरासी ॥ टेक ॥
आयो जोबन बिरह सतायो, अब मैं ज्ञान गली अठिलाती१
ज्ञान गली मैं सतगुरु मिलि गे, सो दइ हमैं पिया की पाती २
वा पाती मैं अगम सँदेसा, अब हम मरने को न डेराती ॥३
कहत कबीर सुनो भाई साधो, वर पाये अबिनासी ॥४॥

॥ शब्द १० ॥

कैसे जीवेगी बिरहिनी पिया बिन, कीजै कौन उपाय ॥टेक॥
दिवस न भूख रैन नहिं सुख है, जैसे कलिजुग जाम ।
खेलत फाग छाँड़ि चलु सुंदर, तज चलु धन औ धाम ॥१

बन खँड जाय नाम लौ लावो, मिलि पिय से सुख पाय।
तलफत मीन बिना जल जैसे, दरसन लीजे धाय ॥२॥
बिना अकार रूप नहिँ रेखा, कौन मिलेगी आय।
आपन पुरुष समझि ले सुंदरी, देखो तन निरताय ॥३॥
सब्द सरूपी जिव पिव बूझो, छाँड़ो भ्रम की टेक।
कहैँ कबीर और नहिँ दूजा, जुग जुग हम तुम एक ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

कैसे दिन कटिहैँ जतन बताये जइयो ॥ टेक ॥
येहि पार गंगा ओहि पार जमुना,
बिचवाँ मड़इया हमकाँ छवाये जइयो ॥ १ ॥
अँचरा फारि के कागज बनाइन,
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो ॥ २ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयो ॥ ३ ॥

॥ शब्द १२ ॥

सतगुरु मोरी चूक सँभारो।
हौँ अधीन हीन मति मोरी। चरनन तेँ जिन टारो ॥ टेक ॥
मन कठोर कछु कहा न माने। बहु वा को कहि हारो ॥१॥
तुम हीं तेँ सब होत गुसाँई। या को बेग सँवारो ॥२॥
अब दीजे संगत सतगुरु की। जा तेँ होय निस्तारो ॥३॥
और सकल संगी सब बिसरैँ। होउ तुम एक पियारो ॥४॥

कर देख्यो हित सारे जग से। कोइ न मिल्यो पुनि भारो* ॥५॥
कहैं कबीर सुनो प्रभु मेरे। भवसागर से तारो ॥६॥

॥ शब्द १३ ॥

मिलना कठिन है, कैसे मिलौंगी पिय जाय ॥ टेक ॥
समझि सोचि पग धरौं जतन से, बार बार डिग जाय।
ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय ॥ १ ॥
लोक लाज कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय।
नैहर बास बसौं पीहर मैं, लाज तजी नहिं जाय ॥२॥
अधर भूमि जहँ महल पिया का, हम पै चढ़ो न जाय।
धन भइ बारी पुरुष भये भोला, सुरत झकोला खाय ॥३॥
दूती सतगुर मिले बीच मैं, दीन्हो भेद बताय।
साहेब कबीर पिया से भेटे, सीतल कंठ लगाय ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

गुरू ने मोहिं दीन्ही अजब जड़ी ॥ टेक ॥
सो जड़ी मोहिं प्यारी लगतु है, अमृत रसन भरी ॥१॥
कायानगर अजब इक बँगला, ता मैं गुप्त धरी ॥ २ ॥
पाँचो नाग पचीसो नागिन, सूँघत तुरत मरी ॥ ३ ॥
या कारे ने सब जग खायो, सतगुर देख डरी ॥ ४ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, ले परिवार तरी ॥ ५ ॥

॥ शब्द १५ ॥

गुरु हमैं सजीवन मूर दई ॥ टेक ॥
जल थोड़ा बरषा भइ भारी, छाय रही सब लालमई ॥१॥
छिन छिन पाप कटन जब लागे, बाढ़न लागी प्रीति नई २

* गरू, गहिर गंभीर।

अमरापुर मैँ खेती कीन्हा, हीरा नग तैँ भैँट भई ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो भाई साधो, मन की दुबिधा दूर भई ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

गगन की ओट निसाना है ॥ टेक ॥
दहिने सूर चन्द्रमा बायेँ, तिन के बीच छिपाना है ॥१॥
तन की कमान सुरत का रोदा, सब्द बान ले ताना है २
मारत बान बिँधा तनही तन, सतगुरु का परवाना है ॥३॥
मास्यो बान घाव नहिँ तन मैँ, जिन लागा तिन जाना है॥४
कहैँ कबीर सुनो भाई साधो, जिन जाना तिन माना है॥५॥

॥ शब्द १७ ॥

जा के लगी सब्द की चोट ॥ टेक ॥
का पोखर का कुआँ बावड़ी, का खाईं का कोट ॥ १ ॥
का बरछी का छुरी कटारी, का ढालन की ओट ॥२॥
या तन की बारूद बनी है, सत्तनाम की तोप ॥ ३ ॥
मारा गोला भरमगढ़ टूटा, जीत लिया जम लोक ॥ ४ ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तरिहै सब्द की ओट ॥ ५ ॥

॥ शब्द १८ ॥

साँईं बिन दरद करेजे होय ॥ टेक ॥
दिन नहिँ चैन रात नहिँ निँदिया, कासे कहूँ दुख रोय ॥१॥
आधीरतियाँ पिछले पहरवाँ, साँईं बिन तरस तरस रही सोय
पाँचो मारि पचीसो बस करि, इन मैँ चहै कोइ होय ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु मिले सुख होय ॥४॥

॥ शब्द १९ ॥

हमरी ननँद निगोड़िन जागे ॥ टेक ॥
कुमति लकुटिया निसि दिन व्यापे, सुमति देखि नहिँ भावे।
निसि दिन लेत नाम साहब को, रहत रहत रँग लागे॥१॥
निसि दिन खेलत रही सखियन सँग, मोहिँ बड़ो डर लागे।
मोरे साहेब की ऊँची अटरिया, चढ़त मैँ जियरा काँपे॥२॥
जो सुख चहे तो लज्जा त्यागे, पिय से हिलि मिलि लागे।
घूँघट खोल अंग भर भैँटे, नैन आरती साजे॥ ३॥
कहैँ कबीर सुनो भाई साधो, चतुर होय सो जाने।
जिन प्रीतम की आस नहीँ है, नाहक काजर पारे॥ ४॥

॥ शब्द २० ॥

अमरपुर ले चलु हो सजना॥ टेक ॥
अमरपुरी की सँकरी गलियाँ, अड़बड़ है चलना॥ १॥
ठोकर लगी गुरु ज्ञान सब्द की, उघर गये झपना॥२॥
वोहि रे अमरपुर लागि बजरिया, सैादा है करना॥३॥
वोहि रे अमरपुर संत बसतु हैँ, दरसन है लहना॥४॥
संत समाज सभा जहँ बैठी, वहीँ पुरुष अपना॥५॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, भवसागर है तरना॥६॥

॥ शब्द २१ ॥

भक्ती का मारग झीना रे॥ टेक ॥
नहिँ अचाह नहिँ चाहना चरनन लैालीना रे॥ १॥

साध के सतसँग मेँ रहे निस दिन मन भीना रे ॥२॥
सब्द मेँ सुर्त ऐसे बसे जैसे जल मीना रे ॥ ३ ॥
मान मनी को योँ तजे जस तेली पीना* रे ॥ ४ ॥
दया छिमा संतोष गहि रहे अति आधीना रे ॥ ५ ॥
परमारथ मेँ देत सिर कछु बिलँब न कीना रे ॥ ६ ॥
कहैँ कबीर मत भक्ति का परगट कह दीना रे ॥ ७ ॥

॥ शब्द २२ ॥

ऋतु फागुन नियरानी, कोइ पिया से मिलावे ॥ टेक ॥
सोइ तो सुँदर जाके पिय को ध्यान है,
सोइ पिया के मन मानी।
खेलत फाग अंग नहिँ मोड़े, सतगुर से लिपटानी ॥१॥
इक इक सखियाँ खेल घर पहुँचीँ, इक इक कुल अरुझानी।
इक इक नाम बिना बहकानी, हो रही ऐँचा तानी॥२॥
पिया को रूप कहाँ लग बरनौँ, रूपहि माहिँ समानी।
जो रँग रँगे सकल छबि छाके, तन मन सभी भुलानी॥३॥
योँ मत जाने यहि रे फाग है, यह कछु अकथ कहानी।
कहैँ कबीर सुनो भाई साधो, यह गति बिरले जानी॥४॥

॥ शब्द २३ ॥

पियां मेरा जागे मैँ कैसे सोई री ॥ १ ॥
पाँच सखी मेरे सँग की सहेली,
उन रँग रँगी पिया रँग न मिली री ॥ २ ॥

---

* मोटा। —कथा है कि एक तेली ने सब चिन्ता और मान बड़ाई त्याग दी थी यहाँ तक कि अपनी आलसी स्त्री को जिस काम के लिये वह चाहती बाज़ार मेँ बेधड़क अपने कंधे पर चढ़ा कर ले जाता, इस कारण वह ख़ब हृष्ट पुष्ट और मोटा हो गया था।

सास सयानी ननद द्योरानी,
उन डर डरी पिया सार न जानी री ॥ ३ ॥
द्वादस ऊपर सेज बिछानी,
चढ़ न सकौँ मारी लाज लजानी री ॥ ४ ॥
रात दिवस मोहिं कूका मारे,
मैं न सुनी रचि रहि सँग जार री ॥ ५ ॥
कहैं कबीर सुनु सखी सयानी,
बिन सतगुर पिया मिले न मिलानी री ॥ ६ ॥

॥ शब्द २४ ॥

मोरे लगि गये बान सुरंगी हो ॥ टेक ॥
धन सतगुर उपदेस दियो है, होइ गयो चित्त भिरंगी हो ॥१॥
ध्यान पुरुष की बनी है तिरिया, घायल पाँचो संगी हो ॥२॥
घायल की गति घायल जाने, का जानै जात पतंगी हो ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, निसि दिन प्रेम उमंगी हो ॥४॥

॥ शब्द २५ ॥

हमन हैं इश्क़ मस्ताना, हमन को होशियारी क्या ।
रहैं आज़ाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या ॥१॥
जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर बदर फिरते ।
हमारा यार है हम में, हमन को इंतिज़ारी क्या ॥२॥
ख़लक़ सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकता है ।
हमन गुर नाम साँचा है, हमन दुनिया से यारी क्या ॥३॥
न पल बिछुड़ैं पिया हम से, न हम बिछुड़ैं पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेक़रारी क्या ॥ ४ ॥

कबीरा इश्क़ का माता, दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाज़ुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या ॥५॥

॥ शब्द २६ ॥

मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥टेक ॥
जो सुख पावो नाम भजन में, सो सुख नाहिं अमीरी में १
भला बुरा सब को सुन लीजै, कर गुजरान गरीबी में ॥२॥
प्रेम नगर में रहनि हमारी, भलि बनि आई सबूरी में ॥३॥
हाथ में कूँड़ी बगल में सोंटा, चारो दिसा जगीरी* में ॥४॥
आखिर यह तन खाक मिलैगा, कहा फिरत मगरूरी में॥५॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहेब मिलै सबूरी में ॥६॥

॥ शब्द २७ ॥

कोइ प्रेम की पैंग झुलाओ रे ॥ टेक ॥
भुज के खंभ प्रेम की रसरी, मन महबूब झुलाओ रे ॥१॥
सूहा चोला पहिर अमोला, निज घट पिय को रिझाओ रे २
नैनन बादर की झर लाओ, स्याम घटा उर छाओ रे ॥३॥
आवत जावत स्वुत के मग पर, फिक्रि पिया को सुनाओ रे ४
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, पिय को ध्यान चित लाओ रे ५

॥ शब्द २८ ॥

नाचु रे मेरो मन नट होय ॥ टेक ॥
ज्ञान के ढोल बजाय रैन दिन, सब्द सुनै सब कोई।
राहू केतु नवग्रह नाचैं, जमपुर आनँद होई ॥ १ ॥
छापा तिलक लगाय बाँस चढ़ि, होइ रहु जग से न्यारा।
सहस कला कर मन मेरो नाचै, रीझै सिरजनहारा ॥२॥

---

*मुआफ़ी ज़मीन।

जो तुम कूदि जाव भवसागर, कला बदौं मैं तेरो।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, हो रहु सतगुर चेरो ॥३॥

॥ शब्द २९ ॥

गुर बिन दाता कोइ नहीं जग माँगनहारा।
तीन लोक ब्रह्मंड में सब के भरतारा ॥ १ ॥
अपराधी तीरथ चले का तीरथ तारे।
काम क्रोध मद ना मिटा का देंह पखारे ॥ २ ॥
कागद की नौका बनी बिच लोहा भारे।
सब्द भेद जाने नहीं मूरख पचि हारे ॥ ३ ॥
बांछ* मनोरथ पिय मिले घट भया उजारा।
सतगुर पार उतारि हैं सब संत पुकारा ॥ ४ ॥
पाहन को का पूजिये या में का पावै।
अठसठ† के फल घर मिलैं जो साध जिमावै ॥ ५ ॥
कहैं कबीर बिचार के अंधा खल डोलै।
अंधे को सूझै नहीं घट ही में बोलै ॥ ६ ॥

॥ शब्द ३० ॥

साधो सहज समाधि भली।
गुर प्रताप जा दिन से जागी, दिन दिन अधिक चली॥१॥
जहँ जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत, पूजौं और न देवा ॥ २ ॥
कहौं सो नाम सुनौं सो सुमिरन, खावँ पियौं सो पूजा।
गिरह उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा ॥ ३ ॥

---

*इच्छा अनुसार। †अड़सठ तीरथ।

आँख न मूँदौं कान न रूँधौं, तनिक कष्ट नहिं धारौं ।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं ॥४॥
सब्द निरन्तर से मन लागा, मलिन बासना त्यागी ।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी तारी लागी ॥ ५ ॥
कहैं कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई ।
दुख सुख से कोइ परे परम पद, तेहि पद रहा समाई ॥६॥

॥ शब्द ३१ ॥

गुर बड़े भृंगी हमारे गुर बड़े भृंगी ।
कीट सोँ ले भृंग कीन्हा आप सोँ रंगी ॥टेक॥
पाँव औरै पंख औरै और रँग रंगी ।
जाति कुल ना लखै कोई सब भये भृंगी ॥१॥
नदी नाले मिले गंगै कहावैं गंगी ।
दरियाव दरिया जा समाने संग मैं संगी ॥२॥
चलत मनसा अचल कीन्ही मन हुआ पंगी* ।
तत्त मैं निःतत्त दरसा संग मैं संगी ॥३॥
बंध तैं निर्बंध कीन्हा तोड़ सब तंगी ।
कह कबीर किया अगम गम नाम रँग रंगी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३२ ॥

मैं का से बूझौं अपने पिया की बात री ॥टेक॥
जान सुजान प्रान-प्रिय पिय बिन, सबै बटाऊ जात री १
आसा नदी अगाध कुमति बहै, रोकि काहू पै न जात री २
काम क्रोध दोउ भये करारे, पड़े बिषय रस मात† री ॥३॥

---

* पंगुल । † माते ।

ये पाँचो अपमान के संगी, सुमिरन को अलसात री ॥४
कहैं कबीर बिछुरि नहिं मिलिहै, ज्यौं तरवर बिनपात री ५

॥ शब्द ३३ ॥

नारद साध सोँ अंतर नाहीं ।
जो कोइ साध सोँ अंतर राखै, सो नर नरकै जाहीं ॥टेक॥
जागै साध तो मैं हूँ जागूँ, सोवै साध तो सोऊँ ।
जो कोइ मेरे साध दुखावै, जरा मूल से खोऊँ ॥ १ ॥
जहाँ साध मेरो जस गावै, तहाँ करौँ मैं वासा ।
साध चलै आगे उठ धाऊँ, मोहिँ साध की आसा ॥२॥
माया मेरी अर्ध-सरीरी, औ भक्तन की दासी ।
अठसठ तीरथ साध के चरनन, कोटि गया और कासी ॥३॥
अंतरध्यान नाम निज केरा, जिन भजिया तिन पाई ।
कहैं कबीर साध की महिमा, हरि अपने मुख गाई ॥४॥

॥ शब्द ३४ ॥

मोहिँ तोहिँ लागी कैसे छूटै। जैसे हीरा फोरे न फूटै ॥टेक॥
मोहिँ तोहिँ आदि अंत बन आई। अब कैसे कै दुरत दुराई१
जैसे कँवल-पत्र जल बासा। ऐसे तुम साहेब हम दासा ॥२॥
जैसे चकोर तकत निसि चंदा। ऐसे तुम साहेब हम बंदा॥३॥
जैसे कीट भृंग लौ लाई। तैसे सलिता सिंधु समाई ॥४॥
हम तो खोजा सकल जहाना। सतगुर तुम सम कोउ न आना
कहैं कबीर मोरा मन लागा। जैसे सोनै मिला सुहागा॥६

॥ शब्द ३५* ॥

सतगुर के सँग क्यौं न गई री ॥ टेक ॥
सतगुर सँग जाती सोना बनि जाती,
अब माटी के मैं मोल भई री ॥ १ ॥
सतगुर हैं मेरे प्रान-अधारा,
तिनकी सरन मैं क्यौं न गही री ॥ २ ॥
सतगुर स्वामी मैं दासी सतगुर की,
सतगुर न भूले मैं भूल गई री ॥ ३ ॥
सार को छोड़ि असार से लिपटी,
धृग धृग धृग मतिमंद भई री ॥ ४ ॥
प्रान-पती को छोड़ि सखी री,
माया के जाल मैं अरुझ रही री ॥ ५ ॥
जो प्रभु हैं मेरे प्रान-अधारा,
तिन की मैं क्यौं ना सरन गही री ॥ ६ ॥

चितावनी और उपदेश

॥ शब्द १ ॥

बिनसतगुरनररहतभुलाना, खोजतफिरतराहनहिंजाना ।
केहर-सुत†ले आयो गरड़िया, पालपोसउनकीन्हसयाना १
करतकलोलरहतअजअन‡सँग, आपनमर्मउनहुँनहिंजाना २
केहर इक जंगल से आयो,ताहि देख बहुतै रिसियाना ३

---

* इस शब्द मैं कबीर साहेब की छाप नहीं है परंतु जो कि अति मनोहर है और लाहौर के कबीरपंथी महंत ने कबीर साहेब का करके दिया है हम उसे छापते हैं। † शेर का बच्चा। ‡ बकरी।

पक रिके भेद तुरत समुझाया, आपन दसा देख मुसक्याना ॥४
जस कुरंग* बिच बसत वासना, खोजत मूढ़ फिरत चैागाना ॥५
कर उसवास† मनै मैं देखै, यह सुगंधि धैाँ कहाँ बसाना ॥६
अर्ध उर्ध बिच लगन लगी है, छक्यो रूप नहिं जात बखाना ॥७
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, उलटि आपु मैं आपु समाना ॥८

॥ शब्द २ ॥

बिन सतगुर नर भरम भुलाना ॥ टेक ॥
सतगुर सब्द क मर्म न जाना, भूलि परा संसारा ॥ १ ॥
बिना नाम जम धरि धरि खैहै, कैान छुड़ावनहारा ॥२॥
सिरजनहार का मर्म न जाने, धृग जीवन जग तेरा ॥ ३ ॥
धरमराय जब पकरि मँगैहै, परिहै मार घनेरा ॥ ४ ॥
सुत नारी को मोह त्यागि कै, चीन्हो सब्द हमारा ॥५॥
सार सब्द परवाना पावो, तब उतरो भव पारा ॥ ६ ॥
इक-मत ह्वै के चढ़ो नाव पर, सतगुर खेवनहारा ॥७॥
साहेब कबीर यह निर्गुन गावैं, संतन करो बिचारा ॥८॥

॥ शब्द ३ ॥

टुक जिंदगी बँदगी कर लेना, क्या माया मद मस्ताना ॥ टेक
रथ घोड़े सुखपाल पालकी, हाथी और बाहन नाना ।
तेरा ठाठ काठ की टाटी, यह चढ़ चलना समसाना‡ ॥१॥
रूम पाट§ पाटम्बर अम्बर, जरी बफ्त का बाना ।
तेरे काज गजी गज चारिक‖, भरा रहे तोसखाना ॥२॥
खर्चे की तदबीर करो तुम, मंजिल लंबी जाना ।
पहिचन्ते का गाँव न मग मैं, चौकी न हाट दुकाना ॥३॥

* मृगा। † सोँच। ‡ स्मसान। § ऊनी कपड़ा। ‖ चार एक।

जीते जी ले जीत जनम को, यही गोय यहि मैदाना ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नहिं कलि तरन जतन आना ॥४

॥ शब्द ४ ॥

सुगवा पिँजरवा छोरि करि भागा ॥ टेक ॥
इस पिँजरे मैं दस दरवाजा ।
दसो दरवाजे किवरवा लागा ॥ १ ॥
अँखियन सेती नीर बहन लाग्यो ।
अब कस नाहिँ तू बोलत अभागा ॥ २ ॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो ।
उड़ि गे हंस टूटि गयो तागा ॥ ३ ॥

॥ शब्द ५ ॥

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो ॥ टेक ॥
चंदन काठ कै बनल खटोलना । ता पर दुलहिन सूतल हो ॥१
उठो री सखी मोरी माँग सँवारो । दूलहा मो से रूसल हो ॥ २
आये जमराज पलँग चढ़ि बैठे । नैनन आँसू टूटल हो ॥ ३
चारि जने मिलि खाट उठाइन । चहुँ दिस धूधू ऊठल हो ॥ ४
कहत कबीर सुनो भाइ साधो । जग से नाता छूटल हो ॥ ५

॥ शब्द ६ ॥

हम काँ ओढ़ावे चदरिया, चलती बिरिया ॥टेक॥
प्रानराम जब निकसन लागे, उलट गईं दूनौं नैन पुतरिया ॥ १
भीतर से जब बाहर लाये, छूटि गईं सब महल अटरिया ॥ २
चार जने मिलि खाट उठाइन, रोवत ले चले डगर डगरिया ॥ ३
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, संग चलेगी वहि सूखी लकरिया ॥ ४

॥ शब्द ७ ॥

क्या देख दिवाना हूआ रे ॥ टेक ॥

माया सूली सार बनी है, नारी नरक का कूवा रे ॥ १ ॥

हाड़ मास नाड़ी का पिंजर, ता मेँ मनुवाँ सूवा रे ॥२॥

भाई बंद और कुटुँब कबीला, ता मेँ पचि पचि मूवा रे ॥३॥

कहत कबीर सुनो भाइ साधो, हार चला जग जूवा रे ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

बीती बहुत रहि थोरी सी ॥ टेक ॥

खाट परे नर झाँखन लागे, निकर प्रान गयो चोरी सी १

भाई बंद कुटुँब सब आये, फूँक दियो मानो होरी सी २

कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, सिर पर देत हैँ भौँरी सी ३

॥ शब्द ९ ॥

सोच समुझ अभिमानी, चादर भइ है पुरानी ॥ टेक ॥

टुकड़े टुकड़े जोड़ि जुगत सौँ, सी के अँग लिपटानी ।

कर डारी मैली पापन सौँ, लोभ मोह मेँ सानी ॥ १ ॥

ना यहि लगो ज्ञान कै साबुन, ना धोई भल पानी ।

सारी उमिर ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिँ जानी ॥२॥

संका मान जान जिय अपने, यह है चीज बिरानी ।

कहत कबीर धर राखु जतन से, फेर हाथ नहिँ आनी ॥३॥

॥ शब्द १० ॥

खेल ले नैहरवाँ दिन चार ॥ टेक ॥

पहिली पठौनी तीन जने आये, नौवा बाम्हन बारि ॥१॥

बाबुल जी मैँ पैयाँ तोरी लागौँ, अब की गवन दे टारि २

दुसरी पठौनी आपै आये, लेके डोलिया कहार ॥ ३ ॥
धरि बहियाँ डोलिया बैठारिन, कोऊ न लागै गोहार ॥४॥
ले डोलिया जाय बन मैं उतारिन, कोइ नहिँ संगी हमार ५
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, इक घर है दस द्वार ॥६॥

॥ शब्द ११ ॥

हँड़िया फँदाय धन चलु रे, मिलि लेहु सहेली ।
दिनाँ चारि को संग है, फिर अंत अकेली ॥ १ ॥
दिन दस नैहर खेलि ले, सासुर निज भरना ।
बहियाँ पकरि पिय ले चले, तब उजुर न करना ॥ २ ॥
इक अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती ।
देहिँ उतारि ताही घराँ, जहँ संग न साथी ॥ ३ ॥
इक अँधियारी कूइयाँ, दूजे लेजुर* टूटी ।
नैन हमारे अस ढुरैँ, मानो गागर फूटी ॥ ४ ॥
दास कबीरा यौँ कहै, जग नाहिन रहना ।
संगी हमरे चलि गये, हमहूँ को चलना ॥ ५ ॥

॥ शब्द १२ ॥

साँईं के सँग सासुर आई ॥ टेक ॥
संग न सूती स्वाद न जान्यौ, गयो जोबन सुपने की नाँईं ॥१॥
जना चारि मिलि लगन सोधाई, जना पाँच मिलि मंडप छाई
सखी सहेली मंगल गावैँ, दुख सुख माथे हरदी चढ़ाई ॥२॥
नाना रूप परी मन भाँवरि, गाँठि जोरि भइ पतिको आई।
अरघै दै दै चली सुबासिन, चौकहिँ राँड़ भई सँग साँईं॥३॥
भयो बियाह चली बिन दूलह, बाट जात समधी समुझाई ।
कहैँ कबीर हम गवने जैबै, तरब† कंत लै तूर बजाई॥४॥

---

* रस्सी । † तरँगे ।

॥ शब्द १३ ॥

बहुरि नहिं आवना या देस ॥ टेक ॥
जो जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं सँदेस ॥ १ ॥
सुर नर मुनि औ पीर औलिया, देवी देव गनेस ॥ २ ॥
धरि धरि जनम सबै भरमे हैं, ब्रह्मा बिस्नु महेस ॥ ३ ॥
जोगी जंगम औ सन्यासी, डीगम्बर दुरवेस ॥ ४ ॥
चुंडित मुंडित पंडित लोई, सुर्ग रसातल सेस ॥ ५ ॥
ज्ञानी गुनी चतुर औ कबिता, राजा रंक नरेस ॥ ६ ॥
कोइ रहीम कोइ राम बखानै, कोइ कहै आदेस ॥ ७ ॥
नाना भेष बनाय सबै मिलि, ढूँढ़ि फिरे चहुँ देस ॥ ८ ॥
कहैं कबीर अंत ना पैहो, बिन सतगुर उपदेस ॥ ९ ॥

॥ शब्द १४ ॥

वा दिन की कछु सुध कर मन माँ ॥ टेक ॥
जा दिन लैचलु लैचलु होई, ता दिन संग चलै नहिं कोई।
तात मात सुत नारी रोई, माटी के सँग दिये समोई।
सो माटी काटेगी तन माँ ॥ १ ॥
उलफत नेहा कुलफत नारी, किसकी बीबी किसकी बाँदी।
किसका सोना किसकी चाँदी, जा दिन जम ले चलिहै बाँधी।
डेरा जाय परै वहि बन माँ ॥ २ ॥
टाँड़ा तुम ने लादा भारी, बनिज किया पूरा व्यौपारी।
जूआ खेला पूँजी हारी, अब चलने की भई तयारी।
हित चित मत तुम लाओ धन माँ ॥ ३ ॥

जो कोइ गुरु से नेह लगाई, बहुत भाँति सोई सुख पाई।
माटी में काया मिलि जाई, कहैं कबीर आगे गोहराई।
साँच नाम साहेब को सँग माँ ॥ ४ ॥

॥ शब्द १५ ॥

जोगी जन जागत रहो मेरे भाई।
जागत रहियो सोय मत जैयो, चोर मूसि लै जाई ॥ १ ॥
बिरह फाँसि डालै हित चित करि, मारै ढिंग बैठाई।
बाजीगर बन्दर करि राखै, ले जाय संग लगाई ॥ २ ॥
रस कस लेत निचोरि कामिनी, बुधि बल सब छलि खाई।
गाँडे की छोई करि डारै, रहन न देत मिठाई ॥ ३ ॥
तसकर तरज* हरन† मृग-चितवन, कंदर्प‡ लेत चुराई।
घृत पावक निज नारि निकट ढिंग, कोइ बिरले जन ठहराई।४
बन के तपसी नागा लूटे, सुर नर मुनि छलि खाई।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जग लूटा ढोल बजाई॥५॥

॥ शब्द १६ ॥

हमारे मन कब भजिहो गुरु नाम ॥ टेक ॥
बालापन जनमत हीं खोयो, ज्वानी में व्यापा काम।
बूढ़ भये तन थाकन लागे, लटकन लागे चाम ॥ १ ॥
कानन बहिर नैन नहिं सूझै, भये दाँत बेकाम।
घर की त्रिया विमुख होइ बैठी, पुत्र कियो कलकान§॥२॥
खटिया से भुइयाँ कर दीन्हो, जम का गड़ा निसान।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, दुबिधा में निकसत प्रान ॥३॥

---

* चोर की तरह। † हर लेने वाली। ‡ वीर्य्य। § झगड़ा।

॥ शब्द १७ ॥

मन हलवाई हो, सतनाम विमल पकवान ॥ टेक ॥
काया कराही कर्म घृत भरु, मन मैदा को सानु ।
ब्रह्म अगिन उदगारि* के, तू अजब मिठाई छानु ॥१॥
तन हमारो ताखरी† हो, मन हमारो सेर ।
सुरति हमरी डाँड़िया हो, चित हमारो फेर ॥२॥
गगन मँडल मेँ घर हमारो, त्रिकुटी मोर दुकान ।
रहनि हमरी उनमुनी, तातेँ लागि वस्तु बिकान ॥३॥
लोभ लहर नदिया बहै हो, लख चौरासी धार ।
बिन गुरु साकित बूड़ि मुए, कोइ गुरमुख उतरे पार ॥४॥
कहैँ कबीर स्वामी अगोचरा, तुम गति अगम अपार ।
संतन लाद्यो सत्त नाम, सब बिष लाद्यो संसार ॥५॥

॥ शब्द १८ ॥

करो जतन सखी साँईं मिलन की ॥ टेक ॥
गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया,
तजि दे बुधि लरिकैयाँ खेलन की ॥ १ ॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी,
यह मारग चौरासी चलन की ॥ २ ॥
ऊँचा महल अजब रँग बँगला,
साँईं की सेज वहाँ लगी फूलन की ॥ ३ ॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहँ,
सुरत सम्हार परु पइयाँ सजन की ॥ ४ ॥

---

* जगा कर । † पलरा ।

कहैं कबीर निर्भय होय हंसा,
कुंजी बता द्यौं ताला खुलन की ॥ ५ ॥

॥ शब्द १९ ॥

अपने घट दियना बारु रे ॥ टेक ॥
नाम कै तेल सुरत कै बाती, ब्रह्म अगिन उदगारु रे॥१॥
जंगमग जोत निहारु मँदिर मैं, तन मन धन सब वारु रे॥२॥
झूठी जान जगत की आसा, बारंबार बिसारु रे॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, आपन काज सँवारु रे॥४॥

॥ शब्द २० ॥

मन तुम नाहक दुंद मचाये ॥ टेक ॥
करि असनान छुवो नहिँ काहू, पाती फूल चढ़ाये ॥१॥
मूरति से दुनिया फल माँगै, अपने हाथ बनाये ॥२॥
यह जग पूजै देव देहरा, तीरथ बर्त अन्हाये ॥३॥
चलत फिरत मैं पाँव थकित भे, यह दुख कहाँ समाये ॥४॥
झूठी काया झूठी माया, झूठे झूठ लखाये ॥५॥
बाँझिन गाय दूध नहिँ देहै, माखन कहँ से पाये ॥६॥
साँचे के सँग साँच बसत है, झूठे मारि हटाये ॥७॥
कहैं कबीर जहँ साँच बस्तु है, सहजै दरसन पाये ॥८॥

॥ शब्द २१ ॥

मन फूला फूला फिरै जक्त मैं कैसा नाता रे ॥ टेक ॥
माता कहे यह पुत्र हमारा, बहिन कहै बिर* मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी, नारि कहै नर मेरा ॥ १ ॥
पेट पकरि के माता रोवै, बाँहि पकरि के भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई ॥ २ ॥

* बीर=भाई।

जब लग जीवै माता रोवै, बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै, फेर करै घर वासा ॥३॥
चार गजी चरगजी मँगाया, चढ़ा काठ की घोड़ी ।
चारो कोने आग लगाया, फूँक दियो जस होरी ॥४॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को, केस जरै जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गइ, कोई न आयो पासा ॥५॥
घर की तिरिया ढूँढ़न लागी, ढूँढ़ि फिरी चहुँ देसा ।
कह कबीर सुनो भाइ साधो, छाँड़ो जग की आसा ॥६॥

॥ शब्द २२ ॥

छाँड़ि दे मन बौरा डगमग ॥ टेक ॥

अब तो जरे मरे बनि आवै, लीन्हो हाथ सिँधोरा ।
प्रीत प्रतीत करो दृढ़ गुरू की, सुनो सब्द घनघोरा ॥१॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचे, लोभ मोह भ्रम छाँड़े ।
सूरा कहा मरन सोँ डरपे, सती न संचय भाँड़े ॥ २ ॥
लोक लाज कुल की मरजादा, यही गले मेँ फाँसी ।
आगे ह्वै पग पाछे धरिहो, होय जक्त मेँ हाँसी ॥ ३ ॥
अगिन जरे ना सती कहावे, रन जूझे नहिं सूरा ।
बिरह अगिन अंतर मेँ जारै, तब पावै पद पूरा ॥ ४ ॥
यह संसार सकल जग मैला, नाम गहे तेहि सूँचा ।
कहैँ कबीर भक्ति मत छाँड़ो, गिरत परत चढु ऊँचा॥५॥

॥ शब्द २३ ॥

भूला मन समुझावे जो पै भूला मन समुझावे ॥ टेक ॥
अरब खरब लौँ दर्ब गाड़े, खरिचन खान न पावै ।
जब जम आइ करै कंठ घेरो, दै दै सैन बुझावे ॥ १ ॥

बोइ बबूर अँब फल चाहत, सो फल कैसे पावै ।
खोटा दाम गाँठि लै डोलत, भलि भलि बस्तु मोलावै ॥२॥
गुरु परताप साध की संगति, मन-बांछित* फल पावै ।
जाति जोलाहा नाम कबीरा, बिमल बिमल गुन गावै ॥३॥

॥ शब्द २४ ॥

मन बनियाँ बानि न छोड़ै ॥ टेक ॥
जनम जनम का मारा बनियाँ, अजहूँ पूर न तौलै ।
पासँग कै अधिकारी लै लै, भूला भूला डोलै ॥ १ ॥
घर मैं दुबिधा कुमति बनी है, पल पल मैं चित तोरै ।
कुनबा वाके सकल हरामी, अमृत मैं बिष घोरै ॥ २ ॥
तुमहीं जल मैं तुमहीं थल मैं, तुमहीं घट घट बोलै ।
कहैं कबीर वा सिष को डरिये, हिरदे गाँठि न खोलै ॥३॥

॥ शब्द २५ ॥

उठि पछिलहरा पिसना पीस ॥ टेक ॥
ढोरु पछोरु पलक छिन दम दम ।
अनहद जाँत गड़ा तोरे सीस ॥ १ ॥
कर बिन चलै झोंक बिन निघरै† ।
बंकनाल चलै बिस्वा बीस ॥ २ ॥
मन मैदा मीहीं कर चालो ।
चोकर तजि दो पाँच पचीस ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ।
आपुइ आय मिलैं जगदीस ॥ ४ ॥

---

* जो चाहे सो । † चक्की मैं जो पीछे से थोड़ासा अन्न रह जाता है उसे चोकर या कोई अनाज डाल कर और चक्की को तेज़ चलाकर साफ़ कर लेते हैं।

॥ शब्द २६ ॥

तुम जाइ अँजोरे बिछावो, अँधेरे में का करिहो ॥टेक॥
जब लग स्वाँसा दीप जरतु है, जैसे बनै तो बनावो॥१॥
गुन के पलँग ज्ञान के तोसक, सूरति तकिया लगावो ॥२॥
जो सुख चाहो सो सतमहले*, बहुरि दुक्ख नहिं पावो॥३॥
दास कबीर गुरु सेज सँवारो, उन की नारि कहावो ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, आवा गवन मिटावो ॥५॥

॥ शब्द २७ ॥

कहै कोइ लाखौं, करैया कोइ और है ॥ टेक ॥
कंसा कहै वसुदेव को निरवंस करौं† ।
रुक्मा कहै सिसुपाल के सिर मौर है‡ ॥ १ ॥

---

* परम और अविनाशी सुख सातवें लोक में पहुँचे बिना नहीं प्राप्त हो सकता ।

† राजा कंस से नारद मुनि ने कहा था कि अपने बहनोई वसुदेव जी की किसी औलाद के हाथ से तुम मारे जावगे इस लिये वह अपनी बहिन की सब औलाद को ज्योंही उत्पन्न हुई मारता गया केवल आठवीं औलाद श्रीकृश्न अचरज रीति से बच गये जिन्हों ने बाल अवस्थाही में अपने मामा कंस का बध किया ।

‡ रुक्मिनी जी के भाई रुक्म ने अपने बल के घमंड में अपनी बहिन और पिता की इच्छा के विरुद्ध रुक्मिनी जी का ब्याह राजा शिशुपाल से ठहराया । जब बरात आई श्रीकृश्न ने रुक्म शिशुपाल और दूसरे शूर वीर राजाओं का घमंड तोड़ने और अपने भक्त रुक्मिनी जी और उनके पिता की मनोकामना पूरी करने के हेतु रुक्मिनी को हर कर अपने साथ ब्याह कर लिया । कुछ काल पीछे शिशुपाल और रुक्म दोनों भिन्न २ अवसर पर श्रीकृश्न के हाथ से मारे गये । शिशुपाल के पूर्व जन्म की कथा यों है कि जय विजय वैकुंठ के द्वारपाल थे जिन्हों ने सनकादिक को एक समय में वैकुंठ के द्वारे पर रोक दिया । इस पर सनकादिक ने सराप दिया जिस के प्रभाव से उन दोनों ने पहिले हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप का चोला पाया, दूसरे जन्म में रावन और कुंभकरन हुए और तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्र ।

रावना* कहै मैं तो जम को भी मारि डारौं ।
मेघनाद* कहै अपार बल मोर है ॥ २ ॥
कसिपा† कहै पहलाद को मैं मारि डारौं ।
देखो मेरे भाई याही मेरो कौल है ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो ।
भक्त-बछल सतनाम माहीं ठौर है ॥ ४ ॥

॥ शब्द २८ ॥

नागिन ने पैदा किया नागिन डँसि खाया ।
कोइ कोइ जन भागत भये गुरु सरन तकाया ॥ १ ॥
सिंगी रिषि‡ भागत भये बन माँ बसे जाई ।
आगे नागिन गाँसि के वोहीं डँसि खाई ॥ २ ॥
नेजाधारी सिव बड़े भागे कैलासा ।
जोति रूप परगट भई परबत परकासा ॥ ३ ॥
सुर नर मुनि जोगी जती कोइ बचन न पाया ।
नोन तेल ढूँढ़े नहीं कच्चे धरि खाया ॥ ४ ॥
नागिन डरपै संत से उहवाँ नहिं जावै ।
कहैं कबीर गुर मंत्र से आपै मरि जावै ॥ ५ ॥

---

*रावन लंका का राजा और मेघनाद उसका बेटा दोनोँ भारी जोधा थे अंत को रावन श्रीरामचन्द्र के हाथ से और मेघनाद लछमन जी के हाथ से मारे गये ।

†हिरण्यकश्यप बड़ा ईश्वर द्रोही था और अपने भगवत भक्त बेटे प्रहलाद को भक्ति के अपराध में मार डालने पर तत्पर था । ईश्वर ने नरसिंहावतार धर कर अपने नख से हिरण्यकश्यप का पेट फाड़ कर उस का बध किया ।

‡शृंगी ऋषि की कथा मिश्रित अंग के आख़िर शब्द की पहली कड़ी के नोट में देखिये ।

॥ शब्द २६ ॥

पानी बिच मीन पियासी। मोहिं सुनि सुनि आवत हाँसी। टेक
आतम ज्ञान बिना सब झूठा, क्या मथुरा क्या कासी ॥ १ ॥
घर में वस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी ॥ २ ॥
मृग के नाभि माहिं कस्तूरी, बन बन खोजत बासी* ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सहज मिलै अबिनासी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३० ॥

अवधू निरंजन जाल पसारा ॥ टेक ॥
स्वर्ग पताल जीव मृत-मंडल, तीन लोक बिस्तारा ।
ब्रह्मा बिस्नु सिव प्रगट किये है, ताहि दियो सिर भारा १
ठाँव ठाँव तीरथ ब्रत थाप्यो, ठगने को संसारा ।
माया मोह कठिन बिस्तारा, आपु भयो करतारा ॥ २ ॥
सतगुरु सब्द को चीन्हत नाहीं, कैसे होय उबारा ।
जारि भूँजि कोइला करि डारै, फिरि फिरि लै अवतारा ॥३॥
अमर लोक जहँ पुरुष बिराजै, तिन का मूँदा द्वारा ।
जिन साहेब से भये निरंजन, सो तो पुरुष है न्यारा ॥ ४ ॥
कठिन काल तें बाचा चाहो, गहो सब्द टकसारा ।
कहैं कबीर अमर करि राखौं, मानौ सब्द हमारा ॥५॥

॥ शब्द ३१ ॥

चंदा झलकै यहि घट माहीं । अंधी आँखन सूझै नाहीं ॥१
यहि घट चंदा यहि घट सूर। यहि घट गाजै अनहद तूर ॥२॥

---

*सुगंधि ।

यहि घट बाजै तबल निसान। बहिरा सब्द सुनै नहिं कान ३
जब लग मेरी मेरी करै। तब लग काज न एकौ सरै॥ ४ ॥
जब मेरी ममता मरि जाय। तब प्रभु काज सँवारैं आय ५
जब लग सिंघ रहै बन माहिं। तब लग वह बन फूलै नाहिं ६
उलट स्यार सिंघ को खाय। उकिठा* बन फूलै हरियाय ७
ज्ञान के कारन करम कमाय। होय ज्ञान तब करम नसाय ८
फल कारन फूलै बनराय। फल लागे पर फूल सुखाय ॥९॥
मिरग पास कस्तूरी बास। आपु न खोजै खोजै घास ॥१०॥
पारै पिंड† मीन लै खाई। कहैं कबीर लोग बौराई ॥११॥

॥ शब्द ३२ ॥

सुनता नहीं धुन की खबर अनहद का बाजा बाजता।
रसमंद मंदिर बाजता बाहर सुने तो क्या हुआ ॥ १ ॥
गाँजा अफीम और पोसता भाँग और सराबैं पीवता।
इक प्रेम रस चाखा नहीं अमली हुआ तो क्या हुआ ॥२॥
कासी गया और द्वारिका तीरथ सकल भरमत फिरै।
गाँठी न खोली कपट की तीरथ गया तो क्या हुआ॥३॥
पोथी किताबैं बाँचता औरों को नित समुझावता।
त्रिकुटी महल खोजै नहीं बक बक मरा तो क्या हुआ ॥४॥
काजी किताबैं खोजता करता नसीहत और को।
महरम नहीं उस हाल से काजी हुआ तो क्या हुआ ॥५॥
सतरंज चौपड़ गंजिफा इक नर्द है बदरंग की।
बाजी न लाई प्रेम की खेला जुआ तो क्या हुआ ॥६॥

*सूखा। †पिंडा।

जोगी दिगम्बर सेवड़ा कपड़ा रँगे रँग लाल से ।
वाकिफ नहीं उस रंग से कपड़ा रँगे से क्या हुआ ॥७॥
मंदिर झरोखे रावटी गुल चमन में रहते सदा ।
कहते कबीरा हैं सही घट घट में साहेब रम रहा ॥८॥

॥ शब्द ३३ ॥

जोगिया खेलियो बचाय के, नारि नैन चलैं बान ॥टेक॥
सिंगी* की भिंगी करि डारी, गोरख† के लिपटान ॥१॥
कामदेव महादेव* सतावै कहा कहा करौं बखान ॥ २ ॥
आसन छोड़ि मुछंदर‡ भागे, जल माँ मीन समान ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु चरनन लिपटान ॥४॥

---

*शृंगी ऋषि और महादेव जी को जिस २ प्रकार से माया ने छला वह कथायें मिश्रित अंग के आख़िर शब्द की पहली और चौथी कड़ियों में लिखी हैं।

†कहते हैं कि गोरखनाथ जोगी वन में तपस्या करते थे । एक रोज़ माया स्त्री का रूप धारन करके उनके पास आई और कहा मेरे पति को जंगल में शेर खा गया अब मैं अकेली वन में डरती हूँ दया करके रात को यहाँ रहने दो सुवह को मैं चली जाऊँगी । उन्हों ने कहा अच्छा और एक कोठरी में किवाड़ भीतर से बंद कराके बैठा दिया और कह दिया कि अगर मैं भी आकर कहूँ कि खोलो तो भी किवाड़ मत खोलना । उसने कहा अच्छा । ऋषिजी बैठे भजन करने तो ध्यान में वह स्त्री सनमुख आने लगी उसका नक़्श हृदय पर पड़ गया था बार बार उसी का रूप नज़राई पड़ने लगा, भजन से उठ बैठे, आवाज़ दी कुंडी खोलो उसने कहा हम नहीं खोलेंगे तुमने मना किया था । फिर बेचारे ऐसे काम बस हो गये कि छत तोड़ के कोठे में कूद पड़े । दूसरे रोज़ नदी के पार उसको कंधे पर बैठा कर ले जाना पड़ा । उसने खूब एड़ लगाई और कहा बड़ा टर्रा घोड़ा था इसके लिये मैं ने लोहे की लगाम बनवाई थी यह तो हाथ नहीं आता था अब देखो मैं उसके सिर पर सवार हूँ । सुनते ही होश आया तब माया रूपी स्त्री को छोड़ के भागे ।

‡मुछन्दर नाथ का ज़िक्र है कि एक रोज़ किसी ने कहा कि राज का रस और आनन्द बड़ा मीठा है, मुछन्दरनाथ बोले अच्छा तजरबा करना चाहिये । जोगी

॥ शब्द ३४ ॥

तेरे गवने का दिन नगिचाना, सोहागिनि चेत करौ री॥टेक॥

बालापन तन खेल गँवाऔ, तरुनै चाल कुचाल।
का उत्तर देइहौ रे सजनी, पिय पूछै जब हाल।
समुझ मन का करिहौ री ॥ १ ॥

भौसागर औगाध भँवर है, सूझै वार न पार।
केहि विधि पार उतरबौ सजनी, नहिं खेवट नहिं नाव।
खेवैया विन का करिहौ री ॥ २ ॥

सील सुमति की चुनरी पहिरो, सत मति रंग रँगाय।
ज्ञान तेल सौँ माँग सँवारौ, निर्भय सँदुर लाय।
कपट पट खोल धरौ री ॥ ३ ॥

पिय घर चेत करौ री सजनी, नैहर नाहिं निबाह।
नैहर नाम कहा ले करिहौ, मरिहौ भर्म भुलाय।
पुरुप विन का करिहौ री ॥ ४ ॥

गति तो थी ही दूसरी देह में अपने जीव को प्रवेश करने की सामरथ रखते थे, एक राजा मरता था उसकी देह में प्रवेश किया और अपने चेले गोरखनाथ को कह दिया कि भोग विलास में अगर हम भूल जावें तो तुम यह मंत्र आके पढ़ना। राजा जो मरता था उठ खड़ा हुआ, रानी सब खुश हुईं। एक बरस उनके संग भोग विलास किया मगर ख़ौफ़ था कि किसी वक़्त गोरखनाथ आ जायगा इस लिये हुक्म दिया कि कोई कनफटा जोगी शहर में न आने पावे। राग सुनने का राजा को बड़ा शौक़ था इस लिये गोरखनाथ गाना बजाना सीख कर गाने वालों के संग दरबार में गये और जब मंत्र पढ़ा तब मुछन्दरनाथ को होश आया—फिर अपने पुराने चोले में आ गये।

सासुर सत्त सब्द निर्बानी, त्रिकुटी संगम ध्यान।
झिलमिल जोत जहँ निसु दिन झलकै, तीन बसै इक ठाम।
सुरत दे निरत करौ री ॥ ५ ॥
कहैं कबीर सोई सतवंती, पिव के रंग रँगाय।
अमर लोक हाथै करि लैइ है, तेरो सोहाग सोहाय।
महल बिसराम करौ री ॥ ६ ॥

॥ शब्द ३५ ॥

हंसा हंस मिले सुख होई ॥ टेक ॥
इहाँ तो पाँती है बगुलन की, कदर न जानै कोई ॥१॥
जो हंसा तोरे प्यास छीर की, कूप नीर नहिँ होई।
यह तो नीर सकल ममता को, हंस तजा जस चोई* ॥ २ ॥
षट दरसन पाखंड छानवे, भेष धरे सब कोई।
चार बरन औ बेद किताबैं, हंस निराला होई ॥ ३ ॥
यह जम तीन लोक को राजा, बाँधे अस्त्र सँजोई† ।
सब्द जीत चलो हंस हमारे, तब जम रहि है रोई ॥४॥
कहैं कबीर प्रतीत मान ले, जिव नहिँ जाय बिगोई।
लै बैठारौं अमर लोक मैं, आवा गवन न होई ॥ ५ ॥

॥ शब्द ३६ ॥

माया महा ठगनी हम जानी ॥ टेक ॥
तिरगुन फाँसि लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी ॥ १॥

---

*चोकर। †हथियार को ठीक करके।

केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी ॥ २ ॥
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हूँ मैं पानी ॥ ३ ॥
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी ॥ ४ ॥
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी ॥ ५ ॥
भक्तन के भक्तिन होय बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी ॥ ६ ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी ॥ ७ ॥

॥ शब्द ३७ ॥

अवधू अमल करै सो गावै ।
जौं लग अमल असर ना होवै, तौं लग प्रेम न आवै ॥टेक॥
बिन खाये फल स्वाद बखानै, कहत न सोभा पावै ।
बिन गुरु ज्ञान गाँठि के हीने, नाहक़ बस्तु मुलावै ॥ १ ॥
आँधर हाथ लेय कर दीपक, करि परकास दिखावै ।
औरन आगे करै चाँदना, आपु अँधेरे धावै ॥ २ ॥
आँधर आप आँधर दस गोहने,* जग मैं गुरू कहावै ।
मूल महल की खबर न जानै, औरन को भरमावै ॥ ३ ॥
ले अमृत मूरख रँड सींचै, कलप-बृच्छ बिसरावै ।
लैके बीज ऊसर मैं बोवै, पाहन पानी नावै† ॥ ४ ॥
लागी आग जरै घर आपन, मूरख घूर बुतावै‡ ।
पढ़ा गुना जो पंडित भूलै, वाको को समुझावै ॥ ५ ॥
कहैं कबीर सुनो हो गोरख, यह संतन नहिं भावै ।
है कोइ सूर पूर जग माहीं, जो यह पद अर्थावै ॥ ६ ॥

---

*साथ मैं। †पत्थर की मूरत पर पानी चढ़ाता है। ‡घर मैं आग लगी है और घूर पर पानी डालता है।

॥ शब्द ३८ ॥

तन धर सुखिया कोइ न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहतु हैं, सब का किया बिबेका हो॥ १॥
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
सुकदेव* अचारज दुख के डर से, गर्भ से माया त्यागी हो॥२॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुख दूना हो।
आसा तृस्ना सबको व्यापै, कोई महल न सूना हो॥३॥
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो।
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥४॥
अवधू दुखिया भूपति दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो।
कहैं कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो॥५॥

॥ शब्द ३९ ॥

मानुष जनम सुधारो साधो, धोखे काहे बिगाड़ो हो।
ऐसा समय बहुर नहिं पैहो, जनम जुआ मति हारो हो॥१॥
गुड़ा गुड़ी खियाल जिन भूलो, मूल तत्त लौ लाओ हो।
जब लग घट सौं परिचे नाहीं, तब लग कछु नहिं पाओ हो २
तीरथ ब्रत और जप तप संजम, या करनी मत भूलो हो।
करम फंद में जुग जुग पड़िहो, फिर फिर जोनि में झूलो हो ३
ना कछु न्हाये ना कछु धोये, ना कछु घंट बजाये हो।
ना कछु नेती ना कछु धोती, ना कछु नाचे गाये हो॥४॥
सिंगी सेल्ही† भभूत औ बटुआ, साँई स्वाँग से न्यारा हो।
कहैं कबीर मुक्ति जो चाहो, मानौ सब्द हमारा हो॥५॥

---

*सुकदेव मुनि जी बारह बरस गर्भ में रहे पैदा होते ही जंगल को माया के भय से भागे। †सिंगी मुँह से बजाने का बाजा और सेल्ही नाम साधुओं के पहिरने की मेखली का है।

॥ शब्द ४० ॥

जिन के नाम ना है हिये ॥ टेक ॥

क्या होवै गल माला डाले, कहा सुमिरनी लिये ॥१॥
क्या होवै पुस्तक के बाँचे, कहा संख धुन किये ॥२॥
क्या होवै कासी मैं बसि के, क्या गंगा जल पिये ॥३॥
होवै कहा बरत के राखे, कहा तिलक सिर दिये ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जाता है जम लिये ॥५॥

॥ शब्द ४१ ॥

साधो पाँड़े निपुन कसाई ॥ टेक ॥

बकरी मारि भेड़ि को धाये, दिल मैं दरद न आई ॥१॥
करि अस्नान तिलक दै बैठे, बिधि सोँ देबि पुजाई ॥२॥
आतम मारि पलक मैं बिनसे, रुधिर की नदी बहाई ॥३॥
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये, सभा माहिँ अधिकाई ॥४॥
इन से दिच्छा* सब कोइ माँगे, हँसी आवै मोहिँ भाई ॥५॥
पाप कटन को कथा सुनावैं, करम करावैं नीचा ॥६॥
बूड़त दोऊ परस्पर देखे, गहे बाँहि जम खींचा ॥७॥
गाय बधै सो तुरुक कहावै, यह क्या इन से छोटे ॥८॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, कलि मैं बाम्हन खोटे ॥९॥

॥ शब्द ४२ ॥

को सिखवै अधमन को ज्ञाना ॥ टेक ॥

साध की संगत कबहुँ न कीन्ही रटत रटत जग जन्म सिराना† ॥१॥
दया धर्म कबहूँ नहिँ चीन्हा, नहिँ गुरु सब्द समाना ॥२॥
कर्जा करि के बेस्या राखै, साध आय तो नहिँ घर दाना ॥३॥
कहैं कबीर जब जमपुर जैहै, मारहि मार उठै घमसाना ॥४॥

---

*मंत्र। †बीता।

॥ शब्द ४३ ॥

भक्ति सब कोइ करै भरमना ना टरै,
भरम जंजाल दुख दुन्द भारी ॥ १ ॥
काल के जाल मैं जक्त सब फँसि रहा,
आस की डोरि जम देत डारी ॥ २ ॥
ज्ञान सूझै नहीं सब्द बूझै नहीं,
सरन ओटा नहीं गर्ब धारी ॥ ३ ॥
ब्रह्म चीन्है नहीं भर्म पूजत फिरै,
हिये के नैन क्यों फोरि डारी ॥ ४ ॥
काटि सरजीव धरि थाप निरजीव को,
जीव के हतन अपराध भारी ॥ ५ ॥
जीव का दर्द बेदर्द कसकै नहीं,
जीभ के स्वाद नित जीव मारी ॥ ६ ॥
एक पग ठाढ़ कर जोर बिनती करै,
रच्छ बल जाउँ सरना तिहारी ॥ ७ ॥
वहाँ कछु है नहीं अरज अंधा करै,
कठिन डंडौत नहिं टरत टारी ॥ ८ ॥
यही आकर्म* से नर्क पापी पड़ै,
करम चंडाल की राह न्यारी ॥ ९ ॥
धन्न सौभाग जिन साध संगत करी,
ज्ञान की दृष्टि लीजै बिचारी ॥ १० ॥
सत्त दावा गहौ आपु निर्भय रहौ ।
आपु को चीन्हि लखु नाम सारी ॥ ११ ॥

---

*कुकर्म ।

कहैं कब्बीर तू सत्त पर नजर कर।
बोलता ब्रह्म सब घट उजारी ॥ १२ ॥

॥ शब्द ४४ ॥

करो रे मन वा दिन की ततबीर* ॥ टेक ॥
जब जमराजा आनि पड़ैंगे, नेक घरत नहिं धीर ॥१॥
मुँगरिन मारि के प्रान निकासत, नैनन भरि आयो नीर ॥२॥
भौसागर इक अगम पंथ है, नदिया बहुत गँभीर ॥३॥
नाव न बेड़ा लोग घनेरा, खेवट है बेपीर ॥४॥
घर तिरिया अरधंगी बैठी, मातु पिता सुत बीर ॥ ५ ॥
माल मुलुक को कौन चलावै, संग न जात सरीर ॥ ६ ॥
लै कै बोरत नरक कुंड मैं, ब्याकुल होत सरीर ॥७॥
कहत कबीर नर अब से चेतो, माफ होय तकसीर ॥८॥

॥ शब्द ४५ ॥

सुख सिंध की सैर का स्वाद तब पाइ है, चाह का चौतरा भूलि जावै।
बीज के माहिँ ज्यौं बृच्छ बिस्तार, यौं चाह के माहिँ सब रोग आवै ॥१॥
दृढ़ बैराग मैं होय आरूढ़ मन, चाह के चौतरे आग दीजै।
कहैं कब्बीर यौं होय निरबासना, तत्त सौं रत्त होय काज कीजै ॥२॥

॥ शब्द ४६ ॥

साधो भाई जीवत ही करो आसा ॥ टेक ॥
जीवत समुझै जीवत बूझै, जीवत मुक्ति निवासा।
जियत करम की फाँसि न काटी, मुए मुक्ति की आसा ॥१॥

---

*तदबीर।

तन छूटे जिव मिलन कहतु है, सो सब झूठी आसा ।
अबहुँ मिला सो तबहुँ मिलैगा, नहिं तो जमपुर वासा॥२॥
दूर दूर ढूँढ़े मन लोभी, मिटै न गर्भ तरासा ।
साध संत की करै न बँदगी, कटै करम की फाँसा ॥३॥
सत्त गहै सतगुरु को चीन्है, सत्त नाम बिस्वासा ।
कहैं कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा ॥४॥

॥ शब्द ४७ ॥

आगे समुझि परैगा भाई ॥टेक॥
यहाँ अहार उद्र भर खाये, बहु बिधि मास बढ़ाई ॥१॥
जीव जन्तु रस मार खातु है, तनिक दरद नहिं आई ॥२॥
यहँ तो परधन लूटि खातु है, गल बिच फाँसि लगाई ॥३॥
तिन के पीछे तीन पियादा, छिन छिन खबर लगाई ॥४॥
साध संत की निंदा कीन्ही, आपन जनम नसाई ॥५॥
पग्ग पग्ग पर काँटा घसिहै, यह फल आगे आई ॥६॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, दुनियाँ है दुचिताई ॥७॥
साँच कहै तो मारा जावै, झूठे जग पतियाई ॥८॥

॥ शब्द ४८ ॥

रहना नहिँ देस बिराना है ॥ टेक ॥
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है ॥१॥
यह संसार काँट की बाड़ी, उलझ पुलझ मरि जाना है ॥२॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर, आग लगे बरि जाना है ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है ॥४॥

॥ शब्द ४६ ॥

बागों ना जा रे ना जा तेरे काया में गुलजार ॥टेक॥
करनी क्यारी बोइ के रहनी करु रखवार ।
दुर्मति काग उड़ाइ के देखै अजब बहार ॥१॥
मन माली परबोधिये करि संजम की बार ।
दया पौद सूखै नहीं छिमा सींच जल ढार ॥२॥
गुल औ चमन के बीच में फूला अजब गुलाब ।
मुक्ति कली सतमाल की पहिरु गूँथि गल हार ॥३॥
अष्ट कमल से ऊपजै लीला अगम अपार ।
कहैं कबीर चित चेत के आवागवन निवार ॥४॥

॥ शब्द ५० ॥

सुमिरन बिन गोता खावोगे ॥टेक॥
मुट्ठी बाँधे गर्भ से आये, हाथ पसारे जावोगे ॥१॥
जैसे मोती फरत ओस के, बेर भये झरि जावोगे ॥२॥
जैसे हाट लगावै हटवा,* सौदा बिन पछितावोगे ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सौदा लेकर जावोगे ॥४॥

॥ शब्द ५१ ॥

अरे मन समुझ के लादु लदनियाँ ॥टेक॥
काहेक टटुवा काहेक पाखर, काहेक भरी गौनियाँ ॥१॥
मन कै टटुवा सुरति कै पाखर, भरीं पुन्न पाप गौनियाँ ॥२॥
घर के लोग जगाती लागे, छीन लेयँ कर धनियाँ ॥३॥
सौदा करु तो यहीं करु भाई, आगे हाट न बनियाँ ॥४॥

---

*दुकानदार ।

पानी पी तो यहीं पी भाई, आगे देस निपनियाँ ॥५॥
कह कबीर सुनो भाइ साधो, सत्त नाम का बनियाँ ॥६॥

॥ शब्द ५२ ॥

दिवाने मन भजन बिना दुख पैहै ॥टेक॥
पहिला जनम भूत का पैहौ, सात जनम पछितैहौ ।
काँटे पर लै पानी पैहौ, प्यासन ही मरि जैहै ॥ १ ॥
दूजा जनम सुवा का पैहौ, बाग बसेरा लेइहौ ।
टूटे पंख बाज मँडराने, अधफड़ प्रान गँवैहै ॥२॥
बाजीगर के बानर होइहै, लकड़िन नाच नचैहै ।
ऊँच नीच से हाथ पसरिहै, माँगे भीख न पैहै ॥३॥
तेली के घर बैला होइहौ, आँखिन ढाँप ढँपैहौ ।
कोस पचास घरै मैं चलिहै, बाहर होन न पैहै ॥४॥
पँचवाँ जनम ऊँट के पैहौ, बिन तौले बोझ लदैहै ।
बैठे से तो उठै न पैहै, घुरच घुरच मरि जैहौ ॥५॥
धोबी घर के गदहा होइहौ, कटी घास ना पैहौ ।
लादी लादि आपु चढ़ि बैठे, लै घाटे पहुँचैहौ ॥६॥
पंछी माँ तौ कौवा होइहै, करर करर गुहरैहै ।
उड़ि के जाइ मैला पर बैठौ, गहिरे चौंच लगैहै ॥७॥
सत्तनाम की टेर न करिहै, मनहीं मन पछितैहै ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, नरक निसानी पैहै ॥८॥

॥ शब्द ५३ ॥

माल जिन्हों ने जमा किया, सौदा परि हारे* जाते हैं ॥टेक॥
ऊँचा नीचा महल बनाया, जा बैठे चौबारे हैं ।
सुबह तलक तो जागे रहना, साम पुकारे जाते हैं ॥१॥

---

*छोड़ना ।

जग के रस्ते मत चल प्यारे, ठग या पार घनेरे हैं।
इस नगरी के बीच मुसाफिर, अक्सर मारे जाते हैं ॥२॥
भाई बंध औ कुटुँब कबीला, सब ठग ठग के खाते हैं।
आया जम जब दिया नगारा, साफ अलग हो जाते हैं ॥३॥
जोरू कौन खसम है किसका, कौन किसी के नाते हैं।
कहैं कबीर जो बँदगी गाफिल, काल उन्हीं को खाते हैं॥४॥

॥ शब्द ५४ ॥

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का ॥ टेक ॥
ऐंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का ॥१॥
टूटे तार बिखरि गइ खूँटी, हो गया धूरम धूरे का ॥२॥
या देही का गर्ब न कीजै, उड़ि गया हंस तँबूरे का ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अगम पंथ कोइ सूरे का ॥४॥

॥ शब्द ५५ ॥

नैहर मैं दाग लगाय आइ चुनरी ॥ टेक ॥
ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कौन करै उजरी ॥ १ ॥
तन कै कूँड़ी ज्ञान कै सौंदन,
साबुन महँग बिकाय या नगरी ॥ २ ॥
पहिरि ओढ़ि के चली ससुररिया,
गौंवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो,
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५६ ॥

अरे इन दूहुन राह न पाई ॥ टेक ॥

हिंदू अपनी करै बड़ाई गागर छुवन न देई ।
बेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिंदुआई ॥ १ ॥
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई ।
खाला केरी बेटी ब्याहै घरहिं मैं करै सगाई ॥ २ ॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय धाय चढ़वाई ।
सब सखियाँ मिलि जैंवन बैठीं घर भर करै बड़ाई ॥ ३ ॥
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो कौन राह ह्वै जाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५७ ॥

सिपाही मन दूर खेलन मत जाव ॥ टेक ॥

दूर खेलन से मनुआँ दुखित होय, गगन मँडल मठ छाव ॥ १ ॥
येहि पार गंगा वोहि पार जमुना, बीच सरसुती न्हाव ॥ २ ॥
पाँच को मारि पचीस को बस करि, तीन को पकरि मँगाव ३
कहैं कबीरा धरमदास से, सब्द मैं सुरत लगाव ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५८ ॥

डर लागै और हाँसी आवै, अजब जमाना आया रे ॥ टेक ॥

धन दौलत लै माल खजाना, बेस्या नाच नचाया रे ।
मुट्ठी अन्न साध कोइ माँगै, कहैं नाज नहिं आया रे ॥ १ ॥
कथा होय तहँ स्रोता सोवैं, बक्ता मूड़ पचाया रे ॥
होय जहाँ कहिं स्वाँग तमासा, तनिक न नींद सताया रे ॥ २

भंग तमाखू सुलफा गाँजा, सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु चरनामृत नेम न धारै, मधुवा* चाखन आया रे ॥३॥
उलटी चलन चली दुनियाँ मैं, ता तैं जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, फिर पाछे पछिताया रे ॥४॥

॥ शब्द ५६ ॥

अवधू भजन भेद है न्यारा ॥ टेक ॥
क्या गाये क्या लिखि बतलाये, क्या भर्मे संसारा।
क्या संध्या तर्पन के कीन्हे, जो नहिं तत्त बिचारा ॥१॥
मूड़ मुड़ाये सिर जटा रखाये, क्या तन लाये छारा†।
क्या पूजा पाहन की कीन्हे, क्या फल किये अहारा ॥२॥
बिन परिचे साहेब होइ बैठे, विषय करै ब्योपारा॥
ज्ञान ध्यान का मर्म न जानै, बाद‡ करै हंकारा ॥३॥
अगम अथाह महा अति गहिरा, बीज न खेत निवारा§।
महा सो ध्यान मगन ह्वै बैठे, काट करम की छारा§ ॥४॥
जिनके सदा अहार अंतर मैं, केवल तत्त बिचारा।
कहैं कबीर सुनो हो गोरख, तारौं सहित परिवारा ॥५॥

॥ शब्द ६० ॥

अवधू अच्छरहूँ सौं न्यारा ॥ टेक ॥
जो तुम पवना गगन चढ़ावो, करो गुफा मैं बासा।
गगना पवना दोनौं बिनसैं, कहँ गयो जोग तुम्हारा ॥१॥

---

*शराब। †राख। ‡झूठा। §इन डिंभी भेखौं ने भजन भेद रूपी बीज को जो अगम अथाह और महा गहिरा है अपने हृदय-रूपी खेत मैं नहीं बोया; जिन सच्चे भक्तौं ने उसे महा अर्थात मथा वह कर्म की मैल को काट कर ध्यान मैं मगन हो बैठे।

गगना मद्धे जोती झलकै, पानी मद्धे तारा ।
घटि गे नीर बिनसि गे तारा, निकर गयो केहि द्वारा ॥२॥
मेरुडंड पर डारि दुलैची, जोगिन तारी लाया ।
सोइ सुमेर पर खाक उड़ानी, कच्चा जोग कमाया ॥३॥
इँगला बिनसै पिँगला बिनसै, बिनसै सुखमनि नाड़ी ।
जब उनमुनि की तारी टूटै, तब कहँ रही तुम्हारी ॥४॥
अद्वैत बैराग कठिन है भाई, अटके मुनिवर जोगी ।
अच्छर लौं की गम्म बतावै, सो है मुक्ति बिरोगी ॥५॥
कह अरु अकह दोऊ तेँ न्यारा, सत्त असत्त के पारा ।
कहैं कबीर ताहि लखि जोगी, उतरि जाव भव पारा ।६॥

॥ शब्द ६१ ॥

अब से खबरदार रहो भाई ॥ टेक ॥
सतगुरु दीन्हा माल खजाना, राखो जुगत लगाई ।
पाव रती घटने नहिँ पावै, दिन दिन बढ़ै सवाई ॥१॥
छिमा सील की अलफी† पहिनै, जुगति लँगोट लगाई ।
दया की टोपी सिर पर दैके, और अधिक बनि आई ॥२॥
बस्तु पाय गाफिल मत रहना, निसि दिन करो कमाई ।
घट के भीतर चोर लगतु हैं, बैठे घात लगाई ॥ ३ ॥
तन बंदूक सुमति का सिँगरा, प्रीति का गज ठहकाई ।
सुरति पलीता हर दम सुलगै, कस पर राखु चढ़ाई ॥४॥

---

*ऊनी आसन । †साधुओं का बिना बँहोली का वस्त्र ।

बाहर वाला खड़ा सिपाही, ज्ञान गम्म अधिकाई ।
साहेब कबीर आदि के अदली, हर दम लेत जगाई ॥५॥

॥ शब्द ६२ ॥

साधो देखो जग बौराना ।
साँचि कहैा तौ मारन धावै, झूँठे जग पतियाना ॥टेक॥
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना ।
आपस मेँ दोउ लड़े मरतु हैँ, मरम कोई नहिँ जाना ॥१॥
बहुत मिले मोहिँ नेमी धर्मी, प्रात करैँ असनाना ।
आतम छोड़ि पषानै पूजैँ, तिन का थोथा ज्ञाना ॥२॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे, मन मेँ बहुत गुमाना ।
पीतर पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त भुलाना ॥ ३ ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप तिलक अनुमाना ।
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना ॥ ४ ॥
घर घर मंत्र जो देत फिरत हैँ, माया के अभिमाना ।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े, अंतकाल पछिताना ॥५॥
बहुतक देखे पीर औलिया, पढ़ैँ किताब कुराना ।
करैँ मुरीद कबर बतलावैँ, उनहूँ खुदा न जाना ॥ ६ ॥
हिन्दू की दया मेहर तुरकन की, दोनोँ घर से भागी ।
वह करैँ जिबह वो झटका मारैँ, आग दोऊ घर लागी ॥७॥
या बिधि हँसत चलत हैँ हमको, आप कहावैँ स्याना ।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, इन मेँ कौन दिवाना ॥८॥

॥ शब्द ६३ ॥

मोरे जियरा बड़ा अँदेसवा, मुसाफिर जैहै। कौनी ओर ॥टेक
मोह का सहर कहर नर नारी, दुइ फाटक घनघोर ।
कुमती नायक फाटक रोके, परिहै। कठिन झिँझोर ॥१॥
संसय नदी अगाड़ी बहती, विषम धार जल जोर ।
क्या मनुवाँ तुम गाफिल सोवौ, इहवाँ मोर औ तोर ॥२॥
निसि दिन प्रीति करो साहेब से, नाहिन कठिन कठोर ।
काम दिवान क्रोध है राजा, बसैं पचीसो चोर ॥ ३ ॥
सत्त पुरुष इक बसैं पछिम दिसि, तासोँ करो निहोर ।
आवै दरद राह तोहि लावै, तब पैहै। निज ओर ॥ ४ ॥
उलटि पाछिलो पैँड़ा पकड़ो, पसरा मना बटोर ।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, तब पैहो निज ठैार ॥५॥

॥ शब्द ६४ ॥

क्या माँगैाँ कछु थिर न रहाई, देखत नैन चल्यो जग जाई॥१
इक लख पूत सवालख नाती, जा रावन घर दिया न बाती २
लंका सा कोट समुद्र सी खाई, जा रावन की खबर न पाई ३
सोने कै महल रूपे कै छाजा, छोड़ि चले नगरी के राजा ॥४॥
कोइ करै महल कोई करै टाटी, उड़ि जाय हंस पड़ी रहै माटी
आवत संग न जात सँगाती, कहा भये दल बाँधे हाथी ॥६॥
कहैँ कबीर अंत की बारी, हाथ झारि ज्योँ चला जुवारी ॥७॥

॥ शब्द ६५ ॥

पी ले प्याला हो मतवाला,
प्याला नाम अमी रस का रे ॥ टेक ॥

बालपना सब खेलि गँवाया,
तरुन भया नारी बस का रे ॥ १ ॥
बिरध भया कफ बाय ने घेरा,
खाट पड़ा न जाय खिसका रे ॥ २ ॥
नाभि कँवल बिच है कस्तूरी,
जैसे मिरग फिरै बन का रे ॥ ३ ॥
बिन सतगुरु इतना दुख पाया,
बैद मिला नहिँ इस तन का रे ॥ ४ ॥
मातु पिता बंधू सुत तिरिया,
संग नहीँ कोइ जाय सका रे ॥ ५ ॥
जब लग जीवै गुरु गुन गा ले,
धन जोबन है दिन दस का रे ॥ ६ ॥
चौरासी जो उबरा चाहै,
छोड़ु कामिनी का चसका रे ॥ ७ ॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो,
नख सिख पूर रहा बिष का रे ॥ ८ ॥

॥ शब्द ६६ ॥

लखै रे कोइ बिरला पद निरबान ॥ टेक ॥
तीन लोक मेँ यह जम राजा,
चौथे लोक मेँ नाम निसान ॥ १ ॥
याहि लखत इन्द्रादिक थकि गे,
ब्रह्मा थकि गे पढ़त पुरान ॥ २ ॥

गोरख दत्त वशिष्ट व्यास मुनि,
सिम्भू थकि गे धरि धरि ध्यान ॥३॥
कहैं कबीर लखै कोइ बिरला,
जिन पाये सतगुरु को ज्ञान ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६७ ॥

जारौं मैं या जग की चतुराई ॥ टेक ॥
साँईं को नाम न कबहूँ सुमिरै, जिन यह जुगति बताई ॥१॥
जोरत दाम काम अपने को, हम खैहैं लरिका बिलसाई ॥२॥
सो धन चोर मूसि लै जावैं, रहा सहा लै जाय जमाई ॥३॥
यह माया जैसे कलवारिन, मद्य पियाय राखै बौराई ॥४॥
इक तो पड़े धूरि में लोटैं, एक कहैं चोखी दे भाई ॥५॥
सुर नर मुनि माया छलि मारे, पीर पयम्बर को धरि खाई।६।
कोइ इक भाग बचे सतसंगति, हाथ मलै तिन को पछिताई।७॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, लै फाँसी हमहूँ को आई ।८॥
गुरु की दया साध की संगति, बचिगे अभय निसान बजाई।९

॥ शब्द ६८ ॥

जियरा जावगे हम जानी ॥ टेक ॥
पाँच तत्त को बनो है पींजरा, जा में बस्तु बिरानी ।
आवत जावत कोइ न देख्यो, डूबि गयो बिनु पानी ॥१॥
राजा जैहैं रानी जैहैं, और जैहैं अभिमानी ।
जोग करंते जोगी जैहैं, कथा सुनंते ज्ञानी ॥ २ ॥

पाप पुन्न की हाट लगी है, धरम दंड दरबानी ।
पाँच सखी मिलि देखन आईं, एक से एक सियानी ॥३॥
चंदो जैहैं सुरजो जैहैं, जैहैं पवन औ पानी ।
कहैं कबीर इक भक्त न जैहैं, जिनकी मति ठहरानी ॥४॥

॥ शब्द ६९ ॥

मन तू क्यों भूला रे भाई । तेरी सुधि बुधि कहाँ हिराई १
जैसे पंछी रैन बसेरा, बसै बृच्छ में आई ।
भोर भये सब आपु आपु को, जहाँ तहाँ उड़ि जाई ॥२॥
सुपने में तोहि राज मिल्यो है, हाकिम हुकम दुहाई ।
जागि पस्यो तब लाव न लसकर, पलक खुले सुधि पाई ३
मातु पिता बंधू सुत तिरिया, ना कोइ सगो सँगाई ।
यह तो सब स्वारथ के संगी, झूठी लोक बड़ाई ॥४॥
सागर माहीं लहर उठतु हैं, गनिता गनी न जाई ।
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, दरिया लहर समाई ॥५॥

॥ शब्द ७० ॥

मानत नहिं मन मोरा साधो, मानत नहिं मन मोरा रे ।टेक
बार बार मैं कहि समझावौं, जग में जीवन थोरा रे ॥१॥
या काया को गर्ब न कीजै, क्या साँवर क्या गोरा रे ॥२॥
बिना भक्ति तन काम न आवै, कोटि सुगंधि चभोरा रे ॥३॥
या माया जनि देखि रे भूलौ, क्या हाथी क्या घोड़ा रे ॥४॥
जोरि जोरि धन बहुत बिगूचे, लाखन कोटि करोरा रे ॥५॥
दुबिधा दुरमति औ चतुराई, जनम गयो नर बौरा रे ॥६॥

अजहूँ आनि मिलो सत संगति, सतगुरु मान निहोरा रे॥७॥
लेत उठाइ परत भुइँ गिरि गिरि, ज्यों बालक बिन कोराँ* रे॥८
कहैं कबीर चरन चित राखो, ज्यों सूई बिच डोरा रे॥९॥

॥ शब्द ७१ ॥

अबधू माया तजी न जाई ॥ टेक ॥
गृह को तजि के बस्तर बाँधा, बस्तर तजि के फेरी ।
लरिका तजि के चेला कीन्हा, तहुँ मति माया घेरी ॥१॥
जैसे बेल बाग मेँ अरुझी, माहिँ रही अरुझाई ।
छोरे से वह छूटै नाहीं, कोटिन करै उपाई ॥२॥
काम तजे तेँ क्रोध न जाई, क्रोध तजे तेँ लोभा ।
लोभ तजे अहंकार न जाई, मान बड़ाई सोभा ॥३॥
मन बैरागी माया त्यागी, सब्द मेँ सुरत समाई ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह गम बिरले पाई ॥४॥

॥ शब्द ७२ ॥

नाम भजा सोइ जीता जग मेँ, नाम भजा सोइ जीता रे॥टेक
हाथ सुमिरिनी पेट कतरनी, पढ़ै भागवत गीता रे ।
हिरदय सुध किया नहिँ बौरे, कहत सुनत दिन बीता रे॥१॥
आन देव की पुजा कीन्ही, गुरु से रहा अमीता† रे ।
धन जोबन तेरा यहीं रहैगा, अंत समय चलि रीता‡ रे ॥२॥
बावरिया ने बावर डारी, फंद जाल सब कीता रे ।
कहत कबीर काल आइ खैहै, जैसे मृग को चीता रे ॥३॥

---

*गोद । †अजान । ‡ खाली ।

॥ शब्द ७३ ॥

दुलहिनी अँगिया काहे न धोवाई ॥ टेक ॥
बालपने की मैली अँगिया, बिषय दाग परि जाई ॥ १ ॥
बिन धोये पिय रीझत नाहीं, सेज से देत गिराई ॥ २ ॥
सुमिरन ध्यान कै साबुन करि ले, सत्तनाम दरियाई ॥३॥
दुबिधा के बँद खोल बहुरिया,* मन कै मैल धोवाई ॥४॥
चेत करो तीनौं पन बीते, अब तो गवन नगिचाई ॥५॥
चालनहार द्वार हैं ठाढ़े, अब काहे पछिताई ॥६॥
कहत कबीर सुनो री बहुरिया, चित अंजन दे आई ॥७॥

॥ शब्द ७४ ॥

नाम सुमिरि पछितायगा ॥ टेक ॥
पापी जियरा लोभ करतु है, आज काल उठि जायगा ॥१
लालच लागी जनम गँवाया, माया भरम भुलायगा ॥२॥
धन जोबन का गर्ब न कीजै, कागद ज्यौं गलि जायगा ॥३॥
जब जम आय केस† गहि पटकै, ता दिन कछु न बसायगा ४
सुमिरन भजन दया नहिं कीन्ही, तो मुखचोटा‡ खायगा ॥५॥
धर्मराय जब लेखा माँगै, क्या मुख लेके जायगा ॥ ६ ॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, साध संग तरि जायगा ॥७॥

॥ शब्द ७५ ॥

अभागा तुम ने नाम न जाना ॥ टेक ॥
करिके कौल उहाँ से आयौ, इहवाँ भरम भुलाना ।
सत्त नाम बिसराय दियो है, मोह मया लिपटाना ॥१॥

---

*दुलिहन । † बाल । ‡चोट ।

मात पिता सुत बंधु कुटुम्बी, औ बहु माल खजाना।
बाँह पकरि जब जम लै चलिहै, सब ही होय बिगाना।२॥
लाल फूल सेमर लखे, सुगना लिपटाना।
मारत चुंच रुई उधियानी, फिर पाछे पछिताना॥ ३ ॥
मानुस चोला पाइ कै, का करै गुमाना।
जस पानी कै बुलबुला, छिन माहिँ बिलाना ॥ ४ ॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, देखो जग बौराना।
अब के गये बहुरि नहिँ आवौ, लहौ जो सत परवाना ॥५॥

॥ शब्द ७६ ॥

मोरी चुनरी मैँ परि गयो दाग पिया ॥ टेक ॥
पाँच तत्त की बनी चुनरिया, सोरह सै बँद लागे जिया ॥१॥
यह चुनरी मोरे मैके तेँ आई, ससुरे मैँ मनुवा खोय दिया ॥२॥
मलि मलि धोई दाग न छूटे, ज्ञान को साबुन लाय पिया॥३॥
कहैँ कबीर दाग तब छुटिहै, जब साहेब अपनाय लिया ॥४

॥ शब्द ७७ ॥

गुरु से लगन कठिन है भाई।
लगन लगे बिन काज न सरिहै, जीव प्रलय होइ जाई॥टेक॥
जैसे पपिहा प्यासा बुंद का, पिया पिया रटि लाई।
प्यासे प्रान तलफ दिन राती, और नीर ना भाई ॥१॥
जैसे मिरगा सब्द सनेही, सब्द सुनन को जाई।
सब्द सुनै औ प्रान दान दे, तनिको नाहिँ डेराई ॥२॥

जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, पिय की राह मन भाई।
पावक* देख डरे वह नाहीं, हँसत बैठ सरा* माईं ॥ ३ ॥
दो दल सन्मुख आन जुड़े हैं, सूरा लेत लड़ाई।
टूक टूक होइ गिरे धरनि पर, खेत छोड़ि नहिं जाई ॥४॥
छोड़ो तन अपने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, नाहिं तो जनम नसाई ॥५॥

॥ शब्द ७८ ॥

मेरा तेरा मनुआँ कैसे इक होइ रे ॥ टेक ॥
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो उरझाइ रे ॥ १ ॥
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोहि रे ॥ २ ॥
जुगन जुगन समुझावत हारा, कही न मानत कोइ रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोइ रे ॥ ३ ॥
सतगुरु धारा निर्मल बाहै, वा मैं काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, तब ही वैसा होइ रे ॥४॥

॥ शब्द ७९ ॥

अवधू अंध कूप अँधियारा ॥ टेक ॥
या घट भीतर सात समुंदर, याहि मैं नद्दी नारा ॥१॥
या घट भीतर कासी द्वारिका, याहि मैं ठाकुरद्वारा ॥२॥

---

*आग।

या घट भीतर चंद्र सूर है, याहि मैं नौ लख तारा ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, याहि मैं सत करतारा ॥४॥

॥ शब्द ८० ॥

जाग री मेरी सुरत सोहागिन जाग री ॥ टेक ॥
का तुम सोवत मोह नींद मैं, उठि के भजनियाँ मैं लाग री ॥१
चित से सब्द सुनो सरवन दै, उठत मधुर धुन राग री ॥२
दोउ कर जोरि सीस चरनन दै, भक्ति अचल बर माँग री ॥३
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, जक्त पीठ दै भाग री ॥४

॥ शब्द ८१ ॥

भजो हो सतगुरु नाम उरी* ॥ टेक ॥
जप तप साधन कछु नहिं लागत, खर्चत ना गठरी ॥१॥
संपति संतति सुख के कारन, या सौं भूलि परी ॥ २ ॥
जेहि मुख सत्त नाम नहिं निकसत, सो मुख धूरि परी ॥३॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु चरनन सुधरी ॥४॥

॥ शब्द ८२ ॥

अवधू भूले को घर लावै, सो जन हम को भावै ॥टेक॥
घर मैं जोग भोग घर ही मैं, घर तजि बन नहिं जावै ।
बन के गये कलपना उपजै, तब धौं कहाँ समावै ॥ १ ॥
घर मैं जुक्ति मुक्ति घर ही मैं, जो गुरु अलख लखावै ।
सहज सुन्न मैं रहै समाना, सहज समाधि लगावै ॥२॥

*हृदय से ।

उनमुनि रहै ब्रह्म को चीन्है, परम तत्त को ध्यावै ।
सुरत निरत सोँ मेला करिके, अनहद नाद बजावै ॥३॥
घर में बसत बस्तु भी घर है, घर ही बस्तु मिलावै ।
कहैं कबीर सुनो हो अबधू, ज्योँ का त्योँ ठहरावै ॥४॥

॥ शब्द ८३ ॥

को जानै बात पराये मन की ॥ टेक ॥
रात अँधेरी चोरा डाँटै, आस लगाये पराये धन की ॥१॥
आँधर मिरग बनै बन डोलै, लागो बान खबर ना तन की ॥२
महा मोह की नींद परी है, चूनर लेगा सुहागिल तन की ॥३
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु जाने हैं पराये मन की ॥४

॥ शब्द ८४ ॥

समुझ नर मूढ़ बिगारी रे ॥ टेक ॥
आया लाहा कारने तैं, क्योँ पूँजी हारी रे ॥१॥
गर्भ बास बिनती करी, सो तैं आन बिसारी रे ॥२॥
माया देख तू भूलिया, और सुन्दर नारी रे ॥३॥
बड़े साह आगे गये, ओछा ब्योपारी रे ॥४॥
लौंग सुपारी छाँड़ि के, क्योँ लादी खारी* रे ॥५॥
तीरथ बरत में भटकता, नहिं तत्त बिचारी रे ॥६॥
आन देव को पूजता, तेरी होगी ख्वारी रे ॥७॥

---

*नोन ।

क्या लाया क्या लै चला, करि पल्ला भारी रे ॥८॥
कहैं कबीर जग योँ चला, जस हारा ज्वारी रे ॥९॥

॥ शब्द ८५ ॥

हिलि मिलि मंगल गाओ मोरी सजनी, भई प्रभात* बीति गई रजनी† ॥१॥
नाचे कूदे क्या होय भैना‡, सतगुरु सब्द समुझ ले सैना ॥२
स्वाँसा तारी सुरत सँग लाओ, तब हंसा अपना घर पाओ॥३
अधर निरंतर फूलि फुलवारी, मनसा मारि करो रखवारी॥४
अमी सींच अमृत फल लागा, पावैगा कोइ संत सुभागा ॥५
कहैं कबीर गूँगे की सैना, अमी महा रस चाखै नैना ॥६

॥ शब्द ८६ ॥

सचमुच खेल ले मैदाना ॥ टेक ॥

सब्द गुरू के दृढ़ करि बाँधो, सुरति की खींच कमाना।
कड़ाबीन करु मन को बस करि, मारो मोह निदाना ॥१॥
फाका फरी ज्ञान का गदका, बाँधि मरहटी बाना।
सनमुख जाय लड़ै जो कोई, वही सूर मरदाना ॥२॥
रंजक ध्यान ज्ञान की पट्टी, प्रेम बरूद खजाना।
भरि भरि तोप झड़ाझड़ मारो, लूटो मुलुक बिगाना ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, प्रेम मेँ हो मस्ताना।
अमर लोक मेँ डेरा दे के, सतगुरु हना§ निसाना ॥४॥

---

*सुबह। †रात। ‡बहिन। §मारा।

॥ शब्द ८७ ॥

भजु मन नाम उमिर रहि थोड़ी ॥ टेक ॥
चारि जने मिलि लेन को आये, लिये काठ की घोड़ी।
जोरि लकड़िया फूँक अस दीन्हो, जस बृंदाबन की होरी ॥१॥
सीसमहल के दस दरवाजे, आन काल ने घेरी।
आगर तोड़ी नागर तोड़ी, निकसे प्रान खुपड़िया फोड़ी ॥२॥
पाटी पकरि वाकी माता रोवै, बहियाँ पकरि सग भाई।
लट छिटकाये तिरिया रोवै, बिछुरत है मेरी हंस कीजोड़ी३
सत्तनाम का सुमिरन करि ले, बाँध गाँठ तू पोढ़ी।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, जिन जोड़ी तिन तोड़ी ॥४॥

॥ शब्द ८८ ॥

अरे मन मूरख खेतीवान, जतन बिन मिरगन खेत उजाड़ा ॥ टेक ॥
पाँच मिरग पच्चीस मिरगनी, ता मैं एक सिँगारा* ।
अपने अपने रस के भोगी, चरत फिरैं न्यारा न्यारा ॥१॥
काम क्रोध दुइ मुख्य मिरग हैं, नित उठि चरत सबारा† ।
मारे मरैं टरैं नहिँ टारे, बिड़वत नाहिँ बिडारा‡ ॥२॥
अति परचंड महा दुख दारुन, वेद सास्त्र पचि हारा।
प्रेम बान लै चढ़ेव पारधी,§ भाव भक्ति करि मारा ॥३॥
सत की बेड़ धर्म॥ की खाईं, गुरु का सब्द रखारा¶ ।
कहैं कबीर चरन नहिँ पावैं, अब की बार सम्हारा ॥४॥

---

*सींग वाला। †सवेरे। ‡ हाँकने से। §शिकारी। ॥ चारदीवारी। ¶रखवारा।

॥ शब्द ८९ ॥

ना जानें तेरा साहेब कैसा है ॥ टेक ॥

मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहेब तेरा बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजै, सो भी साहेब सुनता है ॥१॥
पंडित होय के आसन मारै, लम्बी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहेब लखता है ॥२॥
ऊँचा नीचा महल बनाया, गहिरी नेंव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं, रहने को मन करता है ॥३॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, गाड़ि जमीं में धरता है।
जिस लहना है सो लै जैहै, पापी बहि बहि मरता है ॥४॥
सतवन्ती को गजी मिलै नहिं, बिस्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै, भडुवा खात बतासा है ॥५॥
हीरा पाय परख नहिं जानै, कौड़ी परखन करता है।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, हरि जैसे को तैसा है ॥६॥

॥ शब्द ९० ॥

मुखड़ा क्या देखै दर्पन मैं, तेरे दया धरम नहिं तन मैं ॥टेक॥
आम की डार कोइलिया बोलै, सुवना बोलै बन मैं।
घरबारी तो घर मैं राजी, फक्कड़ राजी बन मैं ॥१॥
ऐंठी धोती पाग लपेटी, तेल चुआ जुलफन मैं।
गली गली की सखी रिझाईं, दाग लगाया तन मैं ॥२॥
पाथर की इक नाव बनाई, उतरा चाहे छिन मैं।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, वे क्या चढ़ैंगे रन मैं ॥३॥

॥ शब्द ६१ ॥

करम गति टारे नाहिँ टरी ॥ टेक ॥

मुनि बसिष्ठ से पंडित ज्ञानी, सोध के लगन धरी ।
सोता हरन मरन दसरथ के़ा, बन मेँ बिपति परी* ॥१॥
कहँ वह फंद कहाँ वह पारधि,† कहँ वह मिरग चरी ।
सीता के़ा हरि लेगये़ा रावन, सोने की लंक जरी ॥ २ ॥
नीच हाथ हरिचन्द‡ बिकाने, बलि§ पाताल धरी ।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग, गिरगिट जोनि परी‖ ॥३॥

---

*रामचंद्र जी का बनोबास, उनके पिता दसरथ का उनके वियोग में प्रान तजना, मारीच के़ा मृगा बना कर रावन का सीताजी को चुरा ले जाना और फिर रामचंद्र का रावन को मारना और लंका को जलाना यह कथा प्रायः सब लोग जानते ह।

†शिकारी।

‡राजा हरिश्चंद्र भारी दानी और सत्यवादी थे जिन्होंने विश्वामित्रजी को अपना सब राज पाट यज्ञ की दछिना मेँ दे दिया इस पर मुनि जी ने तीन भार सोना दान-प्रतिष्ठा का अपना और निकाला। राजा हरिश्चन्द्र ने उस के लिये काशी मेँ जाकर अपने को एक डोमड़े के हाथ और अपनी स्त्री और पुत्र को एक ब्राह्मन के हाथ बेच कर मुनि जी को सतुष्ट किया।

§राजा वलि वड़े प्रतापी और दानी थे जिन के द्वारे पर आप भगवान बौना का भेष धर कर तीन परग पृथ्वी माँगने गये जब राजा बलि ने संकल्प कर दिया तब भगवान ने बैराट रूप धारन करके एक परग मेँ स्वर्गादिक और एक में सारी पृथ्वी नाप ली और कहा कि अब बाकी तीसरा परग देव। राजा ने अपना शरीर भेँट किया जिसे तीसरे परग से नाप कर भगवान ने उन्हेँ अमर करके पाताल का राज दिया।

‖राजा नृग रोज एक लाख गऊ दान दिया करते थे। एक बार कोई गऊ जो पहिले दिन दान हो चुकी थी नई गउवोँ मेँ आ मिली और राजा ने उसे अनजान मेँ दूसरे ब्राह्मन को संकल्प कर दिया। इस पर पहिले और दूसरे दिन के दान पाने वाले ब्राह्मनोँ मेँ झगड़ा मचा और दोनोँ राजा के पास न्याव को गये। दोनोँ वही गऊ लेने पर हठ करते थे इस लिये राजा की वुद्धि चकराई

पाँडव जिन के आपु सारथी, तिन पर बिपति परी* ।
दुरजोधन को गर्ब घटायो, जदु कुल नास करी* ॥ ४ ॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा, बिधि संजोग परी ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, होनी होके रही ॥ ५ ॥

भेद बानी

॥ शब्द १ ॥

साधो एक आपु जग माहीं ।
दूजा करम भरम है किर्तम, ज्यों दर्पन में छाहीं ॥टेक॥
जल तरंग जिमि जल तें उपजै, फिर जल माहिं रहाई ।
काया झाँईं पाँच तत्त की, बिनसे कहाँ समाई ॥ १ ॥
या बिधि सदा देह गति सब की, या बिधि मनहिं बिचारो ।
आया होय न्याव करि न्यारो, परम तत्व निरवारो ॥२॥
सहजै रहै समाय सहज में, ना कहुँ आय न जावै ।
धरै न ध्यान करै नहिं जप तप, राम रहीम न गावै ॥३॥
तीरथ बर्त सकल परित्यागै, सुन्न डोरि नहिं लावै ।
यह धोखा जब समुझि परै तब, पूजै काहि पुजावै ॥४॥

और सोच में पड़ कर दोनों की दलील पर सिर हिला देते । इस पर उन ब्राह्मनों ने सराप दिया कि तुम गिरगिट की तरह सिर हिलाते हो वही बन जावगे । इस लिये राजा नृग मरने पर गिरगिट की जोनि पाकर एक अंधे कुए में पड़े हुए थे जब कृश्नावतार हुआ तब श्रीकृश्न ने उनको तारा ।

*पांडवों के रथ पर श्रीकृश्न महाभारत की लड़ाई में आप सारथी बने और दुरजोधन का घमंड तोड़ा और कौरवों के कुल का और परम धाम सिधारने के पहिले अपने जदु कुल का नाश किया । पांडवों पर यह बिपति पड़ी थी कि अपना सब राज पाट अपनी स्त्री द्रौपदी सहित कौरवों के हाथ जुए में हार गये और मुद्दत तक बनोबास में कष्ट उठाया ।

जोग जुगत तेँ भरम न छूटै, जब लग आप न सूझै ।
कहैँ कबीर सोइ सतगुरु पूरा, जो कोइ समुझै बूझै ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

साधो एक रूप सब माहीँ ।
अपने मनहिँ बिचारि के देखो, और दूसरो नाहीँ ॥टेक॥
एकै तुचा रुधिर पुनि एकै, बिप्र सूद्र के माहीँ ।
कहीँ नारि कहिँ नर होइ बोलैँ, गैब पुरुष वह आहीँ ॥१॥
आपै गुरु होय मंत्र देत हैँ, सिष होय सबै सुनाहीँ ।
जो जस गहै लहै तस मारग, तिन के सतगुरु आहीँ ॥२॥
सब्द पुकार सत्त मैँ भाषौँ, अंतर राखौँ नाहीँ ।
कहैँ कबीर ज्ञान जेहि निर्मल, बिरले ताहि लखाहीँ ॥३॥

॥ शब्द ३ ॥

साधो को है कहँ से आयो ॥ टेक ॥
खात पियत को बोलत डोलत, वाको अंत न पायो ।
केहि के मन धौँ कहाँ बसतु है, को धौँ नाच नचायो ॥१॥
पावक सर्ब अंग काठहिँ मैँ, को धौँ डहकि जगायो ।
होइ गयो खाक तेज पुनि वा को, कहु धौँ कहाँ समायो ॥२॥
भानु प्रकास कूप जल पूरन, दृष्टि दरस जो पायो ।
आभा करम अंत कछु नाहीँ, जोति खीँच ले आयो ॥३॥
अहै अपार पार कछु नाहीँ, सतगुरु जिन्हैँ लखायो ।
कहैँ कबीर जेहि सूझ बूझ जस, तेइ तस भाष सुनायो ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

साधो सहजै काया सोधो ।
करता आप आपु मैं करता, लख मन को परमोधो ॥टेक॥
जैसे वट का बीज ताहि मैं, पत्र फूल फल छाया ।
काया मद्धे बुन्द बिराजै, बुन्दै मद्धे काया ॥ १ ॥
अग्नि पवन पानी पिरथी नभ, ता बिन मेला नाहीं ।
काजी पंडित करौ निबेरा, का के माहिँ न साँईं ॥ २ ॥
साँचे नाम अगम की आसा, है वाही मैं साँचा ।
करता बीज लिये है खेतै, त्रिगुन तीन तत पाँचा ॥३॥
जल भरि कुम्भ जलै बिच धरिया, बाहर भीतर सोई ।
उन को नाम कहन को नाहीं, दूजा धोखा होई ॥ ४ ॥
कठिन पंथ सतगुरु को मिलना, खोजत खोजत पाया ।
इक लग खोज मिटी जब दुबिधा, ना कहुँ गया न आया ॥५॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सत्त सब्द निज सारा ।
आपा मद्धे आपै बोलै, आपै सिरजनहारा ॥ ६ ॥

॥ शब्द ५ ॥

साधो दुबिधा कहँ से आई ।
नाना भाव बिचार करतु है, कौने मतिहिँ चोराई ॥टेक॥
ऋग* कहै निराकार निरलेपी, अगम अगोचर साँईं ।
आवै न जाय मरै नहिँ जीवै, रूप बरन कछु नाहीं ॥१॥
जजुर* कहै सरगुन परमेसुर, दस औतार धराया ।
गोपिन के सँग रहस रचो है, सोई पुरानन गाया ॥२॥

*एक वेद का नाम ।

साम* कहै वह ब्रह्म अखंडित, और न दूजा कोई ।
आपै अपरम अवगति कहिये, सत्त पदारथ सोई ॥३॥
अथरवन* कहै परो पथ दीसै, सत्त पदारथ नाहीं ।
जे जे गये बहुरि नहिं आये, मरि मरि कहाँ समाहीं ॥४॥
यह परमान सभन कै लीन्हा, ज्यों अँधरन को हाथी ।
अछे बाप की खबर न जानी, पुत्र हुता नहिं साथी ॥५॥
जा प्रकार अँधरे को हाथी, या बिधि वेद बखानै ।
अपनी अपनी सब कोइ भाषै, का को ध्यानहिं ठानै ॥६॥
साँच अहै अँधरे को हाथी, औ साँचे हैं सगरे ।
हाथ की टोई सापि कहतु हैं, हैं आँखिन के अँधरे ॥७॥
सब्द अतीत सब्द सो अपना, बूझै बिरला कोई ।
कहैं कबीर सतगुरु की सैना,† आप मिटे तब सोई ॥८॥

॥ शब्द ६ ॥

सार सब्द गहि बाचिहौ‡ मानौ इतबारा ॥ १ ॥
सत्तपुरुष अच्छै बिरिछ निरंजन डारा ॥ २ ॥
तीन देव साखा भये पाती संसारा ॥ ३ ॥
ब्रह्मा वेद सही किया सिव जोग पसारा ॥ ४ ॥
बिस्नु माया परगट किया उरले§ ब्योहारा ॥ ५ ॥
तिरदेवा ब्याधा‖ भये लिये बिष कर चारा ॥ ६ ॥
कर्म की बंसी डारि के फाँसा संसारा ॥ ७ ॥

---

*एक वेद का नाम । † इशारा । ‡ बचोगे । § पहिला । ‖ चिड़ीमार ।

जोति सरूपी हाकिमा जिन अमल पसारा ॥ ८ ॥
तीन लोक दसहूँ दिसा जम रोके द्वारा ॥ ९ ॥
अमल मिटावौं ताहि को पठवौं भव पारा ॥१०॥
कहैं कबीर अमर करौं जो होय हमारा ॥ ११ ॥

॥ शब्द ७ ॥

महरम होय सो जानै साधो, ऐसा देस हमारा ॥ टेक ॥
बेद कतेब पार नहिं पावत, कहन सुनन से न्यारा ।
जाति बरन कुल किरिया नाहीं, संध्या नेम अचारा ॥१॥
बिन जल बूंद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा ।
सुन्न महल मैं नौबत बाजै, किंगरी बीन सितारा ॥ २ ॥
बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उँजियारा ।
बिना सीप जहँ मोती उपजै, बिन सुर सब्द उचारा ॥३॥
जोति लजाय ब्रह्म जहँ दरसै, आगे अगम अपारा ।
कहैं कबीर वहँ रहनि हमारी, बूझै गुरुमुख प्यारा ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

अबधू बेगम देस हमारा ॥ टेक ॥
राजा रंक फकीर बादसा, सब से कहौं पुकारा ।
जो तुम चाहत अहौ परम पद, बसिहो देस हमारा ॥१॥
जो तुम आये झीने होइ के, तजो मनी को भारा ।
ऐसी रहनि रहो रे गोरख*, सहज उतरि जाव पारा ॥२॥
सत्तनाम की हैं महतावैं, साहेब के दरबारा ॥३॥
बचना चाहो कठिन काल से, गहो सब्द टकसारा ।
कहैं कबीर सुनो हो गोरख, सत्तनाम है सारा ॥४॥

---

*गोरखनाथ जोगी कबीर साहेब के समय मैं थे ।

॥ शब्द ९ ॥

जहवाँ से आयो अमर वह देसवा ॥ टेक ॥
पानी न पौन न धरती अकसवा ।
चाँद न सूर न रैन दिवसवा ॥ १ ॥
बाम्हन छत्री न सूद्र बैसवा ।
मुगल पठान न सैयद सेखवा ॥ २ ॥
आदि जोति नहिँ गौर गनेसवा ।
ब्रह्मा बिस्नु महेस न सेसवा ॥ ३ ॥
जोगी न जंगम मुनि दुरवेसवा ।
आदि न अन्त न काल कलेसवा ॥ ४ ॥
दास कबीर ले आये सँदेसवा ।
सार सब्द गहि चलौ वहि देसवा ॥ ५ ॥

॥ शब्द १० ॥

मोतिया बरसै रौरे देसवाँ दिन राती ॥ टेक ॥
मुरली सब्द सुन मन आनँद भयो, जोति बरै बिनु बाती ।
बिना मूल के कमल प्रगट भयो, फुलवा फुलत भाँति भाँती१
जैसे चकोर चन्द्रमा चितवै, जैसे चातृक स्वाँती ।
तैसे संत सुरति के होइके, होइगे जनम सँघाती ॥२॥
या जग मेँ बहु ठग लागतु हैँ, पर धन हरत न डेराती ।
कहैँ कबीर जतन करो साधो, सत्तगुरू की थाथी ॥३॥

॥ शब्द ११ ॥

नैहरवा हमकाँ नहिँ भावै ॥ टेक ॥
साँईं की नगरी परम अति सुन्दर, जहँ कोइ जाय न आवै ।
चाँद सुरज जहँ पवन न पानी, को सँदेस पहुँचावै,
दरद यह साँईं को सुनावै ॥ १ ॥

आगे चलौं पंथ नहिं सूझै, पीछे दोष लगावै ।
केहि बिधि ससुरे जावँ मोरी सजनी, बिरहा जोर जनावै,
बिषै रस नाच नचावै ॥ २ ॥
बिन सतगुरु अपनो नहिं कोई, जो यह राह बतावै ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, सपने न प्रीतम पावै,
तपन यह जिय की बुझावै ॥ ३ ॥

॥ शब्द १२ ॥

गगन मठ गैब निसान गड़े ॥ टेक ॥
गुदा* मैं मेख सेस सिर ऊपर, डेरा अचल खड़े ॥ १ ॥
चंद्रहार चँदवा जहँ टाँगे, मुक्ता मनिक मढ़े ॥ २ ॥
महिमा तासु देख मन थिर करि, रबि ससि जोति जड़े ॥३॥
रहत हजूर पूर पद सेवत, समरथ ज्ञान बड़े ॥ ४ ॥
संत सिपाही करैं चाकरी, जेहि दरबार अड़े ॥ ५ ॥
बिना नगाड़े नौबत बाजै, अनहद सब्द झरे ॥ ६ ॥
कहैं कबीर पियै जोई जन, माता† फिरत मरे ॥ ७ ॥

॥ शब्द १३ ॥

वा घर की सुध कोइ न बतावै, जा घर से
जिव आया हो ॥ टेक ॥
धरती अकास पवन नहिँ पानी, नहिँ तब आदी माया हो १
ब्रह्मा बिस्नु महेस नहीं तब, जीव कहाँ से आया हो ॥ २ ॥
पानी पवन के दहिया जमायो, अगिन के
जामन दीन्हा हो ॥३॥

* बानी में ठेठ हिंदी शब्द गुदा का लिखा है। † माता=मस्त । दूसरा पाठ यों है–"ममता तुरत हरे"।

चाँद सुरज दोउ बने अहीरा, मथि दहिया
घिउ काढ़ा हो ॥४॥
ये मनसा माया के लोभी, बारबार पछिताया हो ॥५॥
लख नहिँ परै नाम साहेब का, फिर फिर
भटका खाया हो ॥६॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, वह घर बिरले पाया हो ॥७॥

॥ शब्द १४ ॥

गगन घटा घहरानी साधो, गगन घटा घहरानी ॥टेक॥
पूरब दिसि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी ।
आपन आपन मेँड़ि सम्हारो, बह्यो जात यह पानी ॥१॥
मन के बैल सुरति हरवाहा, जोत खेत निर्बानी ।
दुबिधा दूब छोल करु बाहर, बोवो नाम की धानी ॥२॥
जोग जुक्ति करि करु रखवारी, चर न जाय मृग धानी ।
बाली झार कूटि घर लावै, सोई कुसल किसानी ॥ ३ ॥
पाँच सखी मिलि कीन्ह रसोइयाँ, एक से एक सयानी ।
दूनोँ थार बराबर परसे, जेँवैँ मुनि अरु ज्ञानी ॥ ४ ॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्बानी ।
जो या पद को परचा पावै, ता को नाम बिज्ञानी ॥५॥

॥ शब्द १५ ॥

झीनी झीनी बीनी चदरिया ॥ टेक ॥
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौने तार से बीनी
चदरिया ॥ १ ॥

इँगला पिँगला ताना भरनी, सुषमन तार से बीनी
चदरिया ॥ २ ॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी
चदरिया ॥ ३ ॥
साँईं को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक के बीनी
चदरिया ॥ ४ ॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी, ओढ़ि के मैली कीन्ही
चदरिया ॥ ५ ॥
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीन्ही
चदरिया ॥ ६ ॥

॥ शब्द १६ ॥

फल मीठा पै ऊँचा तरवर*, कौनि जतन करि लीजै ।
नेक† निचोइ सुधा रस वा को, कौनि जुगति से पीजै॥१॥
पेड़ बिकट‡ है महा सिलहिला§, अगह गह्यो नहिं जावै ।
तन मन डारि चढ़ै सरधा से, तब वा फल को खावै ॥२॥
बहुतक लोग चढ़े बिन भेदै, देखी देखा याँहीं ।
रपटि पाँव गिरि परे अधर तें, आइ परे भुइँ माहीं ॥३॥
सत्त सब्द के खूँटे धरि पग, गहि गुरु-ज्ञानहिं डोरा ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, तब वा फल को तोरा ॥४॥

॥ शब्द १७ ॥

मुनियाँ पिँजड़े वाली ना, तेरो सतगुरु है बेवपारी ।टेक।
पाँच तत्त का बना पींजड़ा, ता मैं रहती मुनियाँ ।
उड़ि के मुनियाँ डार पै बैठी, झाँखन लागी सारी दुनियाँ ॥१

---

*पेड़ । †थोड़ा सा । ‡कठिन, अड़बड़ । §फिसलाने वाला ।

अलग डार पर बैठी मुनियाँ, पिये प्रेम रस बूटी ।
क्या करिहै जमराज तिहारो, नाम कहत तन छूटी ॥२॥
मुनियाँ की गति मुनियाँ जानै, और कहै सब झूठी ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु चरनन की भूखी ॥३॥

॥ शब्द १८ ॥

पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली ॥ टेक ॥
ऊँची अटरिया जरद किनरिया, लगी नाम की डोरी ।
चाँद सुरज सम दियना बरतु है, ता बिच भूली डगरिया ॥१॥
पाँच पचीस तीन घर बनियाँ, मनुवाँ है चौधरिया ।
मुन्सी है कुतवाल ज्ञान को, चहुँ दिस लागी बजरिया ॥२॥
आठ मरातिब दस दर्वाजा, नौ मेँ लगीँ किवरिया ।
खिरकी बैठ गोरी चितवन लागी, उपराँ झाँप झोपरिया३
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु के चरन बलिहरिया ।
साध संत मिलि सौदा करि हैं, झौंखै मूरख अनरिया ॥४॥

॥ शब्द १९ ॥

रस गगन गुफा में अजर झरै ॥ टेक ॥
बिन बाजा झनकार उठै जहँ, समुझि परै जब ध्यान धरै१
बिना ताल जहँ कँवल फुलाने, तेहि चढ़ि हंसा केल करै ॥२॥
बिन चंदा उँजियारी दरसै, जहँ तहँ हंसा नजर परै ॥३॥
दसवेँ द्वारे ताड़ी लागी, अलख पुरुष जा को ध्यान धरै ॥४॥
काल कराल निकट नहिँ आवै काम क्रोध मद लोभ जरै ॥५॥
जुगन जुगन की तृषा बुझानी, कर्म भर्म अघ व्याधि टरै॥६॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अमर होय कबहूँ न मरै ॥७॥

॥ शब्द २० ॥

मुरसिद नैनों बीच नबी है।
स्याह सपेद तिलों बिच तारा, अविगत अलख रबी* है ॥टेक
आँखी मद्धे पाँखी चमकै, पाँखी मद्धे द्वारा।
तेहि द्वारे दुर्बीन लगावै, उतरै भौजल पारा ॥ १ ॥
सुन्न सहर में बास हमारी, तहँ सरबंगी जावै।
साहेब कबीर सदा के संगी, सब्द महल ले आवै ॥ २ ॥

॥ शब्द २१ ॥

सत्त सुकृत सतनाम जक्त जानै नहीं।
बिना प्रेम परतीत कहा मानै नहीं ॥१॥
जिव अनंत संसार न चीन्हत पीव को।
कितना कह समझाय चौरासि क जीव को ॥२॥
आगे धाम अखंड सो पद निर्बान है।
भूख नींद वहँ नाहिं निअच्छर नाम है ॥३॥
कहैं कबीर पुकारि सुनो मन भावना।
हंसा चलु सतलोक बहुरि नहिं आवना ॥४॥

॥ शब्द २२ ॥

कर नैनों दीदार महल में प्यारा है ॥ टेक ॥
काम क्रोध मद लोभ बिसारो, सील सँतोष छिमा सत धारो।
मद्द मांस मिथ्या तजि डारो,
हो ज्ञान घोड़े असवार भरम से न्यारा है ॥ १ ॥

---

*मालिक।

धोती नेती बस्ती पाओ, आसन पद्म जुगत से लाओ।
कुम्भक कर रेचक करवाओ,
पहिले मूल सुधार कारज हो सारा है ॥२॥

मूल कँवल दल चतुर बखानो, कलिंग जाप लाल रँग मानो।
देव गनेस तहँ रोपा थानो,
ऋध सिध चँवर ढुलारा है ॥३॥

स्वाद चक्र षटदल बिस्तारो, ब्रह्म* सावित्री रूप निहारो।
उलटि नागिनी का सिर मारो,
तहाँ सब्द ओंकारा है ॥ ४ ॥

नाभी अष्ट कँवल दल साजा, सेत सिंघासन बिस्नु बिराजा।
हिरिंग जाप तासु मुख गाजा,
लछमी सिव आधारा है ॥ ५ ॥

द्वादस कँवल हृदय के माहीँ, जंग गौर सिव ध्यान लगाईं।
सोहं सब्द तहाँ धुन छाई,
गन करैँ जैजैकारा है ॥ ६ ॥

दो दल कँवल कंठ के माहीँ, तेहि मध बसे अबिद्या बाई।
हरि हर ब्रह्मा चँवर ढुराई,
जहँ श्रृंग नाम उचारा है ॥७॥

ता पर कंज कँवल है भाई, बग भौँरा† दुइ रूप लखाई।
निज मन करत तहाँ ठकुराई,
सो नैनन पिछवारा है ॥ ८ ॥

---

*ब्रह्मा। † बकुला और भौँरा अर्थात् सेत-श्याम पद।

कँवलन भेद किया निर्वारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
सतसँग कर सतगुरु सिर धारा,
वह सत नाम उचारा है ॥ ९ ॥

आँख कान मुख बन्द कराओ, अनहद झिंगा सब्द सुनाओ।
दोनौं तिल इक तार मिलाओ,
तब देखो गुलजारा है ॥ १० ॥

चंद सूर एकै घर लाओ, सुषमन सेती ध्यान लगाओ।
तिरबेनी के संध* समाओ,
भोर उतर चल पारा है ॥ ११ ॥

घंटा संख सुनो धुन दोई, सहस कँवल दल जगमग होई।
ता मध करता निरखो सोई,
बंकनाल धस पारा है ॥ १२ ॥

डाकिनी साकिनी बहु किलकारैं, जम किंकर धर्म दूत हकारैं।
सत्तनाम सुन भागें सारे,
जब सतगुरु नाम उचारा है ॥ १३ ॥

गगन मँडल बिच उर्धमुख कुइया, गुरुमुख साधू भरभर पीया।
निगुरे प्यास मरे बिन कीया†,
जा के हिये अँधियारा है ॥ १४ ॥

त्रिकुटी महल में बिद्या सारा, घनहर‡ गरजें बजे नगारा।
लाल बरन सूरज उँजियारा,
चतुरकँवल मँझार सब्द ओंकारा है ॥१५॥

---

* संगम। †करनी। ‡बादल।

साध सोई जिन यह गढ़ लीन्हा, नौ दरवाजे परगट चीन्हा।
दसवाँ खोल जाय जिन दीन्हा,
जहाँ कुलुफ* रहा मारा है ॥ १६ ॥
आगे सेत सुन्न है भाई, मानसरोवर पैठि अन्हाई।
हंसन मिलि हंसा होइ जाई,
मिलै जो अमी अहारा है ॥ १७ ॥
किंगरी सारँग बजै सितारा, अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा।
द्वादस भानु हंस उँजियारा,
खट दल कँवल मँझार सब्द ररंकारा है ॥१८॥
महा सुन्न सिंध बिषमी घाटी, बिन सतगुरु पावै नहिँ बाटी।
ब्याघर† सिंघ सरप बहु काटी,
तहँ सहज अचिंत पसारा है ॥ १९ ॥
अष्ट दल कँवल पारब्रह्म भाई, दहिने द्वादस अचिंत रहाई।
बायेँ दस दल सहज समाई,
यों कँवलन निरवारा है ॥ २० ॥
पाँच ब्रह्म पाँचो अँड बीनो, पाँच ब्रह्म निःअच्छर चीन्हो।
चार मुक़ाम गुप्त तहँ कीन्हो,
जा मध बंदीवान पुरुष दरबारा है ॥२१॥
दो पर्वत के संध निहारो, भँवर गुफा तेँ संत पुकारो।
हंसा करते केल अपारो,
तहाँ गुरन दर्बारा है ॥ २२ ॥
सहस अठासी दीप रचाये, हीरे पन्ने महल जड़ाये।
मुरली बजत अखंड सदाये,
तहँ सोहं झनकारा है ॥ २३ ॥

---

*क़ुफ़ल=ताला। †बाघ।

सोहं हद्द तजी जब भाई, सत्त लोक की हद पुनि आई।
उठत सुगंध महा अधिकाई,
जा को वार न पारा है ॥ २४ ॥

षोड़स भानु हंस को रूपा, बीना सत धुन बजै अनूपा।
हंसा करत चँवर सिर भूपा,
सत्त पुरुष दर्बारा है ॥ २५ ॥

कोटिन भानु उदय जो होई, एते ही पुनि चंद्र लखोई।
पुरुष रोम सम एक न होई,
ऐसा पुरुष दीदारा है ॥ २६ ॥

आगे अलख लोक है भाई, अलख पुरुष की तहँ ठकुराई।
अरबन सूर रोम सम नाहीं,
ऐसा अलख निहारा है ॥ २७ ॥

ता पर अगम महल इक साजा, अगम पुरुष ताहि को राजा।
खरबन सूर रोम इक लाजा,
ऐसा अगम अपारा है ॥ २८ ॥

ता पर अकह लोक है भाई, पुरुष अनामी तहाँ रहाई।
जो पहुँचा जानेगा वाही,
कहन सुनन तेँ न्यारा है ॥ २९ ॥

काया भेद किया निर्बारा, यह सब रचना पिंड मँझारा।
माया अवगति जाल पसारा,
सो कारीगर भारा है ॥ ३० ॥

आदि माया कीन्ही चतुराई, झूठी बाजी पिंड दिखाई।
अवगति रचन रची अँड माहीं,
ता का प्रतिबिंब डारा है ॥ ३१ ॥

सब्द बिहंगम चाल हमारी, कहैं कबीर सतगुरु दइ तारी।
खुले कपाट सब्द झनकारी,
पिंड अंड के पार सो देस हमारा है ॥३२॥

॥ शब्द २३ ॥

कर नैनों दीदार यह पिंड से न्यारा है।
तू हिरदे सोच बिचार यह अंड मँझारा है ॥ टेक ॥
चोरी जारी* निंदा चारी, मिथ्या तज सतगुरु सिर धारो।
सतसँग कर सत नाम उचारो,
तब सनमुख लहो दीदारा है ॥ १ ॥
जे जन ऐसी करी कमाई, तिनकी फैली जग रोसनाई।
अष्ट प्रमान जगह सुख पाई,
तिन देखा अंड मँझारा है ॥ २ ॥
सोई अंड को अवगत राई, अमर कोट अकह नकल बनाई।
सुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई,
सो नाम अनामी धारा है ॥ ३ ॥
सतवीं सुन्न अंड के माहीं, झिलमिलहट की नकल बनाई।
महा काल तहँ आन रहाई,
सो अगम पुरुष उच्चारा है ॥ ४ ॥
छठवीं सुन्न जो अंड मँझारा, अगम महल की नकल सुधारा।
निरगुन काल तहाँ पग धारा,
सो अलख पुरुष कहु न्यारा है ॥ ५ ॥

---

* पर स्त्री गमन।

पंचम सुन्न जो अंड के माहीँ, सत्तलोक की नकल बनाई।
माया सहित निरंजन राई,
सो सत्त पुरुष दीदारा है ॥ ६ ॥

चौथी सुन्न अंड के माहीँ, पद निर्वान की नकल बनाई।
अविगत कला है सतगुरु आई।
सो सोहं पद सारा है ॥ ७ ॥

तीजी सुन्न की सुनो बड़ाई, एक सुन्न के दोय बनाई।
ऊपर महासुन्न अधिकाई,
नीचे सुन्न पसारा है ॥ ८ ॥

सतवीं सुन्न महाकाल रहाई, तासु कला महासुन्न समाई।
पारब्रह्म कर थाप्यो ताही,
सो निःअच्छर सारा है ॥ ९ ॥

छठवीं सुन्न जो निरगुन राई, तासु कला आ सुन्न समाई।
अच्छर ब्रह्म कहैँ पुनि ताही,
सोई सब्द ररंकारा है ॥ १० ॥

पंचम सुन्न निरंजन राई, तासु कला दूजी सुन छाई।
पुरुष प्रकिरती पदवी पाई,
सुद्ध सरगुन रचन पसारा है ॥ ११ ॥

पुरुष प्रकृति दूजी सुन माहीँ, तासु कला पिरथम सुन आई।
जोत निरंजन नाम धराई,
सरगुन स्थूल पसारा है ॥ १२ ॥

पिरथम सुन्न जो जोत रहाई, ताकी कला अविद्या बाई।
पुत्रन सँग पुत्री उपजाई,
यह सिंध बैराट पसारा है ॥ १३ ॥

सतवँ अकास उतर पुनि आई, ब्रह्मा बिस्नु समाधि जगाई।
पुत्रन सँग पुत्री परनाई,
यहँ रिंग नाम उचारा है ॥ १४ ॥

छठे अकास सिव अवगति भौंरा, जंग गौर रिधि करती चौंरा
गिरि कैलास गन करते सोरा,
तहँ सोहं सिर मैारा है ॥ १५ ॥

पंचम अकास मैं बिस्नु बिराजे, लछमी सहित सिंघासन गाजे
हिरिंग बैकुंठ भक्त समाजे,
जिन भक्तन कारज सारा है ॥ १६ ॥

चैाथे अकास ब्रह्मा बिस्तारा, सावित्री सँग करत बिहारा।
ब्रह्म ऋद्धि ऑंग पद सारा,
यह जग सिरजनहारा है ॥ १७ ॥

तीजे अकास रहे धर्मराई, नर्क सुर्ग जिन लीन्ह बनाई।
करमन फल जीवन भुगताई,
ऐसा अदल पसारा है ॥ १८ ॥

दूजे अकास मैं इन्द्र रहाई, देव मुनी बासा तहँ पाई।
रंभा करती निरत सदाई,
कलिंग सब्द उच्चारा है ॥ १९ ॥

प्रथम अकास मृत्तु है लोका, मरन जनम का नित जहँ धोखा।
सो हंसा पहुँचे सत लोका,
जिन सतगुरु नाम उचारा है ॥ २० ॥

चैादह तबक किया निरवारा, अब नीचे का सुनो बिचारा।
सात तबक मैं छः रखवारा।
भिन भिन सुनो पसारा है ॥ २१ ॥

सेस धौल बाराह कहाई, मीन कच्छ औ कुरम रहाई।
सो छः रहे सात के माहीं,
यह पाताल पसारा है ॥ २२ ॥

॥ शब्द २४ ॥

कोइ सुनता है गुरु ज्ञानी, गगन आवाज होती झीनी ॥१॥
पहिले होता नाद बिन्दु से, फेर जमाया पानी ॥ २ ॥
सब घट पूरन पूर रहा है, आदि पुरुष निर्बानी ॥ ३ ॥
जो तन पाया पटा लिखाया, त्रिस्ना नहीं बुझानी ॥ ४ ॥
अमृत छोड़ि बिषय रस चाखा, उलटी फाँस फँसानी ॥५॥
ओअं सोहं बाजा बाजै, त्रिकुटी सुरत समानी ॥ ६ ॥
इड़ा पिंगला सुषमन सोधे, सुन्न धुजा फहरानी ॥ ७ ॥
दीद बरदीद हम नजरों देखा, अजरा अमर निसानी॥८॥
कह कबीर सुनो भाइ साधो, यही आदि की बानी ॥९॥

॥ शब्द २५ ॥

साधो ऐसा धुँध अँधियारा ॥ टेक ॥
या घट अंतर बाग बगीचे, याही मैं सिरजनहारा ॥ १ ॥
या घट अंतर सात समुंदर, याही मैं नौ लख तारा ॥२॥
या घट अंतर हीरा मोती, याही मैं परखनहारा ॥३॥
या घट अंतर अनहद गरजै, याही मैं उठत फुहारा ॥४॥
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, याही मैं गुरू हमारा ॥५॥

॥ शब्द २६ ॥

अबधू सो जोगी गुरु मेरा, या पद का करै निबेरा ॥टेक॥
तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूले फल लागे।
साखा पत्र नहीं कछु वा के, अष्ट कमल दल गाजे ॥१॥

चढ़ तरवर दो पंछी बैठे, एक गुरू इक चेला।
चेला रहा सो चुन चुन खाया, गुरू निरन्तर खेला ॥२॥
बिन करताल पखावज बाजै, बिन रसना गुन गावै।
गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु मिलै बतावै ॥३॥
गगन मँडल में उर्ध मुख कुइयाँ, जहाँ अमी को बासा।
सगुरा होय सो भर भर पीवै, निगुरा जाय पियासा ॥४॥
सुन्न सिखर पर गइया बियानी, धरती छीर जमाया।
माखन रहा सो संतन खाया, छाछ जगत भरमाया ॥५॥
पंछी को खोज मीन को मारग, कहैं कबीर दोउ भारी।
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम, मूरत की बलिहारी ॥६॥

॥ शब्द २७ ॥

हंसा लोक हमारे अइहौ, तातेँ अमृत फल तुम पइहौ ॥टेक॥
लोक हमारा अगम दूर है, पार न पावै कोई*।
अति आधीन होय जो कोई, ता को देउँ लखाई ॥१॥
मिरत लोक से हंसा आये, पुहुप दीप चलि जाई।
अंबु दीप में सुमिरन करिहौ, तब वह लोक दिखाई ॥२॥
माटी का पिंड छूटि जायगा, औ यह सकल बिकारा।
ज्यों जल माहिँ रहत है पुरइन, ऐसे हंस हमारा ॥३॥
लोक हमारे अइहो हंसा, तब सुख पइहौ भाई।
सुख सागर असनान करोगे, अजर अमर होइ जाई ॥४॥
कहैं कबीर सुनो धर्मदासा, हंसन करो बधाई।
सेत सिंघासन बैठक देहौं, जुग जुग राज कराई ॥५॥

---

* कोई ँ।

॥ शब्द २८ ॥

ऐसा लो तत ऐसा लो, मैं केहि बिधि कथौं गँभीरा लो ॥टेक॥
बाहर कहौं तो सतगुरु लाजै, भीतर कहौं तो झूठा लो।
बाहर भीतर सकल निरंतर, गुरु परतापे दीठा लो ॥१॥
दृष्टि न मुष्टि न अगम अगोचर, पुस्तक लिखा न जाई लो।
जिन पहिचाना तिन भल जाना, कहे न को पतियाई लो ॥२॥
मीन चलै जल मारग जोवै, परम तत्त धौं कैसा लो।
पुहुप* बास हूँ तैं कछु झीना, परम तत्त धौं ऐसा लो ॥३॥
आकासे उड़ि गयौ बिहंगम, पाछे खोज न दरसी लो।
कहैं कबीर सतगुरु दाया तैं, बिरला सतपद परसी लो ॥४॥

॥ शब्द २९ ॥

बाबा अगम अगोचर कैसा, तातैं कहि समझाऔं ऐसा ॥टेक॥
जो दीसै सो तो है नाहीं, है सो कहा न जाई।
सैना बैना कहि समझाऔं, गूँगे का गुड़ भाई ॥ १ ॥
दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै, बिनसै नाहिं नियारा।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पंडित करौ बिचारा ॥ २ ॥
बिन देखे परतीति न आवै, कहे न कोउ पतियाना।
समुझा होय सो सब्दै चीन्है, अचरज होय अयाना ॥३॥
कोई ध्यावै निराकार को, कोइ ध्यावै आकारा।
वह तो इन दोऊ तैं न्यारा, जानै जाननहारा ॥ ४ ॥
काजी कथै कतेब कुराना, पंडित बेद पुराना।
वह अच्छर तो लखा न जाई, मात्रा लगै न काना ॥५॥
नादी बादी पढ़ना गुनना, बहु चतुराई भीना।
कहैं कबीर सो पड़ै न परलय, नाम भक्ति जिन चीन्हा ॥६॥

---

* फूल।

झूलना

॥ शब्द १ ॥

ज्ञान का गेंद कर सुर्त का डंड कर,
खेल चौगान मैदान माहीं ॥ १ ॥
जगत का भरमना छोड़ दे बालके,
आय जा भेष भगवंत पाहीं ॥ २ ॥
भेष भगवंत की सेस महिमा करे,
सेस के सीस पर चरन डारै ॥ ३ ॥
काम दल जीति के कँवल दल सोधि के,
ब्रह्म को बेधि के क्रोध मारै ॥ ४ ॥
पदम आसन करै पवन परिचै करै,
गगन के महल पर मदन जारै ॥ ५ ॥
कहत कब्बीर कोइ संत जन जौहरी,
करम की रेख पर मेख मारै ॥ ६ ॥

॥ शब्द २ ॥

पाप पुन्न के बीज दोऊ,
बिज्ञान अगिन मेँ जारिये जी ॥ १ ॥
पाँचो चोर बिबेक से बस करि,
बिचार नगर मेँ मारिये जी ॥ २ ॥
चिदानन्द सागर मेँ जाइये,
मन चित दोऊ को डारिये जी ॥ ३ ॥

कहैं कबीर इक आप कहा,
किंतने को पार उतारिये जी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३ ॥

तीरथ में सब पानी है,
होवै नहिं कछु न्हाय देखा ॥ १ ॥
प्रतिमा सकल बनी जड़ है,
बोलै नहिं बुलाय देखा ॥ २ ॥
पुरान कुरान सब बात ही बात है,
घट का परदा खोल देखा ॥ ३ ॥
अनुभव की बात कबीर कहैं,
यह सब है झूठी पोल देखा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४ ॥

दो सुर* चलै सुभाव सेती,
नाभी से उलटा आवता है ॥ १ ॥
बीच इंगला पिंगला तीन नाड़ी,
सुषमन से भोजन पावता है ॥ २ ॥
पूरक करै कुम्भक करै,
रेचक करै झरि जावता है ॥ ३ ॥
कायम कबीर का झूलना जी,
दया भूल परे पछितावता है ॥ ४ ॥

---

* स्वर।

॥ शब्द ५ ॥

सूर को कौन सिखावता है,
रन माहिँ असी* का मारना जी ॥ १ ॥
सती को कौन सिखावता है,
सँग स्वामी के तन जारना जो ॥ २ ॥
हंस को कौन सिखावता है,
नीर छीर का भिन्न बिचारना जी ॥ ३ ॥
कबीर को कौन सिखावता है,
तत्त रंगौं को धारना जी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

तख्त बना हाड़ चाम का जी,
दाना पानी क भोग लगावता है ॥ १ ॥
मल नीर झरै लोहू माँस बढ़ै,
आपु आपु को अंस बढ़ावता है ॥ २ ॥
नाद बिंदु के बीच कलोल करै,
सो आतम राम कहावता है ॥ ३ ॥
अस्थान यही कहँ ढूँढ़ता है,
दया देस कबीर बतावता है ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

दरियाव की लहर दरियाव है जी,
दरियाव और लहर मैं भिंन्न कोयम† ॥ १ ॥

* तलवार। † क्या।

उठे तो नीर है बैठे तो नीर है,
कहो दूसरा किस तरह होयम* ॥ २ ॥
उसी नाम को फेर के लहर धरा,
लहर के कहे क्या नीर खोयम† ॥ ३ ॥
जक्त ही फेर सब जक्त और ब्रह्म मैं,
ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम‡ ॥ ४ ॥

होली

॥ शब्द १ ॥

सतगुरु सँग होरी खेलिये, जा तेँ जरा मरन भ्रम जाय ॥टेक॥
ध्यान जुगत की करि पिचकारी, छिमा चलावनहार ।
आतम ब्रह्म जो खेलन लागे, पाँच पचीस मँझार ॥१॥
ज्ञान गली मेँ होरी खेलै, मची प्रेम की कीँच ।
लोभ मोह दोऊ कटि भागे, सुन सुन सब्द अतीत ॥२॥
त्रिकुटी महल में बाजा बाजै, होत छतीसो राग ।
सुरत सखी जहँ देखि तमासा, सतगुरु खेलैँ फाग ॥ ३ ॥
इँगला पिँगला सुषमना हो, सुरत निरत दोउ नारि ।
अपने पिया सँग होरी खेलैँ, लज्जा कान निवारि ॥४॥
सुन्न सहर में होत कुतूहल, करैँ राग अनुराग ।
अपने पुरुष के दरसन पावैँ, पूरन प्रेम सुहाग ॥ ५ ॥
सतगुरु मिले फगुवा निज पायो, मारग दियो लखाय ।
कहैँ कबीर जो यह गति पावै, सो जिव लोक सिधाय ॥६॥

---

* हो सकता है । † गुप्त हो गया । ‡ गुप्त ।

॥ शब्द २ ॥

काया नगर मँझार संत खेलैं होरी ।
गावत राग सरस सुर सोहै, अति आनंद भयो री ॥टेक॥
चंदन सील सबुद्धि अरगजा, केसर करनी गहो री ।
अगर अगम्म सुगम करि लीन्हो, अभय उर माँहि धरो री ॥१॥
प्रीति फुलेल गुलाल ज्ञान करि, लेहु जुगत भरि झोरी ।
चोवा चित चेतन परकासा, आवति बास घनो री ॥२॥
त्रिकुटी महल मेँ बाजा बाजे, जगमग जोत उजेरी ।
सहज रंग रचि रह्यो सकल तन, छूटत नाहिँ करेरी ॥३॥
अनहद बाजे बजैं मधुर धुन, बिन करताल तँबूरा ।
बिन रसना जहँ राग छतीसा, होत महानँद पूरा ॥ ४ ॥
सुन्न सहर इक रंग महल से, कहूँ टरत नहिँ टारी ।
कहैं कबीर समुझि ल्यो साधो, निर्गुन कह्यो सदा री ॥५॥

॥ शब्द ३ ॥

हमारे को खेलै ऐसी होरी, जा मेँ आवागवन लागी
डोरी ॥ टेक ॥
स्रवन न सुन्यो नैन नहिँ देख्यौ, पिय पिय पिय लगी लौ री ।
पंथ निहारत जनम सिराना, परघट मिले न चोरी ॥१॥
जा कारन गृह तेँ कढ़ि निकसी, लोक लाज कुल तोरी ।
चोवा चंदन और अरगजा, कपरा रंग भरो री ॥ २ ॥
एकन हूँ मृगछाला पहिरी, एकन गुदरी झोरी ।
बहुत भेष धर स्वाँग बनाये, लै नहिँ लगी ठगोरी ॥३॥

जगन्नाथ बद्री रामेसर, देस दिसंतर दौरी ।
अठसठ तीरथ पृथी प्रदच्छिना, पुस्कर हूँ मैं लुटौ री ॥४॥
वेद पुरान भागवत गीता, चारो बरन ढँढोरी* ।
कहैं कबीर दया सतगुरु बिनु, भर्म मिटे नहिं भव री ॥५॥

॥ शब्द ४ ॥

मेरे साहिब आये आज, खेलन फाग री ।
बानी बिमल सगुन सब बोले, अति सुख मंगल राग री ॥टेक
चाचर† सरस सखा सँग बोले, अनहद बानी राग री ।
सब्द सुनत अनुराग होतु है, क्या सोवै उठि जाग री ॥१॥
पानी आदर पवन बिछौना, बहुत करौं सनमान री ।
देत असीस अमर पद याही, अबिचल जुग जुग बास री ॥२॥
चरन पखार लेहुँ चरनोदक, उठि उनके पग लाग री ।
पाँच सखी मिलि मंगल गावैं, पिव अपने सँग पाग री ॥३॥
पंचामिर्त भाव से लेवौं, परम पुरुष भरतार री ।
महा प्रसाद संत मुख पावौं, आन खुलो मेरो भाग री ॥४॥
चौरासी को बंद छुड़ावन, आये सतगुरु आप री ।
पान पर्वाना देत जिवन को, वे पावैं सुख बास री ॥५॥
चोवा चंदन अगर कुमकुमा, पुहुप माल गल हार री ।
फगुवा माँग मुक्ति फल लेहूँ, जिव आपन के काज री ॥६॥
सोरहो सिँगार बतीसो अभरन, सुरत सिंगार सँवार री ।
सत्त कबीर मिले सुख सागर, आवा गवन निवार री ॥७॥

---

*ढूँढ़ा । † फाग खेलने वालों की भीड़ ।

॥ शब्द ५ ॥

साधो हम घर कंत सुजान, खेल्यो रँग होरी।
जनम जनम की मिटी कलपना, पायो जीवन प्रान री॥टेक॥
पाँच सखी मिलि मंगल गावैं, गुरमुख सब्द बिचार री।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, अनहद सब्द गुँजार री ॥१॥
खेलन चली पंथ प्रीतम के, तन की तपन गई री।
पिचुकारी छूटै अति अद्भुत, रस की कींच भई री ॥२॥
साहेब मिलि आपा बिसरायो, लाग्यो खेल अपार री।
चहुँ दिस पिय पिय धूम मची है, रटना लगी हमार री ॥३॥
सुख सागर असनान कियो है, निर्मल भयो सरीर री।
आवागवन की मिटी कलपना, फगुवा पायो कबीर री ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

जहँ सतगुरु खेलत ऋतु बसंत। परम जोत जहँ साध संत ॥१
तीन लोक से भिन्न राज। जहँ अनहद बाजा बजै बाज ॥२
चहुँ दिस जोति की बहै धार। बिरला जन कोइ उतरै पार ॥३
कोटि कृस्न जहँ जोरैं हाथ। कोटि बिस्नु जहँ नवैं माथ ॥४
कोटिन ब्रह्मा पढ़ैं पुरान। कोटि महेस जहँ धरैं ध्यान ॥५॥
कोटि सरस्वति धारैं राग। कोटि इन्द्र जहँ गगन लाग ॥६
सुर गन्धर्ब मुनि गने न जायँ। जहँ साहेब प्रगटे आपआय ७
चोवा चंदन औ अबीर। पुहुप बास रस रह्यो गँभीर ॥८॥
सिरजत हिये निवास लीन्ह। सो यहि लोक से रहत भिन्न॥९
जब बसंत गहि राग लीन्ह। सतगुरु सब्द उचार कीन्ह ॥१०
कहैं कबीर मन हृदय लाय। नरक-उधारन नाम आहि ॥११

रेख़ता

॥ शब्द १ ॥

रैन दिन संत योँ सोवता देखता,
संसार की ओर से पीठ दीये ।
मन और पवन फिर फूट चालै नहीं,
चंद और सूर को सम्म कीये ॥ १ ॥
टकटकी चंद चकोर ज्योँ रहतु है,
सुरत औ निरत का तार बाजै ।
नौबत घुरत है रैन दिन सुन्न मैँ,
कहैँ कब्बीर पिउ गगन गाजै ॥ २ ॥

॥ शब्द २ ॥

पाव और पलक की आरती कौन सी,
रैन दिन आरती संत गावै ।
घुरत निस्सान तहँ गैब की झालरा,
गैब के घंट का नाद आवै ॥ १ ॥
तहँ नीव बिन देहरा* देव निर्बान है,
गगन के तख्त पर जुगत सारी ।
कहैँ कब्बीर तहँ रैन दिन आरती,
पासिया पाँच पूजा उतारी ॥ २ ॥

॥ शब्द ३ ॥

साँईं आप की सेव ते। आप ही जानिहो,
आप का भेव कहो कौन पावै ।
आपनी आपनो बुद्धि अनुमान से,
बचन बिलास करि लहर लावै ॥ १ ॥

---

*मंदिर ।

तू कहै तैसा नहीं, है सो दीखै नहीं,
निगम हूँ कहत नहिं पार जावै ।
कहैं कब्बीर या सैन गूँगा तईं,
होय गूँगा सोई सैन पावै ॥ २ ॥

॥ ४ ॥

कर्म श्रौर भर्म संसार सब करतु है,
पीव की परख कोइ संत जानै ।
सुरत औ निरत मन पवन को पकर करि,
गंग और जमुन के घाट आनै ॥ १ ॥
पाँच को नाथ करि साथ सोहूँ* लिया,
अधर दरियाव का सुक्ख मानै ।
कहैं कब्बीर सोइ संत निर्भय धरा,
जन्म और मरन का भर्म भानै ॥ २ ॥

॥ ५ ॥

गंग उलटी धरो जमुन ग्रासा करो†,
पलट पँच तीरथ पाप जावै ।
नीर निर्मल तहाँ रैन दिन झरतु है,
न्हाय जो बहुरि भव सिँध न आवै ॥ १ ॥
फिरत बौरे तहाँ बुद्धि को नास है,
बाज के झपट मैं सिंघ नाहीं ।

*सन्मुख, संग । †गंग अर्थात दहिनी स्वाँसा को चढ़ाओ और जमुन अर्थात बाँईं स्वाँसा के साथ मिलाओ ।

कहैं कब्बीर उस जुक्ति को गहैगा,
जनम औ मरन तब अंत पाई ॥ २ ॥

॥ ६ ॥

देख वोजूद में अजब विसराम है,
होय मौजूद तो सही पावै ।
फेर मन पवन को घेर उलटा चढ़ै,
पाँच पच्चीस को उलटि लावै ॥ १ ॥
सुरत की डोर सुख सिंध का झूलना,
घोर की सोर तहँ नाद गावै ।
नीर बिन कँवल तहँ देख अति फूलिया,
कहैं कब्बीर मन भँवर छावै ॥ २ ।

॥ ७ ॥

चक्र के बीच में कँवल अति फूलिया,
तासु का सुक्ख कोइ संत जानै ।
कुलुफ* नौद्वार औ पवन को रोकना,
तिरकुटी मद्ध मन भँवर आनै ॥ १ ॥
सब्द की घोर चहुँ ओर ही होत है,
अधर दरियाव को सुक्ख मानै ।
कहैं कब्बीर यों झूल सुख सिंध में,
जन्म औ मरन का भर्म भानै† ॥ २ ॥

॥ ८ ॥

गंग औ जमुन के घाट को खोजि ले,
भँवर गुंजार तहँ करत भाई ।

---

*ताला । †तोड़ै ।

सरसुती नीर तहँ देखु निर्मल बहै,
तासु के नीर पिये प्यास जाई ॥ १ ॥
पाँच की प्यास तहँ देखि पूरी भई,
तीन की ताप तहँ लगे नाहीं ।
कहैं कब्बीर यह अगम का खेल है,
गैब का चाँदना देख माहीं ॥ २ ॥

॥ ६ ॥

माड़ि मतथान मन रई* को फेरना,
होत घमसान तहँ गगन गाजै ।
उठत झनकार तहँ नाद अनहद घुरै,
तिरकुटी महल के बैठ छाजे ॥ १ ॥
नाम की नेत† कर चित्त को फेरिया,
तत्त को ताय कर घिर्त लीया ।
कहैं कब्बीर यौं संत निर्भय हुआ,
परम सुख धाम तहँ लागि जीया ॥ २ ॥

॥ १० ॥

गड़ा निस्सान तहँ सुन्न के बीच मैं,
उलटि के सुरति फिर नाहिं आवै ।
दूध को मत्थ कर घिर्त न्यारा किया,
बहुरि फिर तत्त मैं ना समावै ॥ २ ।
माड़ि मत्थान तहँ पाँच उलटा किया,
नाम नौनीत‡ लै सुरत फेरी ।
कहैं कब्बीर यौं संत निर्भय हुआ,
जन्म औ मरन की मिटी फेरी ॥ २ ॥

---

*मथानी । †रस्सी । ‡मक्खन ।

॥ ११ ॥

ससी परकास तेँ सूर ऊगा सही,
तूर वाजै तहाँ संत झूलै ।
तत्त झनकार तहँ नूर वरसत रहै,
रस्स पीवै तहाँ पाँच भूलै ॥ १ ॥
दरियाव औ बुन्द ज्योँ देखु अंतर नहीँ,
जीव औ सीव योँ एक आहीँ ।
कहैँ कब्बीर या सैन गूँगा तईँ,
वेद कत्तेब की गम्म नाहीँ ॥ २ ॥

॥ १२ ॥

अगम अस्थान गुरु-ज्ञान विन ना लहै,
लहै गुरु-ज्ञान कोइ संत पूरा ।
द्वादस पलटि के खोड़सी परगटै,
गगन गरजै तहाँ बजै तूरा ॥ १ ॥
इंगला पिंगला सुषमना सम करै,
अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै ।
कहैँ कब्बीर सोइ संत निर्भय रहै,
काल की चोट फिर नाहिँ खावै ॥ २ ॥

॥ १३ ॥

अधर आसन किया अगम प्याला पिया,
जोग की मूल गहि जुगति पाई ।
पंथ विन जाइ चल सहर वेगमपुरे,
दया गुरुदेव की सहज आई ॥ १ ॥

ध्यान धर देखिया नैन बिन पेखिया,
अगम अगाध सब कहत गाई ।
कहैं कब्बीर कोइ भेद बिरला लहै,
गहै सो कहै या सैन भाई ॥ २ ॥

॥ १४ ॥

सहर बेगमपुरा गम्म को ना लहै,
होय बेगम्म सो गम्म पावै ।
गुनौं की गम्म ना अजब बिसराम है,
सैन को लखै सोइ सैन गावै ॥ १ ॥
मुक्ख बानी तिको* स्वाद कैसे कहै,
स्वाद पावै सोई सुक्ख मानै ।
कहैं कब्बीर या सैन गूँगा तईं,
होय गूँगा सोई सैन जानै ॥ २ ॥

॥ १५ ॥

अधर ही ख्याल औ अधर ही चाल है,
अधर के बीच तहँ मट्ठ कीया ।
खेल उलटा चला जाय चौथे मिला,
सिंघ के मुक्ख फिर सीस दीया ॥ १ ॥
सब्द घनघोर टंकोर तहँ अधर है,
नूर को परसि के पीर पाया ।
कहैं कब्बीर यह खेल अवधूत का,
खेलि अवधूत घर सहज आया ॥ २ ॥

---

*तिस का ।

॥ १६ ॥

छका* अवधूत मस्तान माता रहै,
ज्ञान वैराग सुधि लिया पूरा ।
स्वाँस उस्वाँस का प्रेम प्याला पिया,
गगन गरजै तहाँ बजै तूरा ॥ १ ॥
पीठ संसार से नाम-राता रहै,
जतन जरना लिया सदा खेलै ।
कहैं कब्बीर गुरु पीर से सुरखरू,†
परम सुख धाम तहँ प्रान मेलै ॥ २ ॥

॥ १७ ॥

छका सो थका फिर देह धारै नहीं,
करम औ कपट सब दूर कीया ।
जिन स्वाँस उस्वाँस का प्रेम प्याला पिया,
नाम दरियाव तहँ पैसि‡ जीया ॥ १ ॥
चढ़ी मतवाल औ हुआ मन साबिता§,
फटिक ज्यौं फेर नहिं फूटि जावै ।
कहैं कब्बीर जिन बास निर्भय किया,
बहुरि संसार मैं नाहिं आवै ॥ २ ॥

॥ १८ ॥

तरक संसार से फरक फर्क सदा,
गरक‖ गुरु ज्ञान में जुक्त जोगी ।
अर्ध औ उर्ध के बीच आसन किया,
बंक प्याला पिवै रस्स भोगी ॥ १ ॥

---

*सरशार । †आदर के योग्य । ‡पैठ कर । §थिर । ‖डूबा हुआ ।

अर्ध दरियाव तहँ जाय डोरी लगी,
महल बारीक का भेद पाया ।
कहैं कब्बीर यों संत निर्भय हुआ,
परम सुख धाम तहँ प्रान लाया ॥ २ ॥

॥ १६ ॥

माड़ि मतवाल तहँ ब्रह्म भाठी जरै,
पिवै कोइ सूरमा सीस मेलै ।
पाँच को पेल सैतान को पकरि के,
प्रेम प्याला जहाँ अधर झेलै ॥ १ ॥
पलटि मन पवन को उलटि सूधा कँवल,
अर्ध औ उर्ध बिच ध्यान लावै ।
कहैं कब्बीर मस्तान माता रहै,
बिना कर ताँतिया नाद गावै ॥ २ ॥

॥ २० ॥

आठ हूँ पहर मतवाल लागी रहै,
आठ हूँ पहर की छाक* पीवै ।
आठ हूँ पहर मस्तान माता रहै,
ब्रह्म की छौल† में साध जीवै ॥ १ ॥
साँच ही कहतु औ साँच ही गहतु है,
काँच को त्याग करि साँच लागा ।
कहैं कब्बीर यों साध निर्भय हुआ,
जनम औ मरन का भर्म भागा ॥ २ ॥

---

* प्याला । † आनन्द ।

॥ २१ ॥

करत कलोल दरियाव के बीच मैं,
ब्रह्म की छौल मैं हंस झूलै ।
अर्ध औ उर्ध की पैंग बाढ़ी तहाँ,
पलट मन पवन को कँवल फूलै ॥ १ ॥
गगन गरजै तहाँ सदा पावस† झरै,
होत झनकार नित बजत तूरा ।
बेद कत्तेब की गम्म नाहीं तहाँ,
कहैं कब्बीर कोइ रमै सूरा ॥ २ ॥

॥ २२ ॥

गगन की गुफा तहँ गैब का चाँदना,
उदय औ अस्त का नाँव नाहीं ।
दिवस औ रैन तहँ नेक नहिँ पाइये,
प्रेम परकास के सिंध माहीं ॥ १ ॥
सदा आनंद दुख दुन्द ब्यापै नहीं,
पूरनानंद भरपूर देखा ।
भर्म और भ्रांति तहँ नेक आवै नहीं,
कहैं कब्बीर रस एक पेखा ॥ २ ॥

॥ २३ ॥

खेल ब्रह्मंड का पिंड मैं देखिया,
जगत की भर्मना दूरि भागी ।
बाहरा भीतरा एक आकासवत,
सुषमना डोरि तहँ उलटि लागी ॥ १ ॥

---

*आनन्द । †वर्षा ।

पवन को पलटि के सुन्न मैं घर किया,
घर* मैं अधर भरपूर देखा।
कहैं कब्बीर गुरु पूर की मेहर से,
तिरकुटी मद्ध दीदार पेखा ॥ २ ॥

॥ २४ ॥

देख दीदार मस्तान मैं होइ रह्यो,
सकल भरपूर है नूर तेरा।
सुभग दरियाव तहँ हंस मोती चुगैं,
काल का जाल तहँ नाहिँ नेड़ा ॥ १ ॥
ज्ञान का थाल औ सहज मति बाति है,
अधर आसन किया अगम डेरा।
कहैं कब्बीर तहँ भर्म भासै नहीं,
जन्म औ मरन का मिटा फेरा ॥ २ ॥

॥ २५ ॥

सूर परकास तहँ रैन कहँ पाइये,
रैन परकास नहिँ सूर भासै।
ज्ञान परकास अज्ञान कहँ पाइये,
होइ अज्ञान तहँ ज्ञान नासै ॥ १ ॥
काम बलवान तहँ नाम कहँ पाइये,
नाम जहँ होय तहँ काम नाहीं।
कहैं कब्बीर यह सत्त बीचार है,
समुझ बिचार करि देख माहीं ॥ २ ॥

*शरीर।

॥ २६ ॥

एक समसेर* इकसार बजती रहै,
खेल कोइ सूरमा संत झेलै ।
काम दल जीत करि क्रोध पैमाल† करि,
परम सुख धाम तहँ सुरत मेलै ॥ १ ॥
सील से नेह करि ज्ञान कै खड़ग ले,
आय चौगान मेँ खेल खेलै ।
कहैँ कब्बीर सोइ संत जन सूरमा,
सीस को सौंप करि करम ठेलै ॥ २ ॥

॥ २७ ॥

पकरि समसेर* संग्राम मेँ पैसिये,
देह परजंत कर जुद्ध भाई ।
काट सिर बैरियाँ दाब जहँ का तहाँ,
आय दरबार मेँ सीस नाई ॥ १ ॥
करत मतवाल जहँ संत जन सूरमा,
घुरत निस्सान तहँ गगन धाई ।
कहैँ कब्बीर अब नाम से सुरखरू,
मौज दरबार की भक्ति पाई ॥ २ ॥

॥ २८ ॥

देँह बंदूक और पवन दारू‡ किया,
ज्ञान गोली तहाँ खूब डाटी ।
सुरत की जामकी§ मूठ चौथे लगी,
भर्म की भीत॥ सब दूर फाटी ॥ १ ॥

---

*तलवार । †रौंदना । ‡बारूत । §रस्सी या दूसरी जलने वाली चीज़ जिसके द्वारा रंजक मेँ आग पहुँचाते हैँ । ॥दीवार ।

कहैं कब्बीर कोइ खेलिहै सूरमा,
  कायराँ खेल यह होत नाहीं।
आस की फाँस को काटि निर्भय भया,
  नाम रस रस्स कर गरक माहीं ॥ २ ॥

॥ शब्द २६ ॥

ज्ञान समसेर को बाँधि जोगी चढ़ै,
  मार मन मीर रन धीर हूवा।
खेत को जीत करि बिसन* सब पेलिया,
  मिला हरि माहिँ अब नाहिँ जूवा ॥ १ ॥
जगत में जस्स औ दाद दरगाह में,
  खेल यह खेलिहै सूर कोई।
कहैं कब्बीर यह सूर का खेल है,
  कायराँ खेल यह नाहिँ होई ॥ २ ॥

॥ शब्द ३० ॥

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं,
  देखि भागै सोई सूर नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना,
  मँडा घमसान तहँ खेत माहीं ॥ १ ॥
सील औ साँच संतोष साही भये,
  नाम समसेर तहँ खूब बाजै ॥ २ ॥
कहैं कब्बीर कोइ जूझिहै सूरमा,
  कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥ ३ ॥

॥ शब्द ३१ ॥

साध का खेल तो बिकट बैंड़ा मती,
  सती औ सूर की चाल आगे।

---

* बिषय।

सूर घमसान है पलक दो चार का,
सती घमसान पल एक लागे ॥ १ ॥
साध संग्राम है रैन दिन जूझना,
देह पर्जंत का काम भाई ।
कहैं कब्बीर टुक बाग ढीलो करै,
उलटि मन गगन से जमीं आई ॥ २ ॥

मिश्रित

॥ शब्द १ ॥

तन मन धन बाजी लागी हो ॥ टेक ॥
चौपड़ खेलूँ पीव से रे, तन मन बाजी लगाय ।
हारी तो पिय की भई रे, जीती तो पिय मोर हो ॥१॥
चौसरिया के खेल में रे, जुग्ग मिलन की आस ।
नर्द अकेली रह गई रे, नहिं जीवन की आस हो ॥२॥
चार बरन घर एक है रे, भाँति भाँति के लोग ।
मनसा वाचा कर्मना, कोइ प्रीति निबाहो ओर हो ॥३॥
लख चौरासी भरमत भरमत, पौ पै अटकी आय ।
जो अबके पौ ना पड़ी रे, फिर चौरासी जाय हो ॥४॥
कहैं कबीर धर्मदास से रे, जीती बाजी मत हार ।
अबके सुरत चढ़ाय दे रे, सोई सुहागिन नार हो ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

जन को दीनता जब आवै ॥ टेक ॥
रहै अधीन दीनता भाषै, दुरमति दूरि बहावै ।
सो पद देवँ दास अपने को, ब्रह्मादिक नहिँ पावै ॥१॥

औरन को ऊँचो करि जानै, आपुन नीच कहावै ।
तुम तैं अवधू साँच कहतु हैाँ, सो मेरे मन भावै ॥२॥
सब घट एक ब्रह्म जो जानै, दुबिधा दूर बहावै ।
सकल भर्मना त्यागि के अवधू, इक गुरु के गुन गावै ॥३॥
होइ लौलीन प्रेम लौ लावै, सब अभिमान नसावै ।
सत्त सब्द मैँ रहै समाई, पढ़ि गुनि सब बिसरावै ॥४॥
गुरु की कृपा साध की संगत, जोग जुक्ति तैं पावै ।
कहैं कबीर सुनो हो साधो, बहुरि न भवजल आवै ॥५॥

॥ शब्द ३ ॥

साधो सो जन उतरे पारा । जिन मन तैं आपा डारा ॥टेक॥
कोई कहै मैं ज्ञानी रे भाई, कोई कहै मैं त्यागी ।
कोई कहै मैं इन्द्री जीती, अहं सबन को लागी ॥ १ ॥
कोई कहै मैं जोगी रे भाई, कोई कहै मैं भोगी ।
मैं तैं आपा दूरि न डारा, कैसे जीवै रोगी ॥ २ ॥
कोई कहै मैं दाता रे भाई, कोई कहै मैं तपसी ।
निज तत नाम निस्चय नहिं जाना, सब माया मैं खपसी ॥३
कोई कहै जुगती सब जानौं, कोई कहै मैं रहनी ।
आतम देव से परिचय नाहीं, यह सब झूठी कहनी ॥४॥
कोई कहै धर्म सब साधे, और बरत सब कीन्हा ।
आपा की आँटी नहिं निकसी, करज बहुत सिर लीन्हा ॥५॥
गरब गुमान सब दूर निवारे, करनी को बल नाहीं ।
कहैं कबीर साहेब का बंदा, पहुँचा निज पद माहीं ॥६॥

॥ शब्द ४ ॥

चरखे का सिरजनहार, बढ़ैया इक ना मरै ॥ टेक ॥
बाबुल मोरा ब्याह करा दो, अनजाया बर लाय ।
अनजाया बर ना मिलै तो, तोहि से मोरा ब्याह ॥१॥

हरे हरे बाँस कटा मोरे बाबुल, पानन मड़वा छाय।
सुरति निरति की भाँवरि डारो, ज्ञान की गाँठि लगाय २
सास मरै ननदी मरै रे, लहुरा देवर मरि जाय।
एक बढ़ैया ना मरै, चरखे का सिरजनहार ॥ ३ ॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, चरखा लखो न जाय।
या चरखे को जो लखे रे, आवा गवन छुटि जाय ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

जहँ लोभ मोह के खंभ दोऊ, मन रच्यो है हिंडोर।
तहँ झूलैं जीव जहान, जहँ कतहूँ नहिं थिर ठौर ॥ १ ॥
चतुरा झूलैं चतुराइयाँ, औ झूलैं राजा सेव।
चंद सूर दोऊ नित झूलैं, नाहीं पावैं भेव ॥ २ ॥
चौरासी लच्छहुँ जिव झूलैं, झूलैं रवि ससि धाय।
कोटिन कल्प जुग बीतिया, आये न कबहूँ हाय ॥ ३ ॥
धरनी आकासहु दोउ झूलैं, झूलैं पवनहुँ नीर
धरि देही हरि आपहु झूलैं, लखहीं संत कबीर ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

मोको कहाँ ढूँढो बंदे, मैं तो तेरे पास मैं ॥ टेक ॥
ना मैं छगरी* ना मैं भेंड़ी, ना मैं छुरी गँडास मैं ॥१॥
नहीं खाल मैं नहीं पूँछ मैं, ना हड्डी ना मास मैं ॥२॥
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास मैं ॥३॥
ना तौ कौनो क्रिया कर्म मैं, नहीं जोग बैराग मैं ॥४॥
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास मैं ॥५॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास† मैं ॥६॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सब स्वाँसौं की स्वाँस मैं ॥७॥

---

* बकरी। † सरन।

॥ शब्द ७ ॥

जो कोइ या बिधि मन को लगावै। मन के लगाये गुरु पावै१
जैसे नटवा चढ़त बाँस पर, ढोलिया ढोल बजावै।
अपना बोझ धरै सिर ऊपर, सुरति बाँस पर लावै ॥२॥
जैसे भुवंगम* चरत बनी मैं, ओस चाटने आवै।
कभी चाटै कभी मनि तन चितवै, मनि तज प्रान गँवावै ॥३
जैसे कामिनि भरत कूप जल, कर छोड़े बतरावै†।
अपना रँग सखियन सँग राचै, सुरति डोर पर लावै ॥४॥
जैसे सती चढ़ी सत ऊपर, अपनी काया जरावै।
मातु पिता सब कुटुँब तियागै, सुरत पिया पर लावै ॥५॥
धूप दीप नैवेद अरगजा, ज्ञान की आरत लावै।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, फेर जनम नहिं पावै ॥६॥

॥ शब्द ८ ॥

ऐसी दिवानी दुनियाँ, भक्ति भाव नहिं बूझै जी ॥१॥
कोई आवे तो बेटा माँगै, यही गुसाँई दीजे जी ॥२॥
कोई आवे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी ॥३॥
कोई आवै तो दौलत माँगे, भेंट रुपैया लीजै जी ॥४॥
कोई करावे ब्याह सगाई, सुनत गुसाँई रीझै जी ॥५॥
साँचे का कोइ गाहक नाहीं, झूठे जक्त पतीजै जी ॥६॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अंधों को क्या कीजै जी ॥७॥

॥ शब्द ९ ॥

सतगुरु चारो बरन बिचारी ॥ टेक ॥
ब्राह्मन वही ब्रह्म को चीन्है, पहिरै जनेव बिचारी ॥१॥
साध के सौ गुन जनेव के नौ गुन, सो पहिरे ब्रह्मचारी ॥२॥

---

* साँप। † बात करती है।

छत्री वही जो पाप को छै करै, बाँधै ज्ञान तरवारी ॥३॥
अंतर दिल बिच दाया राखै, कबहूँ न आवै हारी ॥४॥
वैस वही जो बिषया त्यागै, त्याग देय पर नारी ॥५॥
ममता मारि के मंजन लावै, प्रान दान दैडारी ॥६॥
सूद्र वही जो सूधो राहै, छोड़ देय अपकारी ॥७॥
गुरु की दया साध की संगत, पावै अचल पद भारी ॥८॥
जो जन भजै सोई जन उबरै, या मेँ जीत न हारी ॥९॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, नामै गहो सँभारी ॥१०॥

॥ शब्द १० ॥

संतन जात न पूछो निरगुनियाँ ॥ टेक ॥
साध बराम्हन साध छत्तरी, साधै जाती बनियाँ।
साधन माँ छत्तीस कौम है, टेढ़ी तोर पुछनियाँ* ॥१॥
साधै नाऊ साधै धोबी, साध जाति है बरियाँ।।
साधन माँ रैदास संत हैँ, सुपच ऋषी से भँगियाँ ॥२॥
हिन्दू तुर्क दुइ दीन बने हैँ, कछू नाहिँ पहिचनियाँ।
लाखन जाति जगत माँ फैली, काल को फंद पसरियाँ ॥३॥
सब तत्तन माँ संत बड़े हैँ, सब्द रूप जिन देहियाँ।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, सत्तरूप वहि जनियाँ ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

चुनरिया हमरी पिय ने सँवारी।
कोइ पहिरै पिय की प्यारी ॥ १ ॥

---

*सवाल।

आठ हाथ की बनी चुनरिया ।
पँच रँग पटिया पारी ॥ २ ॥
चाँद सुरज जा मैं आँचल लागे ।
जगमग जोति उँजारी ॥ ३ ॥
बिनु ताने यह बनी चुनरिया ।
दास कबीर बलिहारी ॥ ४ ॥

॥ शब्द १२ ॥

काहू न मन बस कीन्हा, जग मैं काहू न मन बस कीन्हा ॥टेक
सिंगी* ऋषि से बन मैं लूटे, बिषै विकार न जाने ।
पठई नारि भूप दसरथ ने, पकरि अजोध्या आने ॥ १ ॥

---

*श्रृंगी ऋषी अकेले वन में रहते थे पवन का अहार करते थे और एक बार दरख़्त पर ज़बान मारते थे। राजा दशरथ के औलाद नहीं होती थी वशिष्ठ जी जाकि उनके कुल के पुरोहित थे उन्होंने कहा कि विधि पूर्वक जज्ञ क्रया और होम होगा तब बेटा होने की उम्मेद हो सकती है और ऐसी क्रया सिवाय श्रृंगी ऋषि के और कोई नहीं करा सकता है। राजा दशरथ का हुक्म हुआ कि जो कोई श्रृंगी ऋषि को यहाँ लावेगा उसको हीरे जवाहिर का थाल भर कर मिलेगा। एक वेश्या ने कहा मैं ले आती हूँ वह वहाँ गई देखा कि ऋषि जी बड़ी समाधि मैं बैठे हैं। जिस दरख़्त पर कि ज़बान लगाते थे वहाँ एक उँगली गुड़ की लगा दी ऋषि जी ने जब ज़बान लगाई चाट लग गई पहले एक दफ़ा ज़बान मारते थे उस रोज़ दो दफ़ा मारी दूसरे रोज़ तीन बार मारी इसी तरह रस बढ़ता गया और ताक़त आने लगी। वह वेश्या जो छिप के बैठी थी उसने हलुवा पेश किया तब थोड़ा हलुवा खाने लगे बदन जो दुबला था वह पुष्ट होने लगा ताक़त आई वेश्या पास थी सब कार्रवाई जारी होगई, दो तीन लड़के हुए। किसी बहाने श्रृंगी जी से वेश्या ने कहा चलो राज दरबार मैं यहाँ जंगल मैं लड़के भूखे मरते हैं बिचारे उसके साथ हो लिये। दो लड़कों को दोनों कंधो पर उठाया और एक का हाथ पकड़ा पीछे वह वेश्या चली। इस दशा मैं राजा दशरथ के दरबार मैं पहुँचे और वहाँ क्रया होम वग़ैरह की कराई। जब वहाँ किसी ने ताना मारा तब होश आया एक दम लड़कों को वहीं पटक के भागे और जाना कि माया ने लूट लिया।

सूखे पत्र पवन भपि रहते, पारासर* से ज्ञानी।
भरमे रूप देख वनिता को, कामकन्दला† जानी ॥ २ ॥
सोइ सुरपति‡ जा की नार सुची सी, निसदिन हीं सँग राखो।
गौतम के घर नारि अहिल्या, निगम कहत है साखी ॥ ३ ॥
पारवती सी पतनी जा के, ता को मन क्यों डोले।
खलित भये छबि देख मोहनी, हाहा करिके बोले§ ॥ ४ ॥
एकै नाल कँवलसुत ब्रह्मा, जग-उपराज|| कहावै।
कहैं कबीर इक मन जीते बिन, जिव आराम न पावै ॥ ५ ॥

---

*पाराशर ऋषि ने मछोदरी से नाव में भोग किया (यह स्त्री उन्हीं के बीज से मछली के पेट से पैदा हुई थी जो बीज गंगा में नहाते वक़्त ऋषि जी का किसी समय में गिर गया था और एक मछली ने खा लिया था) उस मछोदरी ने कहा अभी दिन है लोग देखते हैं तब ऋषि ने अपनी सिद्ध शक्ति से अँधेरा कर दिया आकाश में बादल आ गये। फिर स्त्री ने कहा मेरे बदन से मच्छी की बदबू आती है ऋषि ने बदबू को बदल के खुशबू कर दिया। नतीजा इस संगम का यह हुआ कि व्यास जी उस मछोदरी से पैदा हुए।

†कामकंदला एक परम सुन्दर स्त्री अजोध्या में हो गई है।

‡गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या पर राजा इन्द्र मोहित हुए सोचा कि गौतम पिछली रात नदी में नहाने जाते हैं इस लिये चांद को हुक्म दिया कि तुम आज रात को बारह बजे के वक़्त जहाँ कि तीन बजे निकलते हो निकलना और मुर्ग़े को कहा कि तू बारह बजे रात को आवाज़ दे दोनों ने ऐसाही किया और गौतम धोखा खाकर आधीरात को उठे और मुवाफ़िक़ दस्तूर के नदी को चले गये। इन्द्र भीतर गौतम के घर में घुसे जब गौतम लौट के आये तब सब हाल मालूम होगया—चाँद को सराप दिया कि तुमको कलंक लगेगा और अपनी स्त्री अहिल्या को सराप दिया कि पत्थर हो जायगी मुर्ग़े को कहा कि हिन्दू तुझको अपने घर में नहीं रक्खेंगे और इन्द्र को सराप दिया कि एक काम इन्द्री के बस तू ने ऐसा अत्याचार किया तेरे शरीर में हज़ार वैसी ही इन्द्री हो जाएँगी।

§ शिवजी जिन के पारबती ऐसी सुन्दर स्त्री थीं उनको छोड़ के मोहनी स्वरूप माया का देख कर उसके पीछे दौड़े और जोश में बीज टहर गिर गया (इसी बीज से पारा पैदा हुआ) जब देखा माया का चरित्र है तब अपने इष्टदेव को सराप दिया कि जैसे हम स्त्री के पीछे दौड़े हैं वैसेही तुम भी दौड़ोगे—इसी से त्रेता जुग में राम औतार हुआ, सीता के पीछे बन बन दौड़ना पड़ा।

|| सृष्टि का रचने वाला।

॥ इति ॥

सूची शब्दोँ की।

कबीर शब्दावली

दूसरा भाग

उपदेश

॥ शब्द १ ॥

अरे मन धीरज काहे न धरै ।
सुभ और असुभ करम पूरबले, रती घटै न बढ़ै ॥ १ ॥
होनहार होवै पुनि सोई, चिन्ता काहे करै ।
पसु पंछी जिव कीट पतंगा, सब की सुद्ध करै ॥ २ ॥
गर्भ बास मैं खबर लेतु है, बाहर क्योँ बिसरै ।
मात पिता सुत सम्पति दारा, मोह के ज्वाल जरै ॥ ३ ॥
मन तू हंसन से साहिब के, भटकत काहे फिरै ।
सतगुरु छोड़ और को ध्यावै, कारज इक न सरै ॥ ४ ॥
साधुन सेवा कर मन मेरे, कोटिन ब्याधि हरै ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मैं जीव तरै ॥ ५ ॥

॥ शब्द २ ॥

मन तू मानत क्योँ न मना रे ।
कौन कहन को कौन सुनन को, दूजा कौन जना रे ॥१॥
दर्पन मैं प्रतिबिंब जो भासै, आप चहूँ दिसि सोई ।
दुबिधा मिटै एक जब होवै, तौ लखि पावै कोई ॥ २ ॥
जैसे जल तेँ हेम[1] बनतु है, हेम घूम जल होई ।
तैसे या तत[2] वाहू तत[3] सो, फिर यह अरु वह सोई ॥३॥

---

(१) बरफ़ । (२) जीव । (३) सार वस्तु ।

जो समुझै तो खरी कहन है, ना समुझै तो खोटी ।
कहै कबीर दोऊ पख त्यागै, ता की मति है मोटी[१] ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

मन तू थकत थकत थक जाई ।
बिन थाके तेरो काज न सरिहै, फिर पाछे पछिताई ॥१॥
जब लग तोकर[२] जीव रहतु है, तब लग परदा भाई ।
टूटि जाय ओट तिनुका की, रसक रहै ठहराई ॥२॥
सकल तेज तज होय नपुन्सक, यह मति सुन ले मेरी ।
जीवत मिर्तक दसा बिचारै, पावै वस्तु घनेरी ॥३॥
या के परे और कछु नाहीं, यह मति सब से पूरा ।
कहै कबीर मार मन चंचल, हो रहु जैसे धूरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४ ॥

प्रीति उसी से कीजिये, जो ओर निभावै ।
बिना प्रीति के मानवा, कहिं ठौर न पावै ॥ १ ॥
नाम सनेही जब मिलै, तब ही सच पावै ।
अजर अमर घर ले चलै, भवजल नहिं आवै ॥ २ ॥
ज्योँ पानी दरियाव का, दूजा न कहावैं ।
हिलि मिलि ऐको ह्वै रहै, सतगुरु समुझावै ॥ ३ ॥
दास कबीर बिचारि के, कहि कहि जतलावै ।
आपा मिटि साहिब मिलै, तब वह घर पावै ॥ ४ ॥

॥ शब्द ५ ॥

भजि ले सिरजनहार, सुघर तन पाइ के ॥टेक॥
काहे रहौ अचेत, कहाँ यह औसर पैहो ।
फिर नहिं ऐसी देह, बहुरि पाछे पछितैहो ॥

---

(१) दृढ़ । (२) हौंमैं-ग्रसित ।

लख चौरासी जोनि मैं, मानुष जन्म अनूप ।
ताहि पाइ नर चेतत नाहीं, कहा रंक कहा भूप ॥१॥
गर्भ बास मैं रह्यो कह्यो, मैं भजिहौं तोहीं ।
निसि दिन सुमिरौं नाम, कष्ट से काढ़ो मोहीं ॥
चरनन ध्यान लगाइ के, रहौं नाम लौ लाय ।
तनिक न तोहिं बिसारिहौं, यह तन रहै कि जाय ॥२॥
इतना कियौ करार, काढ़ि गुरु बाहर कीन्हा ।
भूलि गयौ वह बात, भयौ माया आधीना ॥
भूलीं बातैं उद्र की, आनि पड़ी सुधि एत ।
बारह बरस बीत गे या बिधि, खेलत फिरत अचेत ॥३॥
बिषया बान समान, देह जोबन मद माते ।
चलत निहारत छाँह, तमक के बोलत बाते ॥
चोवा चंदन लाइ के, पहिरे बसन रँगाय ।
गलियाँ गलियाँ झाँकी मारै, पर तिरिया लख मुसकाय ॥४॥
तुरनापन गइ बीत, बुढ़ापा आन तुलाने ।
काँपन लागे सीस, चलत दोउ चरन पिराने ॥
नैन नासिका चूवन लागे, मुख तैं आवत बास ।
कफ पित कंठै घेर लियो है, छुटि गइ घर की आस ॥५॥
मातु पिता सुत नारि, कहौ का के संग जाई ।
तन धन घर औ काम धाम, सबही छुटि जाई ॥
आखिर काल घसीटिहै, परिहौ जम के फन्द ।
बिन सतगुरु नहिं बाचि है, समुझि देख मतिमन्द ॥६॥
सुफल होत यह देह, नेह सतगुरु से कीजे ।
मुक्ती मारग जानि, चरन सतगुरु चित दीजे ॥

नाम गहो निरभय रहो, तनिक न व्यापै पीर ।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर ॥ ७ ॥

॥ शब्द ६ ॥

बातों मुक्ति न होइहै, छाड़ै चतुराई हो ।
एक नाम जाने बिना, भूला दुनियाई हो ॥१॥
वेद कतेब भवजाल है, मरि है बौराई हो ।
मुक्ति भेव कछु और है, कोइ बिरले पाई हो ॥२॥
काग छाड़ि बिन हंस ह्वै, नहिं मिलत मिलाई हो ।
जो पै कागा हंस ह्वै, वा से मिलि जाई हो ॥३॥
बसहु हमारे देसवा, जम तलब नसाई हो ।
गुरु बिन रहनि न होइहै, जम घैधे खाई हो ॥४॥
कहै कबीर पुकारि के, साधुन समुझाई हो ।
सत्त सजीवन नाम है, सतगुरु हि लखाई हो ॥५॥

॥ शब्द ७ ॥

नाम लगन छूटै नहीं, सोइ साधु सयाना हो ॥टेक॥
माटी कै बरतन बन्यो, पानी लै साना हो ।
बिनसत बार न लागिहै, राजा क्या राना हो ॥१॥
बया सराय का बासना, सब लोग बिगाना हो ।
होत भोर सब उठि चले, दूर देस को जाना हो ॥२॥
आठ पहर सन्मुख लड़ै, सो बाँधे बाना[1] हो ।
जीत चला भवसागर सोइ, सूरा मरदाना हो ॥३॥
सतगुरु की सेवा करै, पावै परवाना[2] हो ।
कहै कबीर धर्मदास से, तेहि काल डेराना हो ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

सुकिरत करि ले नाम सुमिरि ले, को जानै कल की ।
जगत में खबर नहीं पल की ॥१॥

---

(१) हथियार । (२) सनद ।

झूठ कपट करि माया जोरिन, बात करैं छल की ।
पाप-की पोट धरे सिर ऊपर, किस बिधि ह्वै हलकी ॥२॥
यह मन तो है हस्ती मस्ती, काया मट्टी की ।
साँस साँस मैं नाम सुमिरि ले, अवधि घटै तन की ॥३॥
काया अंदर हंसा बोलै, खुसियाँ कर दिल की ।
जब यह हंसा निकरि जाहिंगे, मट्टी जंगल की ॥४॥
काम क्रोध मद लोभ निवारो, याही बात असल की ।
ज्ञान बैराग दया मन राखो, कहै कबीरा दिल की ॥५॥

॥ शब्द ९ ॥

ए जियरा तैं अमर लोक को, पर्यो काल बस आई हो ।
मनै सरूपी देव निरंजन, तोहि राख्यो भरमाई हो ॥१॥
पाँच पचीस तीन को पिंजरा ता मैं तो को राखै हो ।
तो को बिसरि गई सुधि घर की, महिमा आपन भाखै हो ॥२॥
निरंकार निरगुन ह्वै माया, तो को नाच नचावै हो ।
चमर दृष्टि की कुलफी दीन्हो, चौरासी भरमावै हो ॥३॥
चार बेद जा की है स्वासा, ब्रह्मा अस्तुति गावै हो ।
सो कथि ब्रह्मा जगत भुलाये, तेहि मारग सब धावै हो ॥४॥
जोग जाप नेम ब्रत पूजा, बहु परपंच पसारा हो ।
जैसे बधिक ओट टाटी के, दे बिस्वासै चारा हो ॥५॥
सतगुरु पीव जीव के रच्छक, ता से करो मिलाना हो ।
जा के मिले परम सुख उपजै, पावो पद निर्बाना हो ॥६॥
जुगन जुगन हम आय जनाई, कोइ कोइ हंस हमारा हो ।
कहै कबीर तहाँ पहुँचाऊँ, सत्त पुरुष दरबारा हो ॥७॥

॥ शब्द १० ॥

मन रे अब की बेर सम्हारो ॥टेक॥
जन्म अनेक दगा मैं खोयो, बिन गुरु बाजी हारो ॥१॥

बालापने ज्ञान नहिँ तन मैँ, जब जनमो तब बारो ॥२॥
तरुनाई सुख बास मैँ खोयो, बाज्यो कूच नगारो ॥३॥
सुत दारा मतलब के साथी, ता को कहत हमारो ॥४॥
तीन लोक औ भवन चतुरदस, सबहि काल को चारो ॥५॥
पूर रह्यो जगदीस गुरू तन, वा से रह्यो नियारो ॥६॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब घट देखनहारो ॥७॥

॥ शब्द ११ ॥

मन करि ले साहिब से प्रीत ।
सरन आये सो सब ही उबरे, ऐसी उनकी रीत ॥१॥
सुन्दर देह देखि मत भूलो, जैसे तृन पर सीत[1] ।
काँची देह गिरै आखिर को, ज्योँ बारू की भीत ॥२॥
ऐसो जन्म बहुर नहिँ पैहौ, जात उमिरि सब बीत ।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपर, देव नगारा जीत ॥३॥

॥ शब्द १२ ॥

साधो सार सबद गुन गाओ ॥ टेक ॥
काया कोट मैँ काम बिराजै, सो जम के गढ़ छायो ।
चैादह बुरुज[2] दसो दरवाजा,[3] कोठरी[4] अनेक बसायो ॥१॥
पाँचो यार पचीसो भाई, सगरि गुहार बुलाओ ।
तेगा तरकसि कसि के बाँधो, दुरमति दूर बहाओ ॥२॥
काढ़ि कटारी जम को मारो, तबै अमल गढ़ पाओ ।
त्रिकुटी मध तिरबेनी धारा, सूरमा भक्त कहाओ ॥ ३ ॥
मन बन्दूक औ ज्ञान पलीता, प्रेम पियाला लाओ ।
सबद कै गोली धुनि कै रंजक, काल मारि बिचलाओ ॥४॥

---

(१) पाला । (२) दस इन्द्री और चार अंतःकरण । (३) दस अंतरी द्वार ।
(४) अंतरी चक्र ।

जो कोइ बीर चढ़ै लड़ने पर, मन के मैल धुवाओ ।
द्वादस घाटी छेके बाटी, सुरत सँगीन चढ़ाओ ॥ ५ ॥
गगन में गहगह होत महा धुन, साधक सुनि उठि धाओ ।
संतन धीरा महा कबीरा, सूतल[1] ब्रह्म जगाओ ॥ ६ ॥

॥ शब्द १३ ॥

सुख सागर में आइ के, मत जा रे प्यासा ॥ टेक ॥
अजहु समझ नर बावरे, जम करत तिरासा ॥ १ ॥
निर्मल नीर भरयो तेरे आगे, पी ले स्वासो स्वासा ॥ २ ॥
मृग-तृस्ना जल छाड़ बावरे, करो सुधा रस आसा ॥३॥
गोपीचंदा और भर्थरी, पिहिन प्रेम भर कासा[2] ॥ ४ ॥
ध्रू प्रहलाद भभीखन पीया, और पिया रैदासा ॥ ५ ॥
प्रेमहि संत सदा मतवाला, एक नाम की आसा ॥ ६ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, मिटि गई भव की बासा ॥७॥

॥ शब्द १४ ॥

धुबिया[3] जल बिच मरत पियासा ॥ टेक ॥
जल में ठाढ़ पियै नहिं मूरख, अच्छा जल है खासा ।
अपने घट के मरम न जानै, करै धुबियन कै आसा ॥१॥
छिन में धुबिया रोवै धोवै, छिन में होइ उदासा ।
आपै बरै[4] करम की रसरी, आपन गर[5] कै फाँसा ॥ २ ॥
सच्चा साबुन लेहि न मूरख, है संतन के पासा ।
दाग पुराना छूटत नाहीं, धोवत बारह मासा ॥ ३ ॥
एक रती कैा जोरि लगावै, छोरि दियै भरि मासा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आछत अन्न उपासा ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

सब बातन में चतुर है, सुमिरन में काँचा ।
सत्तनाम को छाड़ि के, माया सँग राचा ॥ १ ॥

---

(१) जिसका हम को ज्ञान नहीं है। (२) प्याला। (३) मन। (४) बटे। (५) गला।

दीनबन्धु बिसराइया, आया दे बाचा ।
ज्योँहि नचाया कामिनी, त्योँ त्योँ ही नाचा ॥ २ ॥
इन्द्रि बिषे के कारने, सही नर्क की आँचा ।
कहै कबीर हरि जब मिलै, हरिजन हो सांचा ॥ ३ ॥

॥ शब्द १६ ॥

घर घर दीपक बरै, लखै नहिँ अंध है ।
लखत लखत लखि परै, कटै जम फंद है ॥ १ ॥
कहन सुनन कछु नाहिँ, नहीँ कछु करन है ।
जीते ही मरि रहै, बहुरि नहिँ मरन है ॥ २ ॥
जोगी पड़े बिजोग, कहैँ घर दूर है ।
पासहि बसत हजूर, तु चढ़त खजूर है ॥ ३ ॥
बाम्हन दिच्छा देत, सो घर घर घालिहै ।
मूर सजीवन पास, सो पाहन पालिहै ॥ ४ ॥
ऐसन दास कबीर, सलोना आप है ।
नहीँ जोग नहिँ जाप, पुन्न नहिँ पाप है ॥ ५ ॥

॥ शब्द १७ ॥

पढ़ो मन ओनामासीधंग[1] ॥ टेक ॥
ओंकार सबै कोइ सिरजै, सबद सरूपी अंग ।
निरंकार निर्गुन अबिनासी, कर वाही को संग ॥ १ ॥
नाम निरंजन नैनन मद्धे, नाना रूप धरंत ।
निरंकार निर्गुन अबिनासी, निरखै एकै रंग ॥ २ ॥
माया मोह मगन होइ नाचै, उपजै अंग तरंग ।
माटी कै तन थिर न रहतु है, मोह ममत के संग ॥ ३ ॥
सील संतोष हृदे बिच दाया, सबद सरूपी अंग ।
साध के बचन सत्त करि मानौ, सिर्जनहारो संग ॥ ४ ॥

(१) "ओं नमः सिद्धं" का अपभ्रंश ।

ध्यान धीरज ज्ञान निर्मल, नाम तत्त गहंत ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आदि अंत परयंत ॥ ५ ॥

॥ शब्द १८ ॥

मन तू जाव रे महलिया, आपन बिरना जगाव ॥टेक॥
भैाजिया मरै जगाइ न जागै, लग न सकै कछु दाव ।
कायागढ़ तेरे निसि अँधियरिया, कौन करै वा को भाव ॥१
अकिल की आग दया की बाती, दीपक बारि लगाव ।
तत कै तेल चुवै दियना मेँ, ज्ञान मसाल दिखाव ॥२॥
भ्रम कै ताला लगा महल मेँ, प्रेम की कुंजी लगाव ।
कपट किवरिया खोल के रे, यहि बिधि पिय को जगाव ॥३॥
चित्त चुनरिया भक्ति घाघरा, चोली चाव सिलाव ।
प्रेम कै पवन करो प्रीतम पर, प्रीति पिछौरी उढ़ाव ॥४॥
बार बार पैहो नहिँ नर तन, फेरि भूलि मत जाव ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, फिरि न लगै अस दाव ॥५॥

॥ शब्द १९ ॥

समुझ देख मन मीत पियरवा, आसिक होकर सोना क्या रे १
रूखा सूखा गम का टुकड़ा, चिकना और सलोना क्या रे ॥२॥
पाया हो तो दे ले प्यारे, पाय पाय फिर खोना क्या रे ॥३॥
जिन आँखन मेँ नींद घनेरी, तकिया और बिछौना क्या रे॥४
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सीस दिया तब रोना क्या रे॥५

॥ शब्द २० ॥

जाके नाम न आवत हिये ॥ टेक ॥
काह भये नर कासी बसे से, का गंगा जल पिये ॥ १ ॥
काह भये नर जटा बढ़ाये, का गुदरी के सिये ॥ २ ॥
का रे भये कंठी के बाँधे, काह तिलक के दिये ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नाहक ऐसे जिये ॥ ४ ॥

॥ शब्द २१ ॥

नाम सुमिर नर बावरे, तोरी सदा न देहियाँ रे ॥टेक॥
यह माया कहो कैान की, केकरे सँग लागी रे।
गुदरी[1] सी उठि जायगी, चित चेत अभागी रे ॥१॥
सोने की लंका बनी, भइ धूर की धानी रे।
सोइ रावन की साहिबी, छिन माहिँ बिलानी रे ॥२॥
सोरह जोजन के मद्ध मेँ, चले छत्र की छाँही रे।
सोइ दुर्जोधन मिलि गये, माटी के माहीँ रे ॥३॥
भवसागर मेँ आइ के, कछु कियो न नेका रे।
यह जियरा अनमोल है, कैाड़ी को फेका रे ॥४॥
कहै कबीर पुकारि के, इहाँ कोइ न अपना रे।
यह जियरा चलि जायगा, जस रैन का सपना रे ॥५॥

॥ शब्द २२ ॥

है कोइ भूला मन समुझावै।
या मन चंचल चोर हेरि लो, छूटा हाथ न आवै ॥१॥
जोरि जोरि धन गहिरे गाड़े, जहँ कोइ लेन न पावै।
कंठ क पैाल[2] आइ जम घेरे, दै दै सैन बतावै ॥२॥
खोटा दाम गाँठि लै बाँधै, बड़ि बड़ि वस्तु भुलावै।
बोय बबूल दाख[3] फल चाहै, सो फल कैसे पावै ॥३॥
गुरु की सेवा साध की संगत, भाव भगति बनि आवै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बहुरि न भवजल आवै ॥४॥

॥ शब्द २३ ॥

जीवत मुक्त सोइ मुक्ता हो।
जब लग जीवन मुक्ता नाहीँ, तब लग दुख सुख भुगता हो ॥टेक

---

(१) बाज़ार जो क़सबोँ मेँ थोड़ी देर को तीसरे पहर लगता है। (२) कंठ का द्वार—गला घुँटने से भाव है। (३) छुहारा।

देह संग ना होवै मुक्ता, मुए मुक्ति कहँ होई हो ।
तीरथबासी होय न मुक्ता, मुक्ति न धरनी सोई हो ॥१॥
जीवत भर्म की फाँस न काटी, मुए मुक्ति की आसा हो ।
जल प्यासा जैसे नर कोई, सपने फिरै पियासा हो ॥२॥
है अतीत बंधन तेँ छूटै, जहँ इच्छा तहँ जाई हो ।
बिना अतीत सदा बंधन मेँ, कितहूँ जानि न पाई हो ॥३॥
आवागवन से गये छूटि के, सुमिरि नाम अबिनासी हो ।
कहै कबीर सोई जन गुरु है, काटी भ्रम की फाँसी हो ॥४॥

॥ शब्द २४ ॥

छिमा गहैा हो भाई, धरि सतगुरु चरनी ध्यान रे ॥१॥
मिथ्या कपट तजो चतुराई, तजो जाति अभिमान रे ॥२॥
दया दीनता समता धारो, हो जीवत मृतक समान रे ॥३॥
सुरत निरत मन पवन एक करि, सुनो सबद धुन तान रे ॥४॥
कहै कबीर पहुँचैा सतलोका, जहँ रहै पुरुष अमान रे ॥५॥

॥ शब्द २५ ॥

का जोगी मुद्रा करै, साहिब गति न्यारी ॥टेक॥
नेती धोती वह करै, बहु भाँति सँवारी ।
बाजीगर का पेखना,[1] सब देखनहारी ॥ १ ॥
झाड़ी जंगल वे फिरैँ, अंधे बैपारी ।
पूजा तर्पन जाप मेँ, भूले ब्रम्हचारी ॥२॥
उलटा पवन चढ़ाइ के, जीवैँ अधिका री ।
तन तजि के अजगर भये, गये बाजी हारी ॥३॥
सुन्न महल कहा सोइये, जहँ निसि ऋँधियारी ।
कहै कबीर वहँ सोइये, रबि ससि उँजियारी ॥४॥

---

(१) तमाशा ।

॥ शब्द २६ ॥

खसम न चीन्है बावरी, का करत बड़ाई ॥ टेक ॥
बातन भगत न होहिंगे, छोड़ौ चतुराई ।
कागा हंस न होहिंगे, दुबिधा नहिं जाई ॥ १ ॥
गुरु बिन ज्ञान न पाइहौ, मरिहौ भटकाई ।
चेत करौ वा देस, नहीं जम हाथ बिकाई ॥ २ ॥
दिल दरियाव की माछरी, गंगा बहि आई ।
कोटि जतन सें धोवही, तहु बास न जाई ॥ ३ ॥
साखी सबद सँदेस पढ़ि, मत भूलो भाई ।
संत मता कछु और है, खोजा सो पाई ॥ ४ ॥
तीनि लोक दसहों दिसा, जम धै धै खाई ।
जाइ बसो सतलोक में, जहँ काल न जाई ॥ ५ ॥
कहै कबीर धर्मदास से, हंसा समुझाई ।
आदि अंत की बारता, सतगुरु से पाई ॥ ६ ॥

॥ शब्द २७ ॥

गुरु से कर मेल गँवारा, का सोचत बारम्बारा ॥१॥
जब पार उतरना चहिये, तब केवट से मिलि रहिये ॥२॥
जब उतरि जाय भवपारा, तब छूटै यह संसारा ॥३॥
जब दरसन देखा चहिये, तब दर्पन माँजत रहिये ॥४॥
जब दर्पन लागत काई, तब दर्सन कहँ तें पाई ॥५॥
जब गढ़ पर बजी बधाई, तब देख तमासे जाई ॥६॥
जब गढ़ बिच होत सकेला[1], तब हंसा चलत अकेला ॥७
कह कबिर देख मन करनी, वा के अंतर बीच करतनी ॥८
कतरनि कै गाँठि न छूटै, तब पकरि पकरि जम लूटै ॥९

---

(१) सिमटाव ।

॥ शब्द २८ ॥

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो ॥टेक॥
यहि संसार काल है राजा, करम को जाल पसारा हो।
चौदह खंड बसै जा के मुख, सब को करत अहारा हो ॥१॥
जारि बारि कोइला करि डारत, फिरि फिरि दे औतारा हो।
ब्रम्हा बिस्नु सिव तन धरि आये, और को कौन बिचारा हो॥२
सुर नर मुनि सब छल छल मारिन, चौरासी मेँ डारा हो।
मद्ध अकास आप जहँ बैठे, जोति सबद उजियारा हो ॥३॥
सेत सरूप सबद जहँ फूले, हंसा करत बिहारा हो।
कोटिन सूर चंद छिपि जैहैँ, एक रोम उजियारा हो ॥४॥
वही पार इक नगर बसतु है, बरसत अमृत धारा हो।
कहै कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरुष दरबारा हो ॥५॥

॥ शब्द २९ ॥

सतसँग लागि रहो रे भाई, तेरी बिगरी बात बनिजाई ॥टेक
दौलत दुनियाँ माल खज़ाने, बधिया बैल चराई।
जबही काल कै डंडा बाजे, खोज खबरि नहिँ पाई ॥१॥
ऐसी भगति करौ घट भीतर, छोड़ कपट चतुराई।
सेवा बँदगी अरु अधीनता, सहज मिलैँ गुरु आई ॥२॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु बात बताई।
यह दुनियाँ दिन चार दहाड़े, रहो अलख लौ लाई ॥३॥

॥ शब्द ३० ॥

मन न रँगाये रँगाये जोगी कपड़ा ॥टेक॥
आसन मारि मन्दिर मेँ बैठे।
नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा ॥१॥
कनवाँ फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलै।
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैलै बकरा ॥२॥

जंगल जाइ जोगी धुनिया रमौलै ।
काम जराय जोगी होइ गैलै हिजरा ॥३॥
मथवा मुड़ाय जोगी कपरा रँगौलै ।
गीता बाँचि के होइ गैलै लबरा ॥४॥
कहहि कबीर सुनो भाई साधो ।
जम दरवजवाँ बाँधल जैबै पकरा ॥५॥

॥ शब्द ३१ ॥

मन को न तौल्यौ तो का तौल्यौ बनियाँ ॥टेक॥
काहे की पूँजी काहे का सौदा, काहे की कैले दुकनियाँ।
काहे की डाँड़ी काहे का पलरा, काहे की मारौ टेनियाँ ॥१॥
करम की पूँजी धरम का सौदा, चित की कैले दुकनियाँ ।
या तन कै जो डाँड़ी पलरा, प्रेम की मारै टेनियाँ ॥२॥
काया नगर के हाट मँ रे, ऊँची कैले दुकनियाँ ।
कैसन तोरी सोँठ औ आदी, कैसन तोरी धनियाँ ॥३॥
पकरि पैहैँ बजार के बाहर, फँक देहैँ तोरी दुकनियाँ ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, छाड़ि दे तन की लदनियाँ ॥४॥

॥ शब्द ३२ ॥

निज बैपारी नाम का हाटै चलु भाई ॥टेक॥
साध संत गहकी भये, गुरु हाट लगाई ।
सार सबद कछु बस्तु है, सौदा करु भाई ॥१॥
भाव खुला पँच रंग का, बहु करत दलाली ।
जा के हाथ बिबेक है, करि देत सवाई ॥ २ ॥
पाप पुन्न पलरा भये, सूरत भइ डाँड़ी ।
ज्ञान दुसेरा डारि कै, पूरा करु आई ॥ ३ ॥
करि सौदा घर को चले, रोका दरबानी ।
लेखा दे निज नाम का, कहँ का बैपारी ॥ ४ ॥

पानी सो बानी वही, गुरु छाप दिखाई ।
इतना सुन कायल भये, जम सीस नवाई ॥ ५ ॥
संत चले सतलोक को, छोड़ा संसारी ।
कुंदन भये दरबार में, प्रभु नजर गुजारी ॥ ६ ॥
कहै कबीर बैठो सही, सिख लेहु हमारी ।
काल कलप ब्यापै नहीं, इहै नफा तुम्हारी ॥ ७ ॥

॥ शब्द ३३ ॥

कर गुजरान गरीबी से, मगरूरी किस पर करता है ॥१॥
गीदी काया देख भुलाया, दीनन से क्यों डरता है ॥२॥
जगत पुकारै कूका मारै, हो हो कहि कर हलता है ॥३॥
रूह जलाली करत हलाली, क्यों दोजख आगी जलता है ॥४॥
खाय खुराका पहिन पुसाका, जम का बकरा पलता है ॥५॥
जम बदजाती तोड़ै छाती, क्यों नहिं उससे डरता है ॥६॥
तजि अभिमाना सीखो ज्ञाना, सतगुरु संगत तरता है ॥७॥
कहै कबीर कोइ बिरला हंसा, जीवत ही जो मरता है ॥८॥

॥ शब्द ३४ ॥

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई ॥टेक॥
किरिया कर्म अचार मैं छाड़ा, छाड़ा तिरथ का न्हाना ।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना ॥१॥
ना मैं जानूँ सेव बंदगी, ना मैं घंट बजाई ।
ना मैं मूरत धरी सिंघासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई ॥२॥
जो यह मूरत मुख से बोलै, कर असनान न्हवाई ।
पाँच टका हौं देत ठठेरे, एकहि हौं लै आई ॥३॥
ना हरि रीझै जप तप कीन्हे, ना काया के जारे ।
ना हरि रीझै धोती छाड़े, ना पाँचो के मारे ॥४॥

दाया राखि धरम को पालै, जग से रहै उदासी ।
अपना सा जिव सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी ॥५॥
सहै कुसबद बाद को त्यागै, छाड़ै गर्व गुमाना ।
सत्तनाम ताही को मिलिहै, कहै कबीर सुजाना ॥६॥

॥ शब्द ३५ ॥

साधो भजन भेद है न्यारा ॥टेक॥
का माला मुद्रा के पहिरे, चंदन घसे लिलारा ।
मूँड़ मुड़ाये सिर जटा रखाये, अंग लगाये छारा ॥१॥
का पानी पाहन के पूजे, कंदमूल फरहारा ।
कहा नेम तीरथ ब्रत कीन्हे, जो नहिं तत्व बिचारा ॥२॥
का गाये का पढ़ि दिखलाये, का भरमे संसारा ।
का संध्या तरपन के कीन्हे, का षट कर्म अचारा ॥३॥
जैसे बधिक ओट टाटी के, हाथ लिये बिख[1] चारा ।
ज्यौं बक ध्यान धरै घट भीतर, अपने अंग बिकारा ॥४॥
दै परचे स्वामी ह्वै बैठे, करैं बिषय ब्योहारा ।
ज्ञान ध्यान को मरम न जानैं, बाद करैं निःकारा ॥५॥
फूँके कान कुमति अपने से, बोझि लियो सिर भारा ।
बिन सतगुरु गुरु केतिक बहिगे, लोभ लहर की धारा ॥६॥
गहिर गँभीर पार नहिं पावै, खंड अखंड से न्यारा ।
दृष्टि अपार चलब को सहजै, कटै भरम कै जारा[2] ॥७॥
निर्मल दृष्टि आतमा जा की, साहिब नाम अधारा ।
कहै कबीर तेही जन आवै, मैं तैं तजै बिकारा ॥८॥

॥ शब्द ३६ ॥

साधो करता कर्म तें न्यारा ।
आवै न जावै मरै नहिं जीवै, ता को करै बिचारा ॥१॥

---

(१) विशिख का अपभ्रंश जिसका अर्थ "बान" है । (२) जाल ।

राम को पिता जो जसरथ कहिये, जसरथ कौने जाया।
जसरथ पिता राम को दादा, कहो कहाँ तेँ आया ॥२॥
राधा रुकमिन किसन की रानी, किसन दोऊ को मीरा।
सोलह सहस गोपी उन भोगी, वह भयो काम को कीरा ॥३॥
बासुदेव पितु मात देवकी, नंद महर घरि आयो।
ता को करता कैसे कहिये, (जो) करमन हाथ बिकायो ॥४॥
जा के धरनि गगन है सहसैं[1], ता को सकल पसारा।
अनहद नाद सबद धुनि जा के, सोई खसम हमारा ॥५॥
सतगुरु सबद हृदय दृढ़ राखो, करहु बिबेक बिचारा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, है सतपुरुष अपारा ॥६॥

॥ शब्द ३७ ॥

अनगढ़िया देवा, कौन करै तेरी सेवा ॥टेक॥
गढ़े देवा को सब कोइ पूजै, नित ही लावै सेवा।
पूरन ब्रम्ह अखंडित स्वामी, ता को न जानै भेवा ॥१॥
दस औतार निरंजन कहिये, सो अपनो ना होई।
यह तो अपनी करनी भोगैँ, करता औरहि कोई ॥२॥
ब्रम्हा बिस्नु महेसुर कहिये, इन सिर लागी काई।
इनहिँ भरोसे मत कोइ रहियो, इन हूँ मुक्ति न पाई ॥३॥
जोगी जती तपी सन्यासी, आप आप मेँ लड़िया।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सबद लखै सोइ तरिया ॥४॥

---

(१) हज़ारोँ।

सतगुरु महिमा

॥ शब्द १ ॥

जग में गुरु समान नहिं दाता ॥टेक॥
वस्तु अगोचर दइ सतगुरु ने, भली बताई बाटा।
काम क्रोध कैद करि राखे, लोभ को लीन्ह्यो नाथा ॥१॥
काल्ह करै सो हाल हि करि ले, फिर न मिलै यह साथा।
चौरासी में जाइ पड़ोगे, भुगतो दिन और राता ॥२॥
सबद पुकार पुकार कहत है, करि ले संतन साथा।
सुमिर बंदगी कर साहिब की, काल नवावै माथा ॥३॥
कहै कबीर सुनो हो धर्मन, मानो बचन हमारा।
परदा खोलि मिलो सतगुरु से, आवो लोक दयारा[1] ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

साधो सो सतगुरु मोहिं भावै।
सत्त नाम का भरि भरि प्याला, आप पिवै मोहिं प्यावै ॥१॥
मेले जाय न महँत कहावै, पूजा भेंट न लावै।
परदा दूरि करै आँखिन को, निज दरसन दिखलावै ॥२॥
जा के दरसन साहिब दरसै, अनहद सबद सुनावै।
माया के सुख दुख करि जानै, संग न सुपन चलावै ॥३॥
निसि दिन सतसंगत में राचै, सब्द में सुरत समावै।
कहै कबीर ता को भय नाहीं, निर्भय पद परसावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

बलिहारी जाउँ मैं सतगुरु के, मेरा दरस करत भ्रम भागा ॥१॥
धर्मराय से तिनुका तोड़ा, जम दुसमन से दूर किया ॥२॥
सब्द पान परवाना दीया, काग करम तजि हंस किया ॥३॥

---

(१) दयाल या निर्मल चेतन्य देश।

गुरु की मिहर से अगम निगम लखि, बिन गुरु कोई न मुक्त भया ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आवागवन से राखि लिया ॥५॥

॥ दोहा ॥

कबीर फकीरी अजब है, जो गुरु मिलै फकीर ।
संसय सोक निवारि के, निरमल करै सरीर ॥

॥ शब्द ४ ॥

संत जन करत साहिबी तन मेँ ॥ टेक ॥
पाँच पचीस फौज यह मन की, खेलैँ भीतर तन मेँ ।
सतगुरु सबद से मुरचा काटो, बैठो जुगत के घर मेँ ॥१॥
बंकनाल का धावा करिके, चढ़ि गये सूर गगन मेँ ।
अष्ट कँवल दल फूल रह्यो है, परखे तत्त नजर मेँ ॥२॥
पच्छिम दिसि की खिड़की खोलो, मन रहै प्रेम मगन मेँ ।
काम क्रोध मद लोभ निवारो, लहरि लेहु या तन मेँ ॥३॥
संख घंट सहनाई बाजै, सोभा सिंध महल मेँ ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अजर साहिब लख घट मेँ ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

जब कोइ रतन पारखी पैहै, हीरा खोल भँजैहै ॥ टेक ॥
तन को तुला सुरत को पलरा, मन को सेर बनैहै ।
मासा पाँच पचीस रती को, तोला तीन चढ़ैहै ॥१॥
अगम अगोचर बस्तु गुरू की, लै सराफ पै जैहै ।
जहँ देख्यो संतन की महिमा, तहवाँ खोलि भँजैहै ॥२॥
पाँच चोर मिलि घुसे महल मेँ, इन से बस्तु छिपैहै ।
जम राजा के कठिन दूत हैँ, उन से आप बचैहै ॥३॥
दया धरम से पार उतरिहै, सहज परम पद पैहै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, हीरा गाँठि लगैहै ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

साचे सतगुरु की बलिहारी, जिन यह कुंजी कुफल उघारी ॥१
नख सिख साहिब है भरपूर, सो साहिब क्यों कहिये दूर ॥२
सतगुरु दया अमी रस भींजै, तन मन धन सब अर्पन कीजे ॥३॥
कहै कबीर संत सुखदाई, सुख सागर इस्थिर घर पाई ॥४॥

॥ शब्द ७ ॥

वारी जाउँ मैं सतगुरु के, मेरा किया भरम सब दूर ॥टेक॥
चंद चढ़ा कुल आलम देखै, मैं देखूँ भ्रम दूर ॥१॥
हुआ प्रकास आस गइ दूजी, उगिया निरमल नूर ॥२॥
माया मोह तिमिर सब नासा, पाया हाल हजूर ॥३॥
विषय विकार लार[1] है जेता, जारि किया सब धूर ॥४॥
पिया पियाला सुधि बुधि बिसरी, हो गया चकनाचूर ॥५॥
हूआ अमर मरै नहिं कबहूँ, पाया जीवन मूर ॥६॥
बंधन कटा छूटिया जम से, किया दरस मंजूर ॥७॥
ममता गई भई उर समता, दुख सुख डारा दूर ॥८॥
समझे बनै कहे नहिं आवै, भयो आनँद भरपूर ॥९॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बजिया निरमल तूर ॥१०॥

॥ शब्द ८ ॥

सतगुरु चीन्हो रे भाई ।
सत्तनाम बिन सब नर बूड़े, नरक पड़ी चतुराई ॥१॥
वेद पुरान भागवत गीता, इन को सबै दृढ़ावै ।
जा को जनम सुफल रे प्रानी, सो पूरा गुरु पावै ॥२॥
बहुत गुरू संसार कहावैं, मंत्र देत हैं काना ।
उपजैं बिनसैं या भौसागर, मरम न काहू जाना ॥३॥

---

(१) साथ—एक लिपि में "रार" (झगड़ा) है ।

सतगुरु एक जगत मैँ गुरु हैँ, सो भव से कढ़िहारा ।
कहै कबीर जगत के गुरुवा, मरि मरि लैँ औतारा ॥४॥

॥ शब्द ९ ॥

सतगुरु साह संत सैादागर, तहँ मैँ चलि के जाऊँ जी ॥टेक
मन की मुहर धरैाँ गुरु आगे, ज्ञान कै घोड़ा लाऊँ जी ।
सहज पलान चित्त कै चाबुक, अलख लगाम लगाऊँ जी ॥१
बिबेक बिचार भरे तिर[1] तरकस, सुरत कमान चढ़ाऊँ जी ।
धीर गँभीर खड़्ग लिये दल मल, माया कैकोट ढहाऊँजी ॥२
रिपु कै दल मैँ सहजहि रैाँदैाँ, आनँद तबल बजाऊँ जी ।
कहै कबीर मेरे सिर पर साहिब, ता को सीस नवाऊँ जी ॥३॥

॥ शब्द १० ॥

सुन सतगुरु की बानी लो ।
ताहि चीन्ह हम भये बैरागी, परिहर कुल की कानी लो ॥१
तब हम बहुतक दिन लैाँ अटके, सुन सुन बात बिरानी लो ।
अब कुछ समझ पड़ी अंतरगत, आदि कथा परमानी लो ॥२
मनमति गई प्रगट भइ सम गति, रमता से रुचि मानी लो ।
लालच लोभ मोह ममता की, मिट गइ एँचा तानी लो ॥३॥
चंचल तैँ मन निस्चल कीन्हा, सुरत निरत ठहरानी लो ।
कहै कबीर दया सतगुरु तैँ, लखो अटल रजधानी लो ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

हमरे सत्तनाम धन खेती ॥टेक॥
मन कै बैल सुरत हरवाहा, जब चाहै तब जोती ॥१॥
सत्तनाम का बीज बोवाया, उपजै हीरा मोती ॥२॥
उन खेतन मैँ नफा बहुत है, संतन लूटा सैँती ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, उलटि पलटि नर जोती ॥४॥

---

(१) तीर ।

॥ शब्द १२ ॥

सतगुरु सोई दया करि दीन्हा, तातैं अनचिन्हार मैं चीन्हा॥
बिन पग चलना बिन पर उड़ना, बिना चुंच का चुगना।
बिना नैन का देखन पेखन, बिन सरवन का सुनना ॥१॥
चंद न सूर दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लाई।
बिना अन्न अमृत रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई ॥२॥
जहाँ हरष तहँ पूरन सुख है, यह सुख का से कहना।
कहै कबीर बल बल सतगुरु को, धन्य सिष्य का लहना[1] ॥३

॥ शब्द १३ ॥

मेरे सतगुरु पकड़ो बाँह, नहीं तो मैं बहि जाता ॥टेक
करम काटि कोइला किया, ब्रम्ह अगिनि परिचार।
लोभ मोह भ्रम जारिया, सतगुरु बड़े दयार ॥ १ ॥
कागा से हंसा किया, जाति बरन कुल खोय।
दया दृष्टि से सहज सब, पातक डारे धोय ॥ २ ॥
अज्ञानी भटकत फिरै, जाति बरन अभिमान।
सतगुरु सबद सुनाइया, भनक पड़ी मेरे कान ॥ ३ ॥
माया ममता तजि दई, बिषया नाहिं समाय।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, हद तजि बेहद जाय ॥४॥

॥ शब्द १४ ॥

सब जग रोगिया हो, जिन सतगुरु वैद न खोजा ॥१॥
सीखा सीखी गुरमुख हूआ, किया न तत्त बिचारा ॥२॥
गुरु चेला दोउन के सिर पै, जम मारै पैजारा ॥ ३ ॥

---

(१) भाग।

झूठे गुरु को सब कोइ पूजै, साचे ना पतियाई ॥ ४ ॥
अंधे बाँह गही अंधे की, मारग कौन दिखाई ॥ ५ ॥

॥ शब्द १५ ॥

गुरु रँग लागा सत रँग लागा, मेरे मन का संसय भागा ॥टेक
जब हम रहली हठिल[1] दिवानी, तब पिय मुखहु न बोले ।
जब दासी भइ खाक बराबर, साहिब अंतर खोले ॥१॥
साचे मन तैं साहिब नेरे, झूठे मन तैं भागा ।
भक्त जनन अस साहिब मिलनो, [जस]कंचन संग सुहागा॥२
लोक लाज कुल की मर्जादा, तोरि दियो जस धागा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, भाग हमारा जागा ॥ ३ ॥

॥ शब्द १६ ॥

जाकै रहनि अपार जगत मैं, सो गुरु नाम पियारा हो ॥टेक
जैसे पुरइनि[2] रहि जल भीतर, जलहि में करत पसारा हो।
वा के पानी पत्र न लागै, ढरकि चलै जस पारा हो ॥१॥
जैसे सती चढ़ै सत ऊपर, स्वामी बचन न टारा हो ।
आप तरै औरन को तारै, तारै कुल परिवारा हो ॥ २ ॥
जैसे सूर चढ़ै रन ऊपर, पाछे पग नहिं डारा हो ।
वा की सुरत रहै लड़ने मैं, प्रेम मगन ललकारा हो ॥३॥
भवसागर इक नदी अगम है, लख चौरासी धारा हो ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, बिरले उतरे पारा हो ॥४॥

॥ शब्द १७ ॥

धन सतगुरु जिन दियो उपदेस, भव बूड़त गहि राखे केस॥१॥
साकित से गुरु अपना किया, सत्त नाम सुमिरन को दिया॥२
जाति बरन कुल करम नसाया, साध मिले जब साध कहाया३

(१) हठीली । (२) कोईं ।

पारस परसे कंचन होई, लोहा वाहि कहै नहिँ कोई ॥४॥
पारस को गुन देखो आय, लोहा महँगे मोल बिकाय ॥ ५ ॥
स्वाँति बूँद कदली मेँ परै, रूप बरन कछु औरहि धरै ।।६।।
नाम कपूर बासना[1] होई, कदली वा को कहै न कोई ॥७॥
निसि दिन सुमिरो एकै नाम, जा सुमिरे तेरो झट हो काम ॥८
कहै कबीर यह साचो खेल, फूल तेल मिलि भयो फुलेल ॥९

॥ शब्द १८ ॥

सतगुरु सबद सहाई ॥ टेक ॥
निकटि गये तन रोग न व्यापै, पाप ताप मिटि जाई।
अठवन पठवन दीठि न लागै, उलटे तेहि धरि खाई॥१॥
मारन मोहन उचाटन बसिकरन, मनहिँ माहिँ पछिताई ।
जादू जंतर जुक्ति भुक्ति नहिँ, लागे सबद के बान ठहाई ॥२
ओझा डाइनि डर से डरपैँ, जहर जूड़[2] हो जाई ।
बिषधर[3] मन मेँ करि पछितावा, बहुरि निकट नहिँ आई ॥३
जहँ तक देवी काली के गुन, संत चरन लौ लाई ।
कह कबीर काटो जम फंदा, सुकृती लाख दुहाई ॥ ४ ॥

॥ शब्द १९ ॥

पिया मोरा मिलिया सत्त गियानी ॥ टेक ॥
सब मेँ व्यापक सब से न्यारा, ऐसा अंतरजामी ।
सहज सिंगार प्रेम का चोला, सुरत निरत भरि आनी ॥१॥

---

(१) सुगंधि । (२) ठढा । (३) साँप ।

सील संतोष पहिरि दोउ सत गुन, हो रहि मगन दिवानी ।
कुमति जराइ करौं मैं कोइला, पढ़ी प्रेम रस बानी ॥२॥
ऐसा पिय हम कबहु न देखा, सूरत देखि लुभानी ।
कहै कबीर मिला गुरु पूरा, तन की तपन बुझानी ॥३॥

॥ शब्द २० ॥

अवधू कुदरत की गति न्यारी ।
रंक निवाज करै वह राजा, भूपति करै भिखारी ॥ १ ॥
जा से लैांग गाछ फर लागै, चंदन फूलन फूला ।
मच्छ सिकारी रमै जँगल मैं, सिंह समुंदर भूला ॥ २ ॥
रैंड रूख भयौ मलयागिरि, चहुँ दिसि फूटै बासा ।
तीनि लोक ब्रह्मंड खंड मैं, अँधरा देखि तमासा ॥ ३ ॥
पँगुला मेरु सुमेरु उड़ावै, त्रिभुवन माहीं डोलै ।
गूँगा ज्ञान बिज्ञान प्रकासै, अनहद बानी बोलै ॥ ४ ॥
पतालै बाँध अकासै पठवै, सेस स्वर्ग पर राजै ।
कह कबीर समरथ है स्वामी, जो कछु करै सो छाजै ॥५॥

॥ शब्द २१ ॥

है सब मैं सब ही तैं न्यारा ॥ टेक ॥
जीव जंतु जल थल सब ही मैं, सबद बियापत बोलनहारा ॥१
सब के निकट दूर सब ही तैं, जिन जैसा मन कीन्ह बिचारा॥२
सार सबद को जो जन पावै, सो नहिं करत नेम आचारा ॥३
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सबद गहै सो हंस हमारा ॥४

॥ शब्द २२ ॥

होइहै कस नाम बिना निस्तारा ॥ टेक ॥
देवी देवा भूतल पूजा, आतम नाम बिसारा ।
वेस्या के पुत्र पितु कौन से कहिहै, ऐसो ही संसारा ॥१॥

कंचन मेरु सुमेरु लैाँ द्रव्य, दीजै दान अपारा।
जो जस देइ सो तैसे पावै, मुक्ति भेद है न्यारा ॥२॥
नामहि नौका या जग माहीं, जा चढ़ि उतरै पारा।
ज्ञान की कड़िया सतगुरु करि ले, खेइ लगा दँ पारा ॥३॥
सतगुरु चीन्हि चरन चित लावो, उतरौ भैाजल पारा।
नाम बराबर और न दूजा, कहै कबीर पुकारा ॥४॥

॥ शब्द २३ ॥

अँखियाँ लागि रहन दे। साधो, हिरदे नाम सम्हारा।
रीझै बूझै साहिब तेरा, कौन पड़ा है द्वारा ॥ १ ॥
जम जालिम के सब डर मिटिगे, जा दिन दृष्टि निहारा।
जब सतगुरु ने किरपा कीन्हो, लीन्ह्यो आप उबारा ॥२॥
लख चैारासी बंधन छूटे, सदा रहै गुरु संगी।
प्रेम पियाला हर दम पीवै, सदा मस्त बैारंगी ॥३॥
जब लग बस्तु पिछाने नाहीं, तब लग झूठी आसा।
झिलमिलि जोति लखे कोइ गुरुमुख, उनमुनि घर के बासा४
सब को दृष्टि पड़ै अविनासी, बिरला संत पिछानै।
कहै कबीर यह भर्म किवाड़ी, जो खोलै सो जानै ॥५॥

॥ शब्द २४ ॥

मन मैल न जाय कैसे कै धोवैाँ ॥टेक॥
गाँव गड़हिया मैँ गादड़[1] पानी, धुबिया रसिया गुदरी पुरानी ॥१॥
बालू रेहिया साबुन घोट, बहै बयार कछु मिलै न ओट ॥२

(१) गदला।

सतगुरु घटिया सौंदन होइ, साधू संगति मिलि ले धोइ ॥३
कहै कबीर या गुदरी के भाग, मिलि गैल सतगुरु छुटि गैलैं दाग ॥४

॥ शब्द २५ ॥

कोइ कुच्छ कहै कोइ कुच्छ कहै, हम अटके हैं जहँ अटके हैं १
सुरत कमल पर अमल किया, महबूब के नाम से मटके हैं २
संसार बिचार के छोड़ दिया, हम इसी बात पै सटके हैं ॥३
दास कबीर के झूलने मैं, सब पंडित काजी फटके हैं ॥४

चितावनी ।

॥ शब्द १ ॥

परमातम गुरु निकट बिराजै, जागु जागु मन मेरे ॥टेक॥
धाइ के सतगुरु चरनन लागौ, काल खड़ा सिर तेरे ।
छिन छिन पल पल सबहि सँघारै, बहु बिधि देत न देरे ॥१॥
जुगन जुगन तोहि सोवत बीता, अजहुँ न जागु सबेरे ।
काम क्रोध मद लोभ फंद तजि, छिमा दया दिल हेरे ॥२॥
भाई बंधु कुटम्ब कबीला, सब स्वारथ के चेरे ।
जब जम जाल मैं आनि पकरि है, कोइ न संग चले रे ॥३॥
भौसागर बाँकी[1] है धारा, लख चौरासी फेरे ।
कहै कबीर सुनो हो साधो, जग से किये निबेरे ॥ ४ ॥

॥ शब्द २ ॥

जाग पियारी अब का सोवै, रैन गई दिन काहे को खोवै ॥१
जिन जागा तिन मानिक पाया, तैं बौरी सब सोइ गँवाया २

---

(१) टेढ़ी, कड़ी ।

पिय तेरे चतुर तु मूरख नारी, कबहुँ न पिया की सेज सँवारी ॥३॥
तैं बौरी बौरापन कीन्ह्यो, भर जोबन पिय अपन न चीन्ह्यो ॥४॥
जागु देखु पिय सेज न तेरे, तोहि छाड़ि उठि गये सवेरे ॥५
कहै कबीर सोई धन जागै, सबद बान उर अंतर लागै ॥६

॥ शब्द ३ ॥

जतन बिन मिरगन खेत उजाड़े ॥ टेक ॥
पाँच मिरग पच्चीस मिरगनी, तिन मैं तीन चितारे[1] ।
अपने अपने रस के भोगी, चुगते न्यारे न्यारे ॥ १ ॥
पाँच डार सूटन[2] की आई, उतरे खेत मँझारे ।
हा हा करत बाल ले भागे, टेरि रहे रखवारे ॥२॥
सुनियो रे हम कहत सबन को, ऊँचे हाँक हँकारे ।
यह नर देह बहुरि नहिँ पैहो, काहे न रहत सँभारे ॥३॥
तन कर खेती मन कर बाड़ी, मूल सुरत रखवारे ।
ज्ञान बान और ध्यान धनुष करि, क्यौं नहिँ लेत सँघारे[3] ॥४
सार सबद बन्दूख सुरत धरि, मारे तीन चितारे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, उबरे[4] खेत तिहारे ॥५॥

॥ शब्द ४ ॥

सृष्टि गई जहँड़ाय,[5] दृष्टि करि देखि ले ॥ टेक ॥
चीन्हो करो बिचार, दयानिधि कहाँ बिराजैं ।
कहाँ पुरुष कै देस, कहाँ बैठे बिलगाजैं ॥
जब लगि नैन न देखिये, तब लगि हिय न जुड़ाय ।
जल बिन मीन कंथ बिन बिरहिनि, तलफि तलफि जिय जाय ॥१

(१) चितकबरे, चीतल । (२) तोता । (३) मार लेना । (४) बच गये । (५) ठगाय ।

बाढ़े बिरह बिरोग, रोग काहू ना चीन्हा ।
घर घर बाढ़े बैद, रोग अधिका रचि दीन्हा ॥
बिरह बिरोग कैसे मिटै, कैसे तपन बुझाय ।
बैद मिलै जब औषदी, जिय कै भरम नसाय ॥२॥
औरौ कहूँ बताय सुनो, परपंच कै फंदा ।
पूजैं भूत पिसाच, काल घर करैं अनंदा ॥
एकादसी निर्जल रहैं, भगता सुनैं पुरान ।
बकरा मारि माँस कै भोजन, ऐसे चतुर सुजान ॥३॥
अरे निपट चंडाल, महा पापी अपराधी ।
बिना दया अज्ञान, काया काहे नहिं साधी ॥
तोहिं अस निगुरा बहुत फिरत हैं, मन मैं करैं गुमान ।
कहै कबीर जो सबद से बिछुड़े, ता को नरक निदान ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

चार दिन अपनी नौबत चले बजाइ ॥टेक॥
उतानै खटिया गड़िले मटिया, संग न कछु ले जाइ ॥१॥
देहरी बैठी मेहरी रोवै, द्वारे लैाँ सँग माइ ॥२॥
मरघट लैाँ सब लोग कुटुँब मिलि, हंस अकेला जाइ ॥३॥
वहि सुत वहि बित वहि पुर पाटन, बहुरि न देखै आइ ॥४॥
कहत कबीर भजन बिन बंदे, जनम अकारथ जाइ ॥५॥

॥ शब्द ६ ॥

कहा नर गरबस[१] थोरी बात ।
मन दस नाज़ टका चार गाँठी, ऐँड़ो टेढ़ो जात ॥१॥

---

(१) शेख़ी करता है ।

बहुत प्रताप गाँव से पाये, दुइये टका बरात[१]।
दिवस चारि कै करो साहिबी, जैसे बन हर पात[२] ॥१॥
ना कोऊ लै आयो यह धन, ना कोऊ लै जात।
रावन हूँ से अधिक छत्रपति, छिन मैं गये बिलात ॥३॥
मैं उन संत सदा थिर पूजौं, जो सतनाम जपात।
जिन पर कृपा करत हैं सतगुरु, ते सतसंग मिलात ॥४॥
मात पिता बनिता सुत संपति, अंत न चलत सँगात।
कहत कबीर संग कर सतगुरु, जनम अकारथ जात ॥५॥

॥ शब्द ७ ॥

रतन जतन करि प्रेम कै तत धरि,
सतगुरु इमरित[३] नाम, जुगत कै राखब रे ॥१॥
बाबा घर रहलौं बबुई कहैलौं,
सैयाँ घर चतुर सयान, चेतब घरवा आपन रे ॥२॥
खेलत रहलैाँ मैं सुपली मौनिया,[४]
औचक आये लेनिहार, चलब केसिया[५] झारि रे ॥३॥
एक तो अँधेरी राती, चोरवा मुसल थाती[१],
सैयाँ कै बान कुबान, सुतल गोड़वा तानि रे ॥ ४ ॥
चुनि चुनि कलियाँ मैं सेजिया बिछैालैाँ,
बिना रे पुरुषवा कै नारि, झँखैले दिनवा राति रे ॥५॥
ताल झुराइ गैले फूल कुम्हिलाय गैले,
ऊड़त हंसा अकेल, कोई नहिं देखल रे ॥ ६ ॥

---

(१) पूँजी। (२) हरा पत्ता। (३) अमृत। (४) बालकों के खेलने के नन्हे २ सूप मौनी। (५) बाल।

अब का झँखेलु नारि, बैठलु मन मारि,
यहि बाटे मोतिया हेराल[1] रे ॥ ७ ॥
दास कबीर इहै गावै निरगुनवाँ,
अब की उहवाँ जाव, तो फिरि नहिं आउब रे ॥८॥

॥ शब्द ८ ॥

मोर बनिजरवा लादे जाय, मैं तो देखहु न पौल्यौं ॥टेक
करम कै सेर धरम कै पलरा, बैल पचीस लदाय ।
भूल गई है सुमारग पैंड़ा, कोइ नहिं देत बताय ॥ १ ॥
माया पापिन गर्बिया, बिपति न कहिये रोय ।
जो माया होती नहीं, बिपति कहाँ से होय ॥२॥
माया काली नागिनी, जिन डसिया संसार ।
एक डस्यौ ना साध जन, जिन के नाम अधार ॥३॥
मंगन से क्या माँगिये, बिन माँगे जो देय ।
कहै कबीर मैं हौं वाही को, होनी होय सो होय ॥४॥

॥ शब्द ९ ॥

खलक सब रैन का सपना। समझ मन कोइ नहीं अपना ॥१
कठिन है मोह की धारा । बहा सब जात संसारा ॥२॥
घड़ा ज्यों नीर का फूटा । पत्र ज्यों डार से टूटा ॥३॥
ऐसे नर जात जिंदगानी । अजहुँ तौ चेत अभिमानी ॥४॥
निरखि मत भूल तन गोरा । जगत में जीवना थोरा ॥५॥
तजो मद लोभ चतुराई । रहो निःसंक जग माहीं ॥६॥
सजन परिवार सुत दारा । सभी इक रोज है न्यारा ॥७॥
निकसि जब प्रान जावैंगे । कोई नहिं काम आवैंगे ॥८॥
सदा जिनि जान यह देही । लगा ले नाम से नेही ॥९॥
कहत कब्बीर अबिनासी । लिये जम काल को फाँसी ॥१०

(१) खोगया।

॥ शब्द १० ॥

हिरवा भुलाय ससुरे जालू वारी धनियाँ ॥ टेक ॥
कौने तन तोरा कौने मन है, कौने वेद तुम जनियाँ।
कौन पुरुष कै ध्यान धरतु हौ, कौने नाम निसनियाँ ॥१॥
काया तन ओंकार मन है, सूच्छम वेद हम जनियाँ।
सत्तपुरुष कै ध्यान धरतु हैं, और सतनाम निसनियाँ ॥२॥
ई मत जानो हिरवा जिरवा, वनिया हाट विकनियाँ।
ई हिरवा अनमोल रतन है, अनहुन देस तें अनियाँ ॥३॥
आयो चोर सबन के मुसलस, राजा रैयत रनियाँ।
लाखन में कोइ बिरले बाचिगे, जिनके अलख लखनियाँ॥४
काया नगर इक अजब वृच्छ है, साखा पत्र तेहि झरियाँ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पावै बिरले टिकनियाँ ॥५॥

॥ शब्द ११ ॥

दुनिया झामर झूमर अरुझो ॥ टेक ॥
अपने सुत कै मुँड़न करावै, छूरा लगन न पावै।
अजया[1] कै चिंगना धरि मारै, तनिकौ दया न आवै ॥१॥
लैके तेगा चला बाँकुरा,[2] अजया कै सिर काटा।
पूजा रही सो मालिन लै गइ, कूकुर मूरत चाटा ॥ २ ॥
माटी कै चौतरा बनाइन, कुत्ता मुत मुत जाई।
जो देउता में सत्ती होती, कुत्ता धरि धरि खाई ॥ ३ ॥
गोबर लैके गौर बनाइन, पूजैं लोग लुगाई।
यह बोलै वह बोल न जानै, पानी में डुबकाई ॥ ४ ॥
सोने की इक मुरति बनाइन, पूजन को सब धाई।
बिपति पड़े गहने[3] धरि खाई, भल कीन्ह्यो सेवकाई ॥५॥

---

(१) बधिया किया हुआ बकरा। (२) बहादुर। (३) गिरवीं।

देबी जी कौ खस्सी भेड़ा, पीरन कौ नौ नेजा ।
उन साहिब को कुछ भी नाहीं, बाँह पकरि जिन भेजा ॥६॥
निरगुन आगे सरगुन नाचै, बाजै सोहँग तूरा ।
चेला के पाँव गुरू जो लागैं, यही अचम्भा पूरा ॥ ७ ॥
जाति बरन दूनौं हम देखा, झूठी तन की आसा ।
तीनौं लोक नरक मैं बूड़े, बाम्हन के बिस्वासा ॥ ८ ॥
रही एक की भइ अनेक की, बेस्या सहस भतारी ।
कहै कबीर केहि के सँग जरिहै, बहुत पुरुष की नारी ॥९॥

॥ शब्द १२ ॥

साधो ई मुर्दन कै गाँव ॥ टेक ॥

पीर मरे पैगम्बर मरिगे, मरिगे जिन्दा जोगी ।
राजा मरिगे परजा मरिगे, मरिगे बैद्य औ रोगी ॥१॥
चाँदौ मरिहै सुजौ मरिहैं, मरिहैं धरनि अकासा ।
चौदह भुवन चौधरी मरिहैं, इनहूँ कै का आसा ॥ २॥
नौ हू मरिगे दस हू मरिगे, मरिगे सहस अठासी ।
तैंतिस कोट देवता मरिगे, परिगे काल की फाँसी ॥३॥
नाम अनाम रहै जो सदही, दूजा तत्त न होई ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भटकि मरै मत कोई ॥४॥

॥ शब्द १३ ॥

अब कहँ चले अकेले मीता, उठि क्यौं करहुन घर की चेता ॥१
खीर खाँड़ घृत पिंड सँवारा, सो तन लै बाहर करि डारा ॥२
जेहि सिर रचिरचि बाँधिसु पागा, सो सिर रतन बिडारैं कागा ॥३॥
हाड़ जरै जस सूखी लकरी, केस जरै जस तृन की कूरी॥४
आवत संग न जात सँघाती,[1] कहाभये दल बाँधे हाथी ॥५॥

---

(१) साथी, संगी ।

माया के रस लेन न पाया, अंतर जम बिलार होइ धाया ॥६॥
कहै कबीर नर अजहुँ न जागा, जम को मुँगरा बरसन लागा ॥७॥

॥ शब्द १४ ॥

काया बौरी चलन प्रान काहे रोई ॥ टेक ॥
काया पाय बहुत सुख कीन्हो, नित उठि मलि मलि धोई।
सो तन छिया छार होइ जैहै, नाम न लेहै कोई ॥ १ ॥
कहत प्रान सुन काया बौरी, मोर तोर संग न होई।
तोहि अस मित्र बहुत हम त्यागा, संग न लीन्हा कोई ॥२॥
ऊसर खेत के कुसा मँगाये, चाँचर चवर[1] के पानी।
जीवत ब्रम्ह को कोई न पूजै, मुरदा के मेहमानी ॥ ३ ॥
सिव सनकादि आदि ब्रम्हादिक, सेस सहस मुख होई।
जो जो जनम लियो बसुधा[2] में, थिर न रहो है कोई ॥४॥
पाप पुन्य हैं जनम सँघाती, समुझ देखु नर लोई।
कहत कबीर अभिअंतर की गति, जानत बिरले कोई ॥५॥

॥ शब्द १५ ॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ॥टेक॥
ता दिन तेरे तन तरवर के, सबै पात झरि जैहैं ॥१॥
या देही को गर्ब न कीजै, स्यार काग गिध खैहैं ॥२॥
तन गति तीन बिष्ट किर्म ह्वै, नातर खाक उड़ैहैं[3] ॥३॥
कहँ वह नैन कहाँ वह सोभा, कहँ वह रूप दिखैहैं ॥४॥

---

(१) परती ज़मीन की छिछली तलैया। (२) पृथ्वी।

(३) मरने पर शरीर की तीन गति होती है—(१) लुटंत अर्थात जानवरों का आहार होकर विष्टा हो जाना, (२) गड़ंत अर्थात क़बर में गड़ कर कीड़े पड़ जाना, (३) फुकंत अर्थात जलकर राख हो जाना।

जिन लोगन तें नेह करतु है, तेई देखि घिनैहैं ॥ ५ ॥
घर के कहत सवेरे काढ़ो, भूत होय धरि खैहैं ॥ ६ ॥
जिन पूतन को बहु प्रतिपाल्यो, देवी देव मनैहैं ॥ ७ ॥
तेइ लै बाँस दियो खोपरी मैं, सीस फोरि बिखरैहैं ॥ ८ ॥
अजहूँ मूढ़ करै सतसंगत, संतन मैं कछु पैहै ॥ ९ ॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, आवागवन नसैहै ॥ १० ॥[१]

॥ शब्द १६ ॥

आपन काहे न सँवारै काजा ॥ टेक ॥
ना गुरु भगति साध की संगत, करत अधम निर्लाजा ।
मानुष जनम फेर नहिं पैहौ, सब जीवन मैं राजा ॥ १ ॥
पर नारी प्यारी करि जानै, सो नर नरक समाजा ।
जिनके पंथ भूलि गे भौंदू, करु चलने कै साजा ॥ २ ॥
इहाँ नहीं कोइ मीत तुम्हारा, मात पिता सुत आजा ।
ये हैं सब मतलब के साथी, काहे करत अकाजा ॥ ३ ॥
बृद्ध भये पर नाम भजतु हैं, निकसत सुरत अवाजा ।
टूटी खाट पुराना झिलँगा, पड़े रहो दरवाजा ॥ ४ ॥
ब्रम्हा बिस्नु महेस डिराने, सुनत काल कै गाजा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, चढ़िले नाम जहाजा ॥ ५ ॥

॥ शब्द १७ ॥

जनम तेरो धोखे मैं बीता जाय ॥ टेक ॥
माटी कै गोंद हंस बनिजारा, उड़ि गे पंछी बोलनहारा ॥ १ ॥
चार पहर धंधा मैं बीता, रैन गँवाय सुख सोवत खाट ॥ २ ॥
जस अंजुल जल छीजत देखा, तैसे झरिगे तरवर पात ॥ ३ ॥

---

(१) इस शब्द को कोई कोई सूरदास जी का बताते हैं पर हम ने इस को तीन लिपियों में जिन में से एक डेढ़सौ बरस से अधिक पुरानी है कबीर साहिब के नाम से पाया।

भौसागर मेँ केहि गुहरैवो, ऐँठी जीभ जम मारै लात ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, फिरि पछितैहो मल मल हाथ ॥५

॥ शब्द १८ ॥

गाफिल मन काहे बिसारत धनी ॥ टेक ॥

पानी के बुंद से काया प्रगट कियो, काया सुघर बनी ।
यह काया तोरे संग न जैहै, कीरति रहै बनी ॥ १ ॥
रामनगर मेँ बाजन बाजत, चादर लाल तनी ।
मारि मारि मुगदर प्रान निकासत, माथ मेँ भाल[1] हनी ॥२॥
धीरे धीरे पग धरो मुसाफिर, सीढ़ी है अधबनी ।
मन मेँ चिंता क्या करै बौरे, ना साहिब से बनी ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अब जो समुझ बड़ी ।
या घर से जब वा घर जैहो, लिखनी सूझि पड़ी ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

चेत सवेरे चलना बाट ॥ टेक ॥

मन माली तन बाग लगाया, चलत मुसाफिर को बिलमाया।
विष के लेडुवा देत खिलाई, लूट लीन्ह मारग पर हाट ॥१॥
तन सराय मेँ मन अरुझाना, भठियारिन के रूप लुभाना ।
निसि दिन वा से बचि के रहना, सौदा करु सतगुरु की हाट।२
मन के घोड़ा लियो बनाई, सुरत लगाम ताहि पहिराई ।
जुगति कै एड़ा दियौ लगाई, भौसागर कै चौड़ा पाट ॥३॥
जल्दी चेतौ साहिब सुमिरौ, दसौ द्वार जम घेरि लियौ है ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, अब का सोवै बिछाये खाट॥४।

---

(१) भाला ।

॥ शब्द २० ॥

नैहर से जियरा फाटि रे ॥ टेक ॥ ॥

नैहर नगरी अस कै बिगरी, ठग लागैं घर बाट रे ।
तनिक जियरवा मोर न लागै, तन मन बहुत उचाट रे ॥१॥
या नगरी मैं दस दरवाजा, बीच समुंदर पाट रे ।
कैसे कै पार उतरिहौ सजनी, अगम पंथ कौ घाट रे ॥२॥
अजब तरह का बना तँबूरा, तार लगे सौ साठ रे ।
खूँटी टूटि तार बिलगाना, कोऊ न पूछत बात रे ॥३॥
हँस हँस पूछै मातु पिता से, भोरै सासुर जाब रे ।
जो चाहैं सो वोही करिहैं, पत वाही के हाथ रे ॥४॥
न्हाय खोर[1] दुलहिन होय बैठी, जोहै[2] पिय की बाट रे ।
तनिक घुँघटवा दिखाव सखी री, आज सुहाग की रात रे ॥५॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पिया मिलन की आस रे ।
भोर होत बंदे याद करोगे, नींद न आवै खाट रे ॥६॥

॥ शब्द २१ ॥

जनमं सिरान भजन कब करिहौ ॥ टेक ॥

गर्भ वास मैं भगति कबूल्यौ, बाहर आय भुलान ॥ १ ॥
बालापन तो खेल गँवायौ, तरुनाई अभिमान ॥ २ ॥
वृद्ध भये तन काँपन लागा, सिर धुन धुन पछितान ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जम के हाथ बिकान ॥ ४ ॥

॥ शब्द २२ ॥

मेरा दिल सतगुरु से राजी ॥ टेक ॥

नंगे हि आवन नंगे हि जावन, झूठी रचिया बाजी ।
या दुनिया मैं जीवन थोरा, गरब करे सो पाजी ॥ १ ॥

---

(१) नहाय और सज कर । (२) निहारै ।

स्याही गई सपेदी आई, हो गया राज बिराजी ।
वेद पढ़ंते पंडित भूले, कतेब पढ़ंते काजी ॥ २ ॥
सार सबद से सुरत लगाई, मारा रावन[1] पाजी ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सतपुर नौबत बाजो ॥३॥

॥ शब्द २३ ॥

हमैं रे कोइ कातन देइ सिखाइ ॥ टेक ॥
कात ननदिया कात जिठनिया, कात परोसिन आइ ।
पिउनी पाँच पचीस रंग की, हम से कात न जाइ ॥१॥
ब्रम्हा काता बिसनू काता, नारद काता आइ ।
बिस्वामित्र बसिष्ट दोउ काता, तबहूँ न कात सिराइ ॥२॥
तन के काते का भया, जो मन हो कात न जाइ ।
टेकुवा साधन जो बनि आवै, महँगे मोल बिकाइ ॥३॥
बाला काता तरुना काता, बिरधै कात न जाइ ।
कहै कबीर तीनौं पन काता, चरखा धरा उठाइ ॥४॥

॥ शब्द २४ ॥

चलना है दूर मुसाफिर काहे सोवै रे ॥ टेक ॥
चेत अचेत नर सोच बावरे, बहुत नींद मत सोवै रे ।
काम क्रोध मद लोभ मैं फँसिगे, हो हुसियार उमिरि काहे खोवै रे ॥१॥
सिर पर माया मोह की गठरी, संग दूत तेरे होवै रे ।
सो गठरी तोरी बीच मैं छिनि गइ, मूड़ पकरि कहा रोवै रे ॥२॥
रस्ता तो वह दूर बिकट है, तजि चलब अकेला होवै रे ।
संग साथ तेरे कोइ न चलैगा, डगरिया काकै जोवै रे ॥३
नदिया गहिरी नाव पुरानी, केहि बिधि पार तू होवै रे ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, ब्याज के धोखे मूल मत खोवै रे ॥४

---

(१) मन ।

॥ शब्द २५ ॥

ससुरे का ब्यौहार, अनोखी बहू सीखि ले रे ॥टेक॥
पिया तुम्हारे रंग बिरंगे, तुम हो नार कुचाल ।
संग तुम्हारो कैसे निबहै, मूरख मूढ़ गँवार ॥ १ ॥
इत उत तकना छोड़ि दे बहुवा, अपने महल चढ़ि आव ।
अंतर झाड़ू देके सजनी, कूड़ा दूर बहाव ॥ २ ॥
ज्ञान ध्यान का गहना पहिरो, सुखमन सेज बिछाव ।
हँसि के प्रीतम आन मिलैंगे, दुबिधा दूरि बहाव ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो हो बहुवा, सतसंगत के। धाव ।
सार सब्द निरवार के रे, अमर लोक चलि आव ॥४॥

॥ शब्द २६ ॥

या जग अंधा मैं केहि समुझावोँ ॥ टेक ॥
इक दुइ होयँ उन्हैं समझावाँ ।
सबही भुलाना पेट के धन्धा (मैं केहि०) ॥१॥
पानी कै घोड़ा पवन असवरवा ।
ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा (मैं केहि०) ॥२॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा ।
खेवनहारा पड़िगा फंदा (मैं केहि०) ॥३॥
घर की बस्तु निकट नहिं आवत ।
दियना बारि के ढूँढ़त अंधा (मैं केहि०) ॥४॥
लागी आग सकल बन जरिगा ।
बिन गुरुज्ञान भटकिगा बन्दा (मैं केहि०) ॥५॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो ।
इक दिन जाइ लँगोटी झार बन्दा (मैं केहि०) ॥६॥

॥ शब्द २७ ॥

दुलहिनी तोहि पिय के घर जाना ॥ टेक ॥
काहे रोवो काहे गावो, काहे करत बहाना ॥ १ ॥
काहे पहिरो हरि हरि चुरियाँ, पहिरो नाम कै बाना ॥२॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बिन पिया नाहिं ठिकाना ॥३॥

॥ शब्द २८ ॥

तोर हीरा हिराइलबा किंचड़े में ॥ टेक ॥
कोई ढूँढ़ै पूरब कोई ढूँढ़ै पच्छिम, कोई ढूँढ़ै पानी पथरे में ॥१
सुर नर मुनि अरु पीर औलिया, सब भूलल बाड़ैं नखरे में ॥२
दास कबीर ये हीरा को परखैं, बाँधि लिहलैं जतन से अचरे में ॥३

॥ शब्द २९ ॥

काया सराय में जीव मुसाफिर, कहा करत उनमाद[1] रे।
रैन बसेरा करि ले डेरा, चला सबेरे लाद रे ॥ १ ॥
तन कै चोला खरा अमोला, लगा दाग पर दाग रे।
दो दिन की जिंदगानी में क्या, जरै जगत की आग रे ॥२॥
क्रोध केचुली उठी चित्त में, भये मनुष तें नाग रे।
सूझत नाहिं समुँद सुख सागर, बिना प्रेम बैराग रे ॥३॥
सरवन सबद बूझि सतगुरु से, पूरन प्रगटे भाग रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पाया अचल सुहाग रे ॥ ४॥

॥ शब्द ३० ॥

का लै जैबो, ससुर घर ऐबो ॥ टेक ॥
गाँव के लोग जब पूछन लगिहैं, तब तुम का रे बतैबो ॥१॥
खोल घुँघट जब देखन लगिहैं, तब बहुतै सरमैबो ॥२॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, फिर सासुर नहिं पैबो ॥३॥

---

(१) मस्ती।

॥ शब्द ३१ ॥

चल चल रे भँवरा[1] कवल पास। तेरी भँवरी बोलै अति उदास ॥१॥
चौज करत वहँ बार बार। तन बन फूल्यो डार डार ॥२॥
बनस्पती का लियो है भोग। सुख न भयो तन बढ़्यो रोग ३
दिवस चार के सुरँग फूल। तेहि लखि भँवरा रह्यो भूल ॥४॥
बनस्पती जब लागै आग। तब भँवरा कहाँ जैहौ भाग ॥५॥
पुहुप पुराने गये सूख। तब भंवरा लगि अधिक भूख ॥६॥
उड़ि न सकत बल गयो छूट। तब भँवरा रोवै सीस कूट ॥७॥
चहुँ दिसि चितवै भुँइ पड़ाय। अब ले चल भँवरी सिर चढ़ाय८
कहै कबीर ये मन के भाव। इक नाम बिना सब जम के दाव ॥९

॥ शब्द ३२ ॥

आयौ दिन गौने कै हो, मन होत हुलास ॥ टेक ॥
पाँच भीट कै पोखरा हो, जा मैं दस द्वार।
पाँच सखी बैरिन भइँ हो, कस उतरब पार ॥ १ ॥
छोट मोट डोलिया चँदन कै हो, लागे चार कहार।
डोलिया उतारै बीजा बनवाँ हो, जहँ कोइ न हमार ॥२॥
पइयाँ तोरी लागैँ कहरवा हो, डोली धरु छिन बार।
मिलि लेवँ सखिया सहेलरि हो, मिलैँ कुल परिवार ॥३॥
दास कबीर गावै निरगुन हो, साधो करि लो बिचार।
नरम गरम सौदा करि लो हो, आगे हाट न बजार ॥४॥

॥ शब्द ३३ ॥

भजु मन जीवन नाम सवेरा ॥ टेक ॥
सुंदर देह देखि जिनि भूलो, झपट लेत जस बाज बटेरा ॥१॥
या देही कौ गरब न कीजै, उड़ि पंछी जस लेत बसेरा ॥२॥

(१) मन।

या नगरी मैँ रहन न पैहौ, कोइ रहि जाय न दुक्ख घनेरा ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, मानुष जनम न पैहौ फेरा ॥४॥

॥ शब्द ३४ ॥

मन तू पार उतरि कहँ जैहै ।
आगे पंथी पंथ न कोई, कूच मुकाम न पैहै ॥ १ ॥
नहिँ तहँ नीर नाव नहिँ खेवट, ना गुन[1] खैँचनहारा ।
धरनी गगन कल्प कछु नाहीँ, ना कछु वार न पारा ॥२॥
नहिँ तन नहिँ मन नाहिँ अपनपौ, सुन मैँ सुद्धि न पैहौ ।
बलवाना ह्वै पैठौ घट मैँ, व्हाँ हीँ ठौरैँ होइ हौ ॥३॥
बारहि बार बिचारि देखु मन, अंत[2] कहूँ मत जैहौ ।
कहै कबीर सब छाड़ि कल्पना, ज्योँ कै त्योँ ठहरैहौ ॥४॥

॥ शब्द ३५ ॥

कर साहिब से प्रीत रे मन, कर साहिब से प्रीत ॥टेक॥
ऐसा समय बहुरि नहिँ पैहौ, जैहै औसर बीत ।
तन सुंदर छबि देख न भूलो, यह बारू की भीत ॥१॥
सुख संपति सुपने की बतियाँ, जैसे तृन पर सीत ।
जाही कर्म परम पद पावै, सोई कर्म करु मीत ॥२॥
सरन आये सो सबहि उबारैँ, यहि साहिब की रीत ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, चलिहौ भवजल जीत ॥३॥

॥ शब्द ३६ ॥

बंदे करिले आप निबेरा ॥ टेक ॥
आप चेत लखु आप ठौर करु, मुए कहाँ घर तेरा ॥१॥
यहि औसर नहिँ चेतो प्रानी, अंत कोई नहिँ तेरा ॥२॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कठिन काल का घेरा ॥३॥

---

(१) डोरी जिसे मस्तूल मेँ बाँध कर नाव खीँचते हैँ। (२) दूसरे ठौर।

॥ शब्द ३७ ॥

भजन बिन योँही जनम गँवायो ॥ टेक ॥

गर्भ बास मैँ कौल किये था, तब तोहि बाहर लाये ॥१

जठर अगिन तैँ काढ़ि निकारो, गाँठि बाँधि क्या लाये ॥२

बह बह मुवो बैल की नाईँ, सोइ रह्यो उठ खाये ॥३॥

कहै कबीर सुनो भाई साधो, चौरासी भरमाये ॥४॥

॥ शब्द ३८ ॥

ऐसी नगरिया मैँ केहि बिधि रहना,
नित उठि कलँक लगावै सहना[1] ॥ १ ॥

एकै कुवा पाँच पनिहारी ।
एकै लेजुर[2] भरैँ नौ नारी ॥ २ ॥

फटि गया कुवा बिनसि गइ बारी[3] ।
बिलग भइँ पाँचो पनिहारी ॥ ३ ॥

कहै कबीर नाम बिन बेड़ा ।
उठि गया हाकिम लुटि गया डेरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३९ ॥

चली है कुल-बोरनी गंगा नहाय ॥ टेक ॥

सतुवा कराइन बहुरी भुँजाइन,
घूँघट ओटे भसकत[4] जाय ॥ १ ॥

गठरी बाँधिन मोटरी बाँधिन,
खसम के मूड़े दिहिन धराय ॥ २ ॥

बिछुआ पहिरिन औँठा पहिरिन,
लात खसम के मारिन धाय ॥ ३ ॥

गंगा न्हाइन जमुना न्हाइन,
नौ मन मैलहि लिहिन चढ़ाय ॥ ४ ॥

---

(१) कोतवाल । (२) रस्सी । (३) बगीचा । (४) चावती ।

पाँच पचीस के धक्का खाइन,
घरहु की पूँजी आईं गँवाय ॥ ५ ॥
कहै कबीर हेत करु गुरु से ।
नहिं तोर मुक्ती जाइ नसाय ॥ ६ ॥

॥ शब्द ४० ॥

कलजुग मेँ प्यारी मेहरिया ॥ टेक ॥
बात कहत मुँह फारि खातु है, मिली धमधुसरि धँगरिया॥१॥
भीतर रहत तो घूँघट काढ़त, बाहर मारत नजरिया ॥२॥
सास ससुर को लातन मारत, खसम को मारत लतरिया[१]॥३
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जमपुर जावै मेहरिया ॥४॥

॥ शब्द ४१ ॥

लोगवै बड़ मतलब के यार, अब मोहिं जान पड़ी ॥टेक॥
जब लगि बैल रहे बनिया घर, तब लग चाह बड़ी ।
पौरुष थके कोइ बात न पूछे, घूमत गली गली ॥ १ ॥
बाँधे सत्त सती इक निकसी, पिया के फंद परी ।
साचा साहिब ना पहिचाना, मुरदे संग जरी ॥ २ ॥
हरा वृच्छ पंछी आ बैठा, रीति मनोरथ की ।
जला बृच्छ पंछी उड़ि चाला, यही रीति जग की ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, मनसा बिषय भरी ।
मनुवाँ तो कहिँ औरहि डोलै, जपता हरी हरी ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४२ ॥

किसी दा भइया क्या ले जाना, ओहि गया ओहि गया भँवर, निमाना ॥१॥
उड़ि गया तोता रहि गया पिंजरा, दसके[२] जी जाना ठिकाना ॥२॥
ना कोइ भाई ना कोइ बंधू, जो लिखिया सो खाना ॥३॥

---

(१) जूता। (२) कह कर।

काहू को नवा काहू को पुराना, काहू को अधुराना ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जंगल जाइ समाना ॥५॥

॥ शब्द ४३ ॥

भाई तैं ने बड़ा ही जुलम गुजारा, जो सतगुरु नाम बिसारा ॥टेक
रखा ढका तोहि पूछन लागे, कुटुँब पूत परिवारा ॥१॥
दर्द मर्द की कोई न जाने, झूठा जगत पसारा ॥२॥
महल मड़ैया छिन में त्यागी, बाँधि काठ पर डारा ॥३॥
साहू थे सो हुए बदाऊ[1], लुटन लगे घर बारा ॥४॥
घर की तिरिया चरचन[2] लागी, क्यौं नहिं नाम सम्हारा ॥५॥
काम क्रोध लोभ नहिं त्यागे, अब क्या करत बिचारा ॥६॥
सदा रंग महबूब गुमानी, यही सरूप तुम्हारा ॥७॥
कहै कबीर सुनो भाइ साधो, अब क्यों रोवे गँवारा ॥८॥

॥ शब्द ४४ ॥

हंसा सुधि कर अपनो देसा ॥ टेक ॥
इहाँ आइ तोरी सुधि बुधि बिसरी, आनि फँसे परदेसा।
अबहूँ चेतु हेतु करु पिउ से, सतगुरु के उपदेसा ॥१॥
जौन देस से आये हंसा, कबहुँ न कीन्ह अँदेसा।
आइ पर्यो तुम मोह फंद में, काल गह्यो तेरो केसा ॥२॥
लाओ सुरत अस्थान अलख पर, जा को रटत महेसा।
जुगन जुगन की संसय छूटै, छूटै काल कलेसा ॥३॥
का कहि आयौ काह करतु हौ, कहँ भूले परदेसा।
कहै कबीर वहाँ चल हंसा, जनम न होय हमेसा ॥४॥

॥ शब्द ४५ ॥

का नर सोवत मोह निसा[3] में, जागत नाहिं कूच नियराना ॥टेक
पहिले नगारा सेत केस भे, दूजे बैन सुनत नहिं काना ॥१॥
तीजे नैन दृष्टि नहिं सूझै, चौथे आइ गिरा परवाना ॥२॥

---

(१) डाकू। (२) ताना मारना। (३) रात।

मातु पिता कहना नहिँ माने, त्रिप्रन से कीन्हा अभिमाना ॥३
धरम की नाव चढ़न नहिँ जानै, अब जमराज ने भेद बखाना४
होत पुकार नगर कसबे मैँ, रैयत लोग सभै अकुलाना ॥५॥
पूरन ब्रम्ह की होत तयारी, अंत भवन बिच प्रान लुकाना ॥६
प्रेम नगरिया मैँ हाट लगतु है, जहँ रँगरेजवा है सतवाना[1] ॥७
कहै कबीर कोइ काम न ऐहै, माटी कै देहिया माटी मिलि जाना ॥८

॥ शब्द ४६ ॥

अरे दिल गाफिल, गफ़लत मत कर,
इक दिन जम तेरे आवैगा ॥टेक॥
सौदा करन को या जग आया, पूँजी लाया मूल गँवाया ।
प्रेम नगर का अंत न पाया, ज्यौँ आया त्यौँ जावैगा ॥१॥
सुन मेरे साजन सुन मेरे मीता, या जीवन मैँ क्या क्या कीता ।
सिर पाहन का बोझा लीता, आगे कौन छुड़ावैगा ॥२॥
परली पार मेरा मीता खड़िया, उस मिलने का ध्यान न धरिया।
टूटी नाव ऊपर जा बैठा, गाफिल गोता खावैगा ॥३॥
दास कबीर कहै समुझाई, अंत काल तेरी कौन सहाई ।
चला अकेला संग न काई[2], किया आपना पावैगा ॥४॥

---

(१) सत्य पुरुष । (२) कोई ।

भेद

॥ शब्द १ ॥

[प्रश्न गोरखनाथ]

कबिरा कब से भये बैरागी, तुम्हरी सुरत कहाँ को लागी ॥

[उत्तर]

धुँधमई[1] का मेला नाहीं, नहीं गुरू नहिं चेला ।
सकल पसारा जेहि दिन नाहीं, जेहि दिन पुरुष अकेला ॥
गोरख हम तब के बैरागी, हमरी सुरत नाम से लागी ॥१॥
ब्रम्हा नहिं जब टोपी दीन्हा, बिस्नु नहीं जब टीका ।
सिव सक्ती कै जन्मौ नाहीं, जबै जोग हम सीखा ॥२॥
सतजुग मैं हम पहिरि पाँवरी[2], त्रेता झोरी झंडा ।
द्वापर मैं हम अड़बंद[3] पहिरा, कलउ फिरयौं नौ खंडा ॥३॥
कासी मैं हम प्रगट भये हैं, रामानंद चिताये ।
समरथ कौ परवाना लाये, हंस उबारन आये ॥४॥
सहजै सहजै मेला होइगा, जागी भगति उतंगा ।
कहै कबीर सुनो हो गोरख, चलो सबद के संगा ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

साहिब हम मैं साहिब तुम मैं, जैसे तेल तिलन मैं ।
मत कर बंदा गुमान दिल मैं, खोज देखिले तन मैं ॥टेक
चाँद सुरज के खंभ गाड़ि के, प्रान आसन कर घट मैं ।
इँगला पिँगला सुरत लगा के, कमल पार कर घर मैं ॥१॥
वा मैं बैठो सुखमन नारी, झुला झुलत बँगलन मैं ।
कोटि सूर जहँ करते झिलि मिलि, नील सर सोतो गगन मैं॥२

(१) धुंधूकार मात्र । (२) खड़ाऊँ । (३) कोपीन ।

तीन ताप मिटि गे देहो के, निर्मल होइ वैठी घट मैं।
पाँच चोर जहँ पकरि मँगाये, झंडा रोपे निरगुन मैं ॥३॥
पाँच सहेली करत आरती, मनसा वाचा सतगुरु मैं।
अनहद घंटा बजै मृदंगा, तन सुख लेहि रतन मैं ॥४॥
विन पानी लागी जहँ वरषा, मोती देख नदिन मैं।
जहवाँ मनुआ बिलम रह्यो है, चलो हंस ब्रम्हँड मैं ॥५॥
इकइस ब्रम्हँड छाइ रह्यो है, समझैं बिलै सूरा।
मुरख गँवार कहा समझैंगे, ज्ञान कै घर है दूरा ॥ ६ ॥
बड़े भाग अलमस्त रंग मैं, कबिरा बोलै घट मैं।
हंस उबारन दुक्ख निवारन, आवागवन मिटै छिन मैं ॥७॥

॥ साखी ॥

साँझ पड़े दिन बीतवे, चकवी दीन्हा रोइ।
चल चकवी वा देस को, जहाँ रैन ना होइ ॥ ८ ॥
चकवी बिछुरी साँझ की, आन मिलै परभात[१]।
जो नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥ ९ ॥

॥ शब्द ३ ॥

साईं मोर वसत अगम पुरवा, जहँ गम न हमार ॥टेक
आठ कुँआ नौ बावड़ी, सोरह पनिहार।
भरल घइलवा[२] ढरकि गे हो, धन ठाढ़ी पछितात ॥१॥
छोटि मोटि डँड़िया चँदन कै हो, छोटे चार कहार।
जाय उतरि हैं वाही देसवाँ हो, जहँ कोइ न हमार ॥२॥
ऊँची महलिया साहिब कै हो, लगी बिषमी बजार।
पाप पुन्न दोउ बनिया हो, हीरा लाल बिकात ॥ ३ ॥

---

(१) सवेरे। (२) घड़ा।

कहै कबीर सुन साइयाँ, मोरे आ हिये देस ।
जो गये बहुरे नहीं, को कहत सँदेस ॥ ४ ॥

॥ शब्द ४ ॥

हौ तुम हंसा सत्त लोक के, पड़े काल बस आई हो ।
मनै सरूपी देव निरंजन, तुम्हैं राखि भरमाई हो ॥१॥
पाँच पचीस तीन कै पिंजरा, तेहि माँ राखि छिपाई हो ।
तुमको बिसरि गई सुधि घर की, महिमा अपन जनाई हो ॥२
निरंकार निरगुन है माया, तुम को नाच नचाई हो ।
चर्म दृष्टि का कुलफा दैके, चौरासी भरमाई हो ॥ ३ ॥
चार बेद है जा की स्वासा, ब्रम्हा अस्तुति गाई हो ।
सो कित ब्रम्हा जक्त भुलाये, तेहि मारग सब जाई हो ॥४॥
सतगुरु बहुरि जीव के रच्छक, तिन से कर सुमताई हो ।
तिन के मिले परम सुख उपजै, पद निर्बाना पाई हो ॥५
चारौं जुग हम आन पुकारा, कोइ कोइ हंस चिताई हो ।
कहै कबीर ताहि पहुँचाऊँ, सत्तपुरुष घर जाई हो ॥६॥

॥ शब्द ५ ॥

जागत जोगेसर[1] पाया मेरे रब जू, जागत जोगेसर पाया ॥टेक॥
हंसा एक गगन बिच बैठा, जिसके पंख न काया ।
बिना चोंच का चून चुगत है, दसवें द्वार बसाया ॥१॥
मूसा जाय बिल्ली सँग अरुझा, स्यारन सिंह डराया ।
जल की मछरी उदयचल ब्याई, ऊनज[2] रुंड जमाया ॥२॥
अलख पुरुष की अचला बस्ती, जा की सीतल छाया ।
कहत कबीर सुन गोरख जोगी, जिन ढूँढ़ा तिन पाया ॥३॥

---

(१) भगवंत । (२) खंडित ।

॥ शब्द ६ ॥

एक नगरिया तनिक सो मैं, पाँच बसैं किसान।
एक बसै धरती के ऊपर, एक अगिन में जान ॥ १ ॥
दोय बसैं पवना पानी मैं, एक बसै असमान।
पाँच पाँच उनकी घरवाली, नित उठि माँगैं खान ॥२॥
इनहीं से सब डुबकत डोलैं, मुकद्दम और दिवान।
खान पान सब न्यारा राखैं, मन में उन के मान ॥ ३ ॥
जग्त की आसा तजि दे हंसा, धरि ले पिय को ध्यान
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बैठो जाइ बिवान ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

चुवत अमीं रस भरत ताल जहँ, सबद उठै असमानी हो॥टेक
सरिता उमड़ सिन्ध को सोखै, नहिं कछु जात बखानी हो ॥१
चाँद सुरज तारागन नहिं वहँ, नहिं वहँ रैन बिहानी हो ॥२॥
बाजे बजैं सितार बाँसुरी, ररंकार मृदु बानी हो ॥ ३ ॥
कोटि झिलमिली जहँ वहँ झलकै, बिनु जल बरसत पानी हो॥४
सिव अज[1] बिस्नु सुरेस सारदा, निज निज मति उनमानी हो ॥५
दस अवतार एक तत राजैं, अस्तुति सहज से आनी हो ॥६॥
कहै कबीर भेद की बातैं, बिरला कोइ पहिचानी हो ॥७॥
कर पहिचान फेर नहिं आवै, जम जुलमी की खानी हो ॥८॥

॥ शब्द ८ ॥

नाम बिमल पकवान मनै हलवैया ॥ टेक ॥
ज्ञान कराही प्रेम घीव करि, मन मैदा कर सान।
ब्रम्ह अगिनि उदगारि के, इक अजब मिठाई छान ॥१॥
तनै बनावो पालरा, मन पूरा करि सेर।
सुरत निरत के डाँड़ी बनवो, तौलत ना कछु फेर ॥ २॥

---

(१) ब्रह्मा।

गगन मँडल मँ घर है तुम्हरा, त्रिकुटी लागि दुकान ।
उनमुनिया मँ रहनि बनावो, तब कछु सौदा बिकान ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, या गति अगम अपार ।
सत्त नाम साधु जन लादैं, बिष लादै संसार ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

सब का साखी मेरा साईं ।
ब्रम्हा बिस्नु रुद्र ईसुर लौं, औ अव्याकृत नाहीं ॥ १ ॥
पाँच पचीस से सुमती करि ले, ये सब जग भरमाया ।
अकार ओंकार मकार मात्रा, इनके परे बताया ॥ २ ॥
जागृत सुपन सुषोपति तुरिया, इन तैं न्यारा होई ।
राजस तामस सातिक निर्गुन, इन तैं आगे सोई ॥ ३ ॥
स्थूल सूच्छम कारन महाकारन, इन मिलि भोग बखाना ।
विस्व तेजस पराग आतमा, इन मँ सार न जाना ॥४॥
परा पसंती मधमा बैखरि, चैाबानी नहिं मानी ।
पाँच कोष नीचे करि देखो, इन में सार न जानी ॥५॥
पाँच ज्ञान औ पाँच कर्म हैं, ये दस इन्द्री जानो ।
चित सोइ अंतःकरन बखानी, इन में सार न मानो ॥६॥
कुरम सेस किरकिला धनंजय, देवदत्त[1] कँह देखो ।
चौदह इन्द्री चौदह इन्द्रा, इन में अलख न पेखो ॥७॥
तत पद त्वं पद और असी पद, बाच लचछ पहिचाने ।
जहद लच्छना अजहद कहते, अजहद जहद बखाने ॥८॥
सतगुरु मिलै सत सबद लखावै, सार सबद बिलगावै ।
कहै कबीर सोई जन पूरा, जो न्यारा करि गावै ॥ ९ ॥

---

(१) पाँच पवनौं के नाम ।

॥ शब्द १० ॥

हम से रहा न जाय, मुरलिया कै धुनि सुनि के ॥टेक॥
पाँच तत्त को पूतला, ख्याल रच्यो घट माहिँ ॥ १ ॥
विना वसंत फूल इक फूलै, भँवर रह्यो अरुझाय ॥ २ ॥
गगन गराजै बिजुली चमकै, उठती हिये हिलोर ॥ ३ ॥
विगसन कँवल औ मेघ बरीसै, चितवत प्रभु की ओर ॥४॥
तारी लगी तहाँ मन पहुँचा, गैब धुजा फहराय ॥ ५ ॥
कह कबीर कोइ संत बिबेकी, जीवत ही मरि जाय ॥ ६ ॥

॥ शब्द ११ ॥

मारग विहँग बतावैं संत जन ॥ टेक ॥
कौने घर से जिव की उतपति, कौने घर को जावै ।
कहाँ जाइ जिव प्रलय होइगा, सो सुर तहाँ चढ़ावै ॥१॥
गढ़ सुमेर वाही को कहिये, सुई नखा से जावै ।
भू मंडल से परिचय करि ले, पर्बत धौल लखावै ॥ २ ॥
द्वादस कोस[1] साहिब के डेरा, तहाँ सुरत ठहरावै ।
वा को रंग रूप नहिँ रेखा, कौन पुरुष गुन गावै ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जो यह पद लखि पावै ।
अमर लोक मैं झुलै हिंडोला, सतगुरु सबद सुनावै ॥ ४ ॥

॥ शब्द १२ ॥

हंसा कहो पुरातम[2] बात ॥ टेक ॥
कौन देस से आयौ हंसा, उतर्यो कौने घाट ।
कहँ हंसा बिसराम कियो है, कहाँ लगायो आस ॥ १ ॥
बंक देस से आयौ हंसा, उतर्यो भौजल घाट ।
भूलि पर्यो माया के बसि मैं, बिसरि गयो वो बात ॥ २ ॥

---

(१) स्थान (२) प्राचीन ।

अबैं ही हंसा चेतु सवेरा, चलो हमारे साथ ।
संसय सोक वहाँ नहिं ब्यापै, नहीं काल कै त्रास ॥ ३ ॥
हुआँ मदन बन[1] फूलि रहे हैं, आवै सोहं बास ।
मन भौंरा जहँ अरुझि रहो है, सुख की ना अभिलास ॥४॥
मकर[2] तार तें हम चढ़ि करते, बंकनाल परवेस ।
वहि डोरी चढ़ि चढ़ि चले हंसा, सतगुरु के उपदेस ॥५॥
जहँ संतन की चौकी बनी है, ढुरै सोहंगम चौर ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु के सिर मौर ॥ ६ ॥

॥ शब्द १३ ॥

सो पंछी मोहिं कोइ न बतावै, जो बोलै घट माहीं रे ।
अवरन बरन रूप नहिं रेखा, बैठा नाम की छाहीं रे ॥टेक॥
या तरवर में एक पखेरू, रुँगत चुँगत वह डोलै रे ।
वा की सन्ध लखै नहिं कोई, कौन भाव से बोलै रे ॥१॥
द्रुम[3] डारि तहँ अति घनि छाया, पंछि बसेरा लेई रे ।
आवै साँझ उड़ि जाइ सवेरा, मरम न काहू देई रे ॥२॥
दुइ फल चाखि जाय रह्यो आगे, और नहीं दस बीसा रे ।
अगम अपार निरन्तर वासा, आवत जात न दीसा रे ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह कछु अगम कहानी रे ।
या पंछी को कौन ठौर है, बूझो पंडित ज्ञानी रे ॥४॥

॥ शब्द १४ ॥

ऐसा रंग कहाँ है भाई ॥ टेक ॥
सात द्वीप नौ खंड के बाहर, जहवाँ खोज लगाई ।
वा देसवा कै मरम न जानै, जहँ से चूनरि आई ॥ १ ॥

---

(१) कामवन, बसंत । (२) मकड़ी । (३) पेड़ ।

या चूनर में दाग बहुत है, संत कहँ गुहराई ।
जो यह चूनर जुगति से ओढ़ै, काल निकट नहिं आई ॥२॥
प्रेम नगर की गैल कठिन है, वहँ कोइ जान न पाई ।
चाँद सुरज जहँ पौन न पानी, पतिया को लै जाई ॥३॥
सोहंकार से काया सिरजी, ता में रंग समाई ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बिरले यह घर पाई ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

जियत न मार मुआ मत लैयो, मास बिना मत ऐयो रे ॥ टेक
परली पार इक वेल का बिरवा, वा के पात नहीं है रे ।
होत पात चुगि जात मिरगवा, मृग के सीस नहीं है रे ॥१॥
धनुष बान ले चढ़ा पारधी, धनुआ के परच नहीं है रे ।
सरसर बान तकातक मारै, मिरगा के घाव नहीं है रे ॥२॥
उर बिनु खुर बिनु चरन चोँच बिनु, उड़न पंख नहिं जा के रे ।
जो कोइ हंसा मारि लियावै, रक्त माँस नहिं ता के रे ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद अतिहि दुहेला[1] रे ।
जो या पद को अर्थ बतावै, सोई गुरू हम चेला रे ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

सँग लागी मेरे ठगनी जानि पड़ी ॥ टेक ॥
हमरे बलम कै प्रेम पटूका, चूनर लेत सुहाग भरी ॥१॥
रंग महल बिच नींद परी है, पाँचो चोर मसान मरी ॥२
साखी सबद नवो दरवाजे, मूँदि खोलि ले दस झँझरी[2] ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह दुनिया जंजाल भरी ॥४॥

---

(१) कठिन । (२) तीसरा तिल अथवा शिव नेत्र जो जोगियों का दसवाँ द्वार है ।

॥ शब्द १७ ॥

मेरी नजर में मोती आया है ॥ टेक ॥
कोइ कहे हलका कोइ कहे भारी, दूनों भूल भुलाया है ॥१॥
ब्रम्हा बिस्नु महेसुर थाके, तिनहूँ खोज न पाया है ॥२॥
संकर सेस औ सारद हारे, पढ़ि रटि गुन बहु गाया है ॥३॥
है तिल के तिल के तिल भीतर, बिरले साधू पाया है ॥४॥
चहुँ दल कँवल तिर्कुटी साजे, ओंकार दरसाया है ॥५॥
ररंकार पद सेत सुन्न मध, षटदल कँवल बताया है ॥६॥
पारब्रम्ह महासुन्न मँझारा, सोइ निःअच्छर रहायां है ॥७॥
भँवर गुफा मैं सोहं राजै, मुरली अधिक बजाया है ॥८॥
सत्तलोक सत पुरुष बिराजै, अलख अगम दोउ भाया है ॥९॥
पुरुष अनामी सब पर स्वामी, ब्रम्हँड पार जो गाया है ॥१०॥
यह सब बातैं देही माहीं, प्रतिब्रिंब अंड जो पाया है ॥११
प्रितिबिंब पिंड ब्रम्हँड है नकली, असली पार बताया है ॥१२
कहैं कबीर सतलोक सार है, यहँ पुरुष नियारा पाया है ॥१३॥

॥ शब्द १८ ॥

तू सूरत नैन निहार, यह अंड के पारा है ।
तू हिरदे सोच बिचार, यह देस हमारा है ॥१॥
पहिले ध्यान गुरन का धारो, सुरत निरत मन पवन चितारो ।
सुहेलना[1] धुन मैं नाम उचारो, तब सतगुरु लहो दीदारा है ॥२
सतगुरु दरस होइ जब भाई, वे दें तुम को नाम चिताई ।
सुरत सबद दोउ भेद बताई, तब देखे अंड के पारा है ॥३॥
सतगुरु कृपा दृष्टि पहिचाना, अंड सिखर बेहद मैदाना ।
सहज दास तहँ रोपा थाना, जो अग्रदीप सरदारा है ॥४॥

---

(१) सहज ।

सात सुन्न बेहद के माहीं, सात संख तिन की ऊँचाई ।
तीनि सुन्न लौं काल कहाई, आगे सत्त पसारा है ॥५॥
पिरथम अभय सुन्न है भाई, कन्या निकल यहँ बाहर आई ।
जोग संतायन[१] पूछो वाही, (कहा) मम दारा[२] वह भरतारा है६
दूजे सकल सुन्न करि गाई, माया सहित निरंजन राई ।
अमर कोट के नकल बनाई, जिन अँड मधि रच्यो पसारा है७
तीजे है महसुन्न सुखाली, महाकाल यहँ कन्या ग्रासी ।
जोग संतायन आये अविनासी, जिन गल नख छेद निकारा है ॥८
चैाथे सुन्न अजोख कहाई, सुद्ध ब्रम्ह पुर्ष ध्यान समाई ।
आद्या यहँ बीजा ले आई, देखो दृष्टि पसारा है ॥ ९ ॥
पंचम सुन्न अलेल कहाई, तहँ अदली बंदीवान रहाई ।
जिनका सतगुरु न्याव चुकाई, जहँ गादी अदली सारा है॥१०
षष्ठे सार सुन्न कहलाई, सार भँडार याही के माहीं ।
नीचे रचना जाहि रचाई, जा का सकल पसारा है ॥११॥
सतवँ सत्त सुन्न कहलाई, सत भंडार याही के माहीं ।
निःतत रचना ताहि रचाई, जो सबहिन तेँ न्यारा है ॥१२॥
सत सुन ऊपर सत की नगरी, बाट बिहंगम बाँकी डगरी ।
सो पहुँचे चाले बिन पग री, ऐसा खेल अपारा है ॥१३॥
पहिली चकरी समाध कहाई, जिन हंसन सतगुरु मति पाई ।
बेद भर्म सब दियो उड़ाई, तिरगुन तजि भये न्यारा है ॥१४॥
दूजी चकरी अगाध कहाई, जिन सतगुरु सँग द्रोह कराई ।
पीछे आनि गहे सरनाई, सो यहँ आन पधारा है ॥१५॥
तीजी चकरी मुनिकर नामा, जिन मुनियन सतगुरु मति जाना ।
सो मुनियन यहँ आइ रहाना, करम भरम तजि डारा है ॥१६

(१) कबीर साहिब । (२) स्त्री ।

चौथी चकरी धुनि है भाई, जिन हंसन धुनि ध्यान लगाई।
धुनि सँग पहुँचे हमरे पाहीं, यह धुनि सबद मँझारा है ॥१७
पंचम चकरी रास जो भाखी, अलमीना है तहँ मधि झाँकी।
लीला कोट अनंत वहाँ की, जहँ रास बिलास अपारा है ॥१८
षष्टम चकरी बिलास कहाई, जिन सतगुरु सँग प्रीति निबाही।
छुटते देँह जगह यहँ पाई, फिर नहिं भव अवतारा है ॥१९॥
सतवीं चकरी बिनोद कहानो, कोटिन बंस गुरन तहँ जानो।
कलि मैं बोध किया ज्यौं भानो, अंधकार खोया उजियारा है ॥२०
अठवीं चकरी अनुरोध बखाना, तहाँ जुलहदी ताना ताना।
जा का नाम कबीर बखाना, जो सब संतन सिर धारा है ॥ २१
ऐसी ऐसी सहस करोड़ी, ऊपर तले रची ज्यौं पौड़ी[1]।
गादी अदली रही सिर मौरी, जहँ सतगुरु बंदीछोरा है ॥२२
अनुरोधी के ऊपर भाई, पद निर्बान के नीचे ताही।
पाँच संख है याहि उँचाई, जहँ अद्भुत ठाठ पसारा है ॥२३
सोलह सुत हित दीप रचाई, सब सुत रहैं तासु के माहीं।
गादी अदल कबीर यहाँ ही, जो सबहिन मैं सरदारा है ॥२४॥
पद निरबान है अनंत अपारा, नूतन सूरत लोक सुधारा।
सत्त पुरुष नूतन तन धारा, जो सतगुरु संतन सारा है ॥२५॥
आगे सत्तलोक है भाई, संखन कोस तासु ऊँचाई।
हीरा पन्ना लाल जड़ाई, जहँ अद्भुत खेल अपारा है ॥२६॥
बाग बगीचे खिली फुलवारी, अमृत नहरैं हो रहिं जारी।
हंसा केल करत तहँ भारी, जहँ अनहद घुरै अपारा है ॥२७॥
ता मधि अधर सिंघासन गाजै, पुरुष सबद तहँ अधिक बिराजै।
कोटिन सूर रोम इक लाजै, ऐसा पुरुष दीदारा है ॥२८॥

---

(१) सीढ़ी।

हंस हंसनी आरत उतारैं, खोड़स भानू सुर पुनि चारैं।
पद बीना सत सब्द उचारैं, जो वेधत हिये मँझारा है ॥२९

ता पर अगम महल इक न्यारा, संखन कोटि तासु विस्तारा।
बाग बावड़ी अमृत धारा, जहँ अधरी चलैं फुहारा है ॥३०॥

मोती महल औ हीरन चौरा, सेत बरन तहँ हंस चकोरा।
सहस सूर छवि हंसन जोरा, ऐसा रूप निहारा है ॥३१॥

अधर सिंघासन जिंदा साईं, अर्बन सूर रोम सम नाहीं।
हंस हिरंबर चँवर ढुलाईं, ऐसा अगम अपारा है ॥३२॥

तहँ अधरी ऊपर अधर धराई, संखन संख तासु ऊँचाई।
झिलमिलहट सो लोक कहाई, जहँ झिलमिल झिलमिल सारा है ॥३३॥

बाग बगीचे झिलमिल कारी[1], रतनन जड़े पात औ डारी।
मोती महल औ रतन अंटारी, तहँ पुरुष बिदेह पधारा है ॥३४

कोटिन भानु हंस को रूपा, धुन है वहँ की अजब अनूपा।
हंसा करत चँवर सिर भूपा, बिन कर चँवर ढुलारा है ॥३५॥

हंसा केल सुनो मन लाई, एक हंस के जो चित आई।
दूजा हंस समझि पुनि जाई, बिन मुख बैन उचारा है ॥३६॥

ता आगे निःलोक है भाई, पुरुष अनामी अकह कहाई।
जो पहुँचे जानैंगे वाही, कहन सुनन तें न्यारा है ॥ ३७ ॥

रूप सरूप वहाँ कछु नाहीं, ठौर ठाँव कछु दीसै नाहीं।
अरज तूल[2] कछु दृष्टि न आई, कैसे कहूँ सुमारा[3] है ॥३८॥

जा पर किरपा करिहैं साईं, गगनी मारग पावै ताही।
सत्तर परलय मारग माहीं, जब पावै दीदारा है ॥ ३९ ॥

---

(१) एक लिपि में "क्यारी" है। (२) चौड़ाई और लम्बाई। (३) गिनती।

कहै कबीर मुख कहा न जाई, ना कागद पर अंक चढ़ाई।
मानो गूँगे सम गुड़ खाई, सैनन बैन उचारा है ॥ ४० ॥

॥ शब्द १६ ॥

सुरसरि[1] बुकवा[2] बटावै तो पिय के लगावैं हो ॥ टेक ॥
सत्त सोहंगम नारि तो कुमति छुड़ावैं हो ॥ १ ॥
घट हि मैं मानसरोवर घाट बँधावैं हो।
घट हि मैं पाँचौ कहार दुलहै नहवावैं हो ॥ २ ॥
घट हि मैं दाया के दरजी तो दरज मिटावैं हो।
घट हि मैं मन कर माली तो मौर ले आवैं हो ॥ ३ ॥
घट हि मैं जुक्ति के जेवर जिवै[3] पहिरावैं हो।
घट हि मैं सोरहो सिंगार सु दुलहै करावैं हो ॥ ४ ॥
घट हि मैं लोह लोहार कँगन लै आवैं हो।
तीनि गुनन कै कँगन दुलहै पहिरावैं हो ॥ ५ ॥
घट हि मैं नेह कै नाउन चरन पखारैं हो।
घट हि मैं पाँचौ सोहागिन मंगल गावैं हो ॥ ६ ॥
घट हि मैं चित कै चौका तो चौक पुरावैं हो।
सत सुकिरत कै कलस तहाँ धरवावैं हो ॥ ७ ॥
घट ही मैं अनहद बाजन बजवावैं हो।
घट हि मैं सूरत नार तो दुलहै रिझावैं हो ॥ ८ ॥
वार बार गुन गाऊँ तो बरनि सुनाऊँ हो।
दुलहा के न्योछावर परम पद पाऊँ हो ॥ ९ ॥
तीन लोक ओहि पार हंसा उहाँ जाउब हो।
कहै कबीर धरमदास बहुरि नहिं आउब हो ॥ १० ॥

---

(१) गंगा। (२) बटना। (३) जीव को।

॥ शब्द २० ॥

चरखा चलै सुरत बिरहिनि का ॥ टेक ॥

काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का ।
सुरत भाँवरी होत गगन मेँ, पीढ़ा ज्ञान रतन का ॥१॥
चित चमरख तिरगुन के टेकुआ, माल मनोरथ मन का ।
पिउनी पाँच पचीस रंग की, कुखरी नाम भजन का ॥२॥
द्रढ़ बैराग गाड़ि दुइ खूँटा, मंझा[1] जोग जुगत का ।
द्वादस नाम धरो दुइ पखुरी, हथिया सार सब्द का ॥३॥
मिहीन सूत संत जन कातैं, माँझा[2] प्रेम भगति का ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जुगन जुगन सत मत का ॥४॥

॥ शब्द २१ ॥

दिन दस नैहरवाँ खेलि ले, निज सासुर जाना हो ॥टेक॥

इक तो अँधेरी कोठरी, ता मेँ दिया न बाती हो ।
बहियाँ पकरि जम लै चले, कोइ संग न साथी हो ॥१॥
कोठा ऊपर कोठरी, जोगी धुनिया रमाया हो ।
अंग भभूत लगाइ के, जोगी रैनि गँवाया हो ॥ २ ॥
गंग जमुन बिच रेतवा, तहँ बाग लगाया हो ।
कच्ची कली इक तोरि के, मलिया पछिताया हो ॥३॥
गिरि परबत कै माछरी, भैासागर आया हो ।
कहै कबीर धर्मदास से, जम बंसी लगाया हो ॥ ४ ॥

॥ शब्द २२ ॥

काया गढ़ जीतो रे भाई ॥ टेक ॥

ब्रम्ह कोट चहुँ ओर मँडो है, माया ख्याल बनाई ।
कनक कामिनी फंदा रोपे, जग राखे बिलमाई ॥ १ ॥

---

(१) मँगरी । (२) लेई जिस से सूत को माँजते हैं ।

पाँचौ-मुरचा गढ़ के भीतर, तहाँ लाँघि कै जाई ।
आसा तृस्ना मनसा कहिये, तृगुन बनी जो खाई ॥२॥
पचिस सुभाव जहँ निसि दिन ब्यापै, काम क्रोध दोउ भाई ।
लालच लोभ खड़े दरवाजे, मोह करै ठकुराई ॥ ३ ॥
मूल कँवल पर आसन कीन्हो, गुरु कौ सीस नवाई ।
छवो कँवल इक सुर मैं बेधे, चढ़ी गगन गढ़ जाई ॥४॥
ज्ञान के घोड़ा ध्यान के पाखर, जुक्ति कै जीन बनाई ।
सत्त सुकृत दोउ लगी पावरी,[1] बिबेक लगाम लगाई ॥५॥
सील छिमा के बख्तर पहिरे, तत तरवार गहाई ।
साजन सुरति चढ़ि छाजे ऊपर, निरत के साँग[2] गहाई ॥६
सतएँ कँवल त्रिकुट के भीतर, वहाँ पहुँचि के जाई ।
जोति सरूपी देव निरंजन, वेदन उन को गाई ॥ ७ ॥
बंकनाल की औघट घाटी, तहाँ न पग ठहराई ।
ओअं ररंग अड़े जहँ दुइ दल, अजपा नाम सहाई ॥८॥
जोजन एक खरब के आगे, पुरुष बिदेह रहाई ।
सेत कँवल निसि बासर फूले, सोभा बरनि न जाई ॥९
सेत छत्र और सेत सिंघासन, सेत धुजा फहराई ।
कोटिन भानु चन्द्र तारागन, छत्र की छाँह रहाई ॥१०॥
मन मैं मन नैनन मैं नैना, मन नैन एक ह्वै जाई ।
सुरत सोहागिनि मिलत पिया को, तन कै तपन बुझाई ॥११
द्वादस ऊपर अजपा फेरै, मनै पवन थकि जाई ।
कहै कबीर मिले गुरु पूरे, सबद मैं सुरत मिलाई ॥ १२ ॥

---

(१) रकाब। (२) बरछी, भाला।

॥ शब्द २३ ॥

सुगना बोल तैं निज नाम ॥ टेक ॥

आवत जात बिलम[1] नहिं लागै, मंजिल आठौ जाम ।
लाखन कोस पलक मैं जावै, कहूँ न करै मुक़ाम ॥ १ ॥
हाथ पाँव मुख पेट पीठ नहिं, नहीँ लाल ना सेत न स्याम।
पंखन बिना उड़ै निसि बासर, सीत लगै नहिँ घाम ॥२
बेद कहै सरगुन के आगे, निरगुन का बिसराम ।
सरगुन निरगुन तजहु सोहागिनि, जाइ पहुँच निज धाम॥३
लाल गुलाल बाग हंसन मैं, पंछी करै अराम ।
दुख सुख वहाँ कहूँ नहिँ ब्यापै, दरसन आठौ जाम ॥४॥
नूरै ओढ़न नूरै डासन, नूरै कै सिरहान ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नूर तमाम ॥५॥

॥ शब्द २४ ॥

चलो जहँ बसत पुरुष निर्बाना ॥ टेक ॥

अवगति गति जहँ गति गम नाहीँ, दुइ अंगुल परिमाना।
रबि ससि दूनोँ पौन चलतु हैं, तेहि बिच धरु मन ध्याना ॥१
तीन सुन्न के पार बसतु है, चौथा तहँ अस्थाना ।
उपजा ज्ञान ध्यान दृढ़ जागा, मगन भया मस्ताना ॥२॥
पोहि के डोरी चढ़ौ गगन पर, सुरत धरो सत नामा ।
द्वादस चलै दसो पर ठहरै, ऐसा निरगुन नामा ॥ ३ ॥
अजर अमर जहँ जरा मरन नहिँ, पहुँचै संत सुजाना ।
बहुतक चढ़ि चढ़ि के फिरि आये, बिरला जन ठहराना ॥४
सबदै निरखि परखि छबि झलकै, सुमिरन मूल ठिकाना।
उलटि पवन षट चक्कर बेधै, नैनन पियत अघाना ॥५॥

---

(१) देर।

सबदै सबद प्रगट भये बाहर, कहि गये बेद पुराना ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सबद मैं सुरत समाना ॥६॥

॥ शब्द २५ ॥

दूर गवन तेरो हंसा हो, घर अगम अपार ॥ टेक ॥
नहिं वहँ काया नहिं वहँ माया, नहिं वहँ त्रिगुन पसार ।
चार वरन उहवाँ हैं नाहीं, ना है कुल व्योहार ॥ १ ॥
नौ छः चौदह बिद्या नाहीं, नहिं वहँ बेद बिचार ।
जप तप संजम तीरथ नाहीं, नाहीं नेम अचार ॥ २ ॥
पाँच तत्त नहिं उतपति भइलैं, सो परलय के पार ।
तीन देव ना तैंतिस कोटी, नाहिं दसो अवतार ॥ ३ ॥
सोरह संख के आगे होई, समरथ कर दरबार ।
सेत सिंघासन आसन बैठे, जहाँ सबद झनकार ॥ ४ ॥
पुरुष रूप कहा बरनौं महिमा, तिन गति अपरम्पार ।
कोटि भानु की सोभा जिन्ह के, इक इक रोम उजार ॥५॥
छर अच्छर दूनौं से न्यारा, सोई नाम हमार ।
सार सबद को लेइके आयो, मिरतू लोक मँझार ॥ ६ ॥
चार गुरू मिलि थापल हो, जग के हैं कड़िहार ।
उन कर बहियाँ पकरि रहो हो, हंसा उतरै पार ॥ ७ ॥
जम्बू दीप के तुम सब हंसा, गहि लो सबद हमार ।
दास कबीरा अब की दीहल, निर्गुन कै टकसार ॥ ८ ॥

॥ शब्द २६ ॥

चलु हंसा वा देस, जहाँ तोर पिया बसै ॥ टेक ॥
वहि देसवा में अर्द्धमुख कुइयाँ, साँकर वाके मोहड़[1] ।
सुरत सोहागिनि है पनिहारिनि, भरै ठाढ़ बिन डोर ॥१॥

---

(१) जिसका मुँह तंग है ।

वहि देसवाँ बादर ना उमड़ै, रिमझिम बरसै मेह ।
चौबारे मैं बैठि रहो ना, जा भीजहु निर्देह ॥ २ ॥
वहि देसवाँ में नित्त पूर्निमा, कबहु न होइ अँधेर ।
एक सुरज कै कौन बतावै, कोटिन सुरज उँजेर[1] ॥ ३ ॥
लछमी वा घर झाडू देत है, सिव करते कोतवाली ।
ब्रम्हा वा के बने टहलुवा, बिस्नु करै चरवाही ॥ ४ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, ई पद है निर्बानी ।
जो ई पद कै अरथ लगावै, पहुँचै मूल ठिकानी ॥ ५ ॥

॥ शब्द २७ ॥

चरखा नहीं निगोड़ा चलता ॥ टेक ॥
पाँच तत्त का बना है चरखा, तीन गुनन में गलता ॥१॥
माल टूटि तीन भया टुकड़ा, टेकुवा होइ गया टेढ़ा ॥२॥
माँजत माँजत हार गया है, धागा नहीं निकलता ॥३॥
मित्र बढ़ैया दूर बसत है, का के घर दे आया ॥ ४ ॥
ठोकत ठोकत हार गया है, तौ भी नहीं सम्हलता ॥ ५ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जले बिना नहिं छुटता ॥६

॥ शब्द २८ ॥

जिन पिया प्रेम रस प्याला, सोई जन है मतवाला ॥१॥
मूल चक्र कौ बंद लगावै, उलटी पवन चढ़ावै ।
जरा मरन भय व्यापै नाहीं, सतगुरु सरनो आवै ॥ २ ॥
बिन धरनी हरि मंदिर देखा, बिन सागर झर पानी ।
बिन दीपक मंदिर उँजियारा, बोलै गुरुमुख बानी ॥ ३ ॥
इँगला पिँगला सुखमन नाड़ी, उनमुन के घर मेला ।
अष्ट कँवल पर कँवल बिराजै, सो साहिब अलबेला ॥४॥

---

(१) प्रकाश ।

चाँद न सुरज दिवस नहिँ रजनी, तहाँ सुरत लौ लावै ।
अमृत पियै मगन होय बैठै, अनहद नाद बजावै ॥ ५ ॥
चाँद सुरज एकै घरि राखै, भूला मन समुझावै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सहज सहज गुन गावै ॥६॥

प्रेम ।

॥ शब्द १ ॥

आज मेरे सतगुरु आये ।
रहस रहस मैँ अँगना बुहारोँ, मोतियन चौक पुराये ॥१॥
चरन पखारि चरनामृत करिके, सब साधन बरताऊँ ।
पाँच सखी मिलि मंगल गावैँ, सबद सुरत लौ लाऊँ ॥२॥
करूँ आरती प्रेम निछावर, पल पल बलि बलि जाऊँ ।
कहै कबीर दया सतगुरु की, परम पुरुष बर पाऊँ ॥ ३ ॥

॥ शब्द २ ॥

आज सुबेलो[1] सुहावनो, सतगुरु मेरे आये ।
चंदन अगर बसाये, मोतियन चौक पुराये ॥ १ ॥
सेत सिँघासन बैठे संतगुरु, सुरत निरत करि देखा ।
साध कृपा तेँ दरसन पाये, साधू संग बिसेखा ॥ २ ॥
घर आँगन मेँ आनँद होवै, सुरत रही भरपूर ।
झरि झरि पड़ै अमीरस दुर्लभ, है नेड़े नहिँ दूर ॥ ३ ॥
द्वादस मद्ध देखि ले जोई, बिच है आपै आपा ।
त्रिकुटी मध तू सेज निरखि ले, नहिँ मंतर नहिँ जापा ॥४॥
अगम अगाध गती जो लखिहै, सो साहिब को जीवा ।
कहै कबीर धरमदास से, भेँटि ले अपनो पीवा ॥ ५ ॥

---

(१) अच्छी वेला या समय ।

॥ शब्द ३ ॥

आज दिन के मैं जाऊँ बलिहारी ॥ टेक ॥

सतगुरु साहिब आये मेरे पहुना ।
घर आँगन लगै सुहौना ॥ १ ॥

साध संत लगे मंगल गावन ।
भये मगन लखि छबि मन भावन ॥ २ ॥

चरन पखारूँ बदन[1] निहारूँ ।
तन मन धन सब गुरु पर वारूँ ॥ ३ ॥

जा दिन आये साध धन सोई ।
होत अनन्द परम सुख होई ।
सतगुरु मिलि मोरी दुर्मति खोई ॥ ४ ॥

सुरत लगी सतनाम की आसा ।
कहै कबीर दासन कर दासा ॥ ५ ॥

॥ शब्द ४ ॥

सतगुरु हैं रँगरेज, चुनर मेरी रँगि डारी ॥ टेक ॥

स्याही रंग छुड़ाइ के रे, दियो मजीठा रंग ।
धोये से छूटै नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग ॥ १ ॥

भाव के कुंड नेह के जल में, प्रेम रंग दइ बोर ।
चसकी चास लगाइ के रे, खूब रँगी झकझोर ॥ २ ॥

सतगुरु ने चुनरी रँगी रे, सतगुरु चतुर सुजान ।
सब कुछ उन पर वार दूँ रे, तन मन धन औ प्रान ॥ ३ ॥

कहै कबीर रँगरेज गुरु रे, मुझ पर हुए दयाल ।
सीतल चुनरी ओढ़ि के रे, भइ हौं मगन निहाल ॥ ४ ॥

---

(१) चिहरा ।

॥ शब्द ५ ॥

कब गुरु मिलिहैं सनेही आइ ॥ टेक ॥
लोभ मोह के जार[1] बनो है, ता मैं रह्यो अरुझाय ।
जाकी साची लगन लगी है, सो वा घर को जाइ ॥ १ ॥
सुरत समानी सबद कुंड मैं, निरत रही लै लाइ ।
पिया बिना यौं प्यारी तलफै, तलफि तलफि जिय जाइ ॥२॥
चलो सखी वा देसै चलिये, जहाँ पुरुष को ठाँइ ।
हंस हिरंबर[2] चँवर ढुरत हैं, तन की तपन बुझाइ ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सबद सुनो चित लाइ ।
नाम पान पाँजी[3] जो पावै, सो वा लोकै जाइ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

प्रीत लगी तुम नाम की, पल बिसरै नाहीं ।
नजर करो अब मिहर की, मोहिं मिलो गुसाईं ॥ १ ॥
बिरह सतावै मोहिं के, जिव तड़पै मेरा ।
तुम देखन की चाव है, प्रभु मिलो सवेरा ॥ २ ॥
नैना तरसै दरस को, पल पलक न लागै ।
दर्दवंद दीदार का, निसि बासर जागै ॥ ३ ॥
जो अब के प्रीतम मिलैं, करूँ निमिष[4] न न्यारा ।
अब कबीर गुरु पाइया, मिला प्रान पियारा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ७ ॥

जो तू पिय की लाड़ली, अपना करिले री ।
कलह कल्पना मेट के, चरनन चित दे री ॥ १ ॥
पिय को मारग कठिन है, खाँड़े की धारा[5] ।
डिगमिगै तो गिरि पड़ै, नहिं उतरै पारा ॥ २ ॥

---

(१) जाल । (२) सुनहरे रंग के । (३) रास्ता । (४) छिन भर । (५) धार, चोखा रुख़ तलवार का ।

पिय कौ मारग सुगम है, तेरा चाल अनेड़ा ।
नाचि न जानै बावरी, कहै आँगन टेढ़ा ॥ ३ ॥
जो तू नाचन नीकसी, तो घूँघट कैसा ।
घूँघट का पट खोलि दे, मत करै अँदेसा ॥ ४ ॥
चंचल मन इत उत फिरै, पतिब्रत जनावै ।
सेवा लागी आन की, पिय कैसे पावै ॥ ५ ॥
पिय खोजत ब्रम्हा थके, सुर नर मुनि देवा ।
कहै कबीर विचारि के, कर सतगुरु सेवा ॥ ६ ॥

॥ शब्द ८ ॥

आज सुहाग की रात पियारी ।
क्या सोवै मिलने की बारी ॥ १ ॥
आये ढोल बजावत बाजन ।
बनरी[1] ढाँपि रही मुख लाजन ।
खोल घूँघट मुख देखैगा साजन ॥ २ ॥
सिर सोहै सेहरा हाथ सोहै कँगना ।
झूमत आवै बन्ना[2] मेरे अँगना ॥ ३ ॥
कहत कबीर कर दरपन लीजै ।
अब मन मानै सोइ सोइ कीजै ॥ ४ ॥

॥ शब्द ९ ॥

बहुत दिनन मैं प्रीतम आये ।
भाग भले घर बैठे पाये ॥ १ ॥
मंगलचार महा मन राखो ।
नाम रसायन रसना[3] चाखो ॥ २ ॥

(१) दुलहिन । (२) दुलहा । (३) जीभ ।

मंदिर महा भयो उजियारा ।
लै सूती अपनो पिय प्यारा ॥ ३ ॥
मैं निरास जो नौनिधि पाई ।
कहा करूँ पिय तुमरी बड़ाई ॥ ४ ॥
कहै कबीर मैं कछु नहिं कीन्हा ।
सहज सुहाग पिया मोहिं दीन्हा ॥ ५ ॥

॥ शब्द १० ॥

हूँ वारी[1] मुख फेर[2] पियारे ।
करवट दे मोहिं काहे को मारे ॥ १ ॥
करवत[3] भला न करवट तोरी ।
लाग गले सुन बिनती मोरी ॥ २ ॥
हम तुम बीच भया नहिं कोई ।
तुमहिं सो कंत नारि हम होई ॥ ३ ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई ।
अब तुम्हरी परतीति न होई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ११ ॥

सूतल रहलूँ मैं नींद भरि हो, गुरु दिहलैं जगाइ ॥टेक॥
चरन कँवल के अंजन हो, नैना लेलूँ लगाइ ।
जा से निँदिया न आवै हो, नहिं तन अलसाइ ॥ १ ॥
गुरु के बचन निज सागर हो, चलु चली हो नहाइ ।
जनम जनम के पपवा हो, छिन मैं डारब धुवाइ ॥ २ ॥
वहि तन कै जग दीप कियो, सुत बतिया लगाइ ।
पाँच तत्त कै तेल चुआये, ब्रम्ह अगिन जगाइ ॥ ३ ॥

---

(१) बलिहारी । (२) मेरी तरफ़ मुँह कर । (३) छुरी ।

सुमति गहनवाँ पहिरलौँ हो, कुमति दिहलौँ उतार।
निर्गुन मँगिया सँवरलौँ हो, निर्भय सँदुर लाइ ॥ ४ ॥
प्रेम पियाला पियाइ के हो, गुरु दियो बैाराइ।
बिरह अगिन तन तलफै हो, जिय कछु न सुहाइ ॥ ५ ॥
ऊँच अटरिया चढ़ि बैठलुँ हो, जहँ काल न खाइ।
कहै कबीर बिचारि के हो, जम देखि डेराय ॥ ६ ॥

॥ शब्द १२ ॥

तेरो को है रोकनहार, मगन से आव चली ॥ टेक ॥
लोक लाज कुल की मर्जादा, सिर से डारि अली।
पटक्यो भार मोह माया कौ, निरभय राह गही ॥ १ ॥
काम क्रोध हंकार कलपना, दुरमति दूर करी।
मान अभिमान दोऊ घर पटक्यो, होइ निसंक रली ॥२॥
पाँच पचीस करे बस अपने, करि गुरु ज्ञान छड़ी।
अगल बगल के मारि उड़ाये, सनमुख डगर धरी ॥ ३ ॥
दया धर्म हिरदे धरि राख्यो, पर उपकार बड़ी।
दया सरूप सकल जीवन पर, ज्ञान गुमान भरी ॥ ४ ॥
छिमा सील संतोष धीर धरि, करि सिंगार खड़ी।
भई हुलास मिली जब पिय को, जगत बिसारि चली ॥५॥
चुनरी सबद बिबेक पहिरि के, घर की खबर परी।
कपट किवरिया खोल अंतर की, सतगुरु मेहर करी ॥६॥
दीपक ज्ञान धरे कर अपने, पिय को मिलन चली।
बिहसत बदन रु मगन छबीली, ज्यौँ फूली कँवल कली ॥७॥
देख पिया को रूप मगन भइ, आनँद प्रेम भरी।
कहै कबीर मिली जब पिय से, पिय हिय लागि रही ॥८॥

॥ शब्द १३ ॥

सबद की चोट लगी है तन मैं ।
घर नहिँ चैन चैन नहिँ बन मैं ॥ १ ॥
ढूँढ़त फिरौँ पीव नहिँ पावौँ ।
औषधि मूर खाइ गुजरावौँ[1] ॥ २ ॥
तुम से वैद न हम से रोगी ।
बिन दिदार क्यौँ जिये बियोगी ॥ ३ ॥
एकै रंग रँगी सब नारी ।
ना जानौँ को पिय की प्यारी ॥ ४ ॥
कहै कबीर कोइ गुरुमुख पावै ।
बिन नैनन दीदार दिखावै ॥ ५ ॥

॥ शब्द १४ ॥

चली मैँ खोज मैँ पिय की, मिटी नहिँ सोच यह जिय की ॥१
रहै नित पासही मेरे, न पाऊँ यार को हेरे ॥ २ ॥
विकल चहुँ ओर को धाऊँ, तबहु नहिँ कंत को पाऊँ ॥३॥
धरूँ केहि भाँति से धीरा, गयो गिरि हाथ से हीरा ॥ ४ ॥
कटी जब नैन की झाईँ[2], लख्यो तब गगन मैँ साईँ ॥ ५॥
कबीरा सबद कहि भासा, नैन मैँ यार को बासा ॥ ६ ॥

॥ शब्द १५ ॥

राखि लेहु हम तैँ बिगरी ॥ टेक ॥
सील धरम जप भगति न कीन्ही, हौँ अभिमान टेढ़ पगरी[3] ॥१
अमर जानि संची यह काया, सो मिथ्या काँची गगरी ॥२॥
जिन निवाज[4] साज सब कीन्हे, तिनहिँ बिसारि और लग री ३

(१) नाम के आधार से जिऊँ। (२) जाला। (३) पगड़ी। (४) दया करके।

संधिक[1] साध कबहु नहिं भेटयो, सरन परै जिन की पग[2] री ४
कहै कबीर इक बिनती सुनिये, मत घालो[3] जम की खब[4] री ५

॥ शब्द १६ ॥

दरस तुम्हारे दुर्लभ, मैं तो भइ हुँ दिवानी ॥ टेक ॥
ठाँव ठाँव पूजा करैं, मिलि सखी सयानी ।
पिय के मरम न जानहीं, सब भर्म भुलानी ॥ १ ॥
वैस[5] गई पिय ना मिले, जरि जात जवानी ।
आइ बुढ़ापा घेरि लियो, अब का पछितानी ॥ २ ॥
पानन सी पियरी भई, दिन दिन पियरानी ।
आग लगै उहि जोबना, सोवै सेज बिरानी ॥ ३ ॥
अजहूँ तेरो ना गयो, सुमिरो सतनामा ।
कहै कबीर धर्मदास से, गहु पद निर्बाना ॥ ४ ॥

॥ शब्द १७ ॥

दरमाँदा[6] ठाढ़ो तुम दरबार ॥ टेक ॥
तुम बिन सुरत करै को मेरी, दरसन दीजे खोल किवार ॥१॥
तुम सम धनी उदार न कोऊ, सर्वन सुनियत सुजस तुम्हार ॥२॥
माँगौं कौन रंक[7] सब देखौं, तुम ही तैं मेरो निस्तार[8] ॥३
कहत कबीर तुम समरथ दाता, पूरन पद को देत न बार[9] ॥४

॥ शब्द १८ ॥

सुनहु अहो मेरी राँध[10] परोसिन, आज सुहागिन अनँद भरी ॥टेक
सबद बान सतगुरु ने मार्यो, सोवत तैं धन चौंक परी ।
बहुत दिनन तैं गइ मैं खेलन, बिन सतगुरु अब भटकि मरी ॥१

(१) मालिक से मेला कराने वाला । (२) चरन । (३) । डालो (४) खड्ड ।
(५) उमर । (६) दीन । (७) दरिद्र । (८) उबार । (९) देर । (१०) एक दिल ।

या तन मैं बट मार बहुत हैं, छिन छिन रोकत घरी घरी ।
जब प्रीतम कि धुनि सुनि पाई, छाड़ि सखिन भइ बिलग खड़ी ॥२
पाँच पचीस किये बस अपने, पिया मिलन की चाह धरी ।
सबद बिबेक चुनरिया पहिरे, ज्ञान गली मैं भई खड़ी ॥३॥
दीपक ज्ञान लिये कर अपने, निरखि पुरुष भइ मोद[1] भरी ।
मिटि गौ भर्म दूरि भयो धोखो, उलटि महल मैं खबर परी॥४
देखि पिया को रूप मगन भइ, निरखि सेज पर धाय चढ़ी ।
करत बिलास पिया अपने सँग, पौँढ़ि सेज पर प्रेम भरी ॥५॥
सुख सागर से बिलसन लागी, बिछुरे पिय धन[2] मिलि जो गई ।
कहै कबीर मिली जब पिय से, जनम जनम को अमर भई ॥६

॥ शब्द १९ ॥

अब तोहि जान न दैहौं पिउ प्यारे ।
ज्यौं भावै त्यौं रहो हमारे ॥ १ ॥
बहुत दिनन के बिछुड़े पाये ।
भाग भले घर बैठे आये ॥ २ ॥
चरनन लागि करौं सेवकाई ।
प्रेम प्रीति राखौं अरुझाई ॥ ३ ॥
आज बसो मम मंदिर चोखे ।
कहै कबीर पड़ौ नहिं धोखे ॥ ४ ॥

॥ शब्द २० ॥

अविनासी दुलहा कब मिलिहौ, भक्तन के रछपाल[3] ॥टेक॥
जल उपजी जल ही से नेहा, रटत पियास पियास ।
मैं विरहिनि ठाढ़ी मग जोऊँ[4], प्रीतम तुम्हरी आस ॥१॥

---

(१) आनंद । (२) स्त्री । (३) रक्षा करने वाले । (४) राह देखूँ ।

छोड़्यो गेह[1] नेह लगि तुम से, भई चरन लैालीन ।
तालावेलि[2] होत घट भीतर, जैसे जल बिन मीन ॥२॥
दिवस न भूख रैन नहिँ निद्रा, घर अँगना न सुहाय ।
सेजरिया वैरिनि भइ हम को, जागत रैन बिहाय[3] ॥३॥
हम तो तुम्हरो दासी सजना, तुम हमरे भरतार ।
दीनदयाल दया करि आओ, समरथ सिरजनहार ॥ ४ ॥
कै हम प्रान तजतु हैँ प्यारे, कै अपनी करि लेव ।
दास कबीर बिरह अति बाढ़्यो, अब तो दरसन देव ॥५॥

॥ शब्द २१॥

हम तो एक ही करि जानो ॥ टेक ॥
दोय कहै तेहि को दुबिधा है, जिन सत नाम न जानो ॥१॥
एकै पवन एक ही पानी, एकै जोति समानो ॥ २ ॥
इक मट्टी कै घड़ा गढ़ैला, एकै कोहँरा[4] सानो ॥ ३ ॥
माया देखि के जगत लुभानो, काहे रे नर गरवानो[5] ॥४॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गुरु के हाथ काहे न बिकानो ॥५

॥ शब्द २२ ॥

मैँ देख्यो तोरी नगरी अजब जोगिया ॥टेक॥
जोगी कै मड़ैया अजब अनूप ।
उलटी नीम दई महबूब ॥ १ ॥
जट बिन लट बिन अँग न भभूत ।
लखि न पड़े जोगी ऐसो अवधूत ॥ २ ॥
जोगिया की नगरी बसो मत कोय ।
जो रे बसै सो जोगिया होय ॥ ३ ॥

---

(१) घर । (२) बेकली । (३) बीतती है । (४) कुम्हार । (५) घमंड करता है ।

कह कबीर जोगी बरनो न जाय ।
जहँ देखो गुरुगम पतियाय ॥ ४ ॥

॥ शब्द २३ ॥

मोरी रँगी चुनरिया धो धुबिया ॥ १ ॥
जनम जनम के दाग चुनर के, सतसँग जल से छुड़ा धुबिया॥२
सतगुरु ज्ञान मिले फल चारी, सबद कै कलप चढ़ा धुबिया॥३
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गुरु के चरन चित ला धुबिया॥ ४

॥ शब्द २४ ॥

चुनरिया पचरँग हमैं न सुहाय ॥ टेक ॥
पाँच रंग कै हमरी चुनरिया,
नाम बिना रँग फीक दिखाय ॥ १ ॥
यह चुनरी मोरे मैके से आई,
अपने गुरु से ल्यौं बदलाय ॥ २ ॥
चुनरि पहिरि धन निकसी बजरिया,
काल बली लिहले पछुवाय ॥ ३ ॥
तोरी चुनर पर साहिब रीझै,
जम दहिजरवा फिरि फिरि जाय ॥ ४ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो,
को अब आवै को घर जाय ॥ ५ ॥

॥ शब्द २५ ॥

कौन रँगरेजवा रँगै मोरी चुनरी ॥ टेक ॥
पाँच तत्त कै बनी चुनरिया,
चुनरी पहिरि के लागै बड़ सुँदरी ॥ १ ॥

टेकुआ तागा कर्म कै धागा,
गर विच हरवा हाथ विच मुँदरी ॥ २ ॥
सोरहो सिँगार वतीसो अभरन,
पिय पिय रटत पिया सँग घुमरी ॥ ३ ॥
कहै कवीर सुनो भाई साधो,
विन सतसंग कैान विधि सुघरी ॥ ४ ॥

॥ शब्द २६ ॥

हुआ जब इस्क मस्ताना । कहैँ सब लोग दीवाना ॥ १ ॥
जिसे लागी सोई जाना । कहे से दर्द क्या माना ॥ २ ॥
कीट को ले उड़ी भृङ्गी । किया उन आप सौँ रंगी ॥ ३ ॥
सुषमना तत्त झनकारा । लखै कोइ नाम का प्यारा ॥४॥
मैँ तेरा दास हूँ वंदा । तुझी के नेह मैँ फंदा ॥ ५ ॥
ममत की खान मैँ डूबा । कहो कस मिले महबूबा ॥ ६ ॥
साहिब टुक मिहर से हेरो । दास को जक्त से फेरो ॥७॥
कवीरा तालिबा[1] तेरा । किया दिल बीच मैँ डेरा ॥ ८ ॥

॥ शब्द २७ ॥

सुन सतगुरु की तान नींद नहिँ आती ।
विरहा मैँ सूरत गई पछाड़े खाती ॥ टेक ॥
तेरे घट मैँ हुआ अँधेर भरम की राती ।
भइ न पिय से भैँट रही पछिताती ॥ १ ॥
सखि नैन सैन से खोजि ढूँढ़ि लेआती ।
मेरे पिया मिले सुख चैन नाम गुन गाती ॥ २ ॥

---

(१) खोजी ।

तेरि आवागवन की त्रास सबै मिटि जाती ।
छबि देखत भइ है निहाल काल मुरझाती ॥ ३ ॥
सखि मानसरोवर चलो हंस जहँ पाँती ।
कहै कबीर बिचार सीप मिलि स्वाँती ॥ ४ ॥

॥ शब्द २८ ॥

तलफै बिन बालम मोरा जिया ॥ टेक ॥
दिन नहिं चैन रैन नहिं निँदिया ।
तलफ तलफ के भोर किया ॥ १ ॥
तन मन मोर रहट अस डोलै ।
सूनी सेज पर जनम छिया[1] ॥ २ ॥
नैन थकित भये पन्थ न सूझै ।
साइँ बेदरदी सुधि न लिया ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो ।
हरो पीर दुख जोर किया ॥ ४ ॥

॥ शब्द २९ ॥

खालिक खूबै खूब ही, मोहिं मिलन दुहेला[2] ।
महरम कोई ना मिलै, बन फिरूँ अकेला ॥ १ ॥
बिरह दिवाना मैं फिरूँ, दिल मैं लै लागी ।
मरम न पाया दास ने, तन तपन न भागी ॥ २ ॥
मैं तरसत तोहि दरस को, तुम दरस न दीन्हा ।
नैन चहैं दीदार को, भये बहुत अधीना ॥ ३ ॥
सुरत निरत करि निरखिया, तन मन भये धीरा ।
नूर देखि दिलदार का, गुन गावै कबीरा ॥ ४ ॥

---

(१) बरबाद हुआ । (२) कठिन ।

॥ शब्द ३० ॥

प्रेम सखी तुम करो बिचार ।
बहुरि न आना यहि संसार ॥ १ ॥
जो तोहि प्रेम खिलनवा चाव ।
सीस उतारि महल मैं आव ॥ २ ॥
प्रेम खिलनवा यही सुभाव ।
तू चलि आव कि मोहिं बुलाव ॥ ३ ॥
प्रेम खिलनवा यही बिसेख[1] ।
मैं तोहि देखूँ तू मोहिं देख ॥ ४ ॥
खेलत प्रेम बहुत पचि हारी ।
जो खेलिहै सो जग से न्यारी ॥ ५ ॥
दीपक जरै बुझै चहे बाति ।
उतरन न दे प्रेम रस माति ॥ ६ ॥
कहत कबीरा प्रेम समान[2] ।
प्रेम समान[3] और नहिं आन ॥ ७ ॥

॥ शब्द ३१ ॥

साचा साहिब एक तू, बंदा आसिक तेरा ॥ टेक ॥
निसदिन जप तुझ नाम का, पल बिसरै नाहीं ।
हर दम राख हजूर मैं, तू साचा साईं ॥ १ ॥
गफलत मेरी मेटि के, मोहिं कर हुसियारा ।
भगति भाव बिस्वास मैं, देखौं दरस तुम्हारा ॥ २ ॥
सिफत तुम्हारी क्या करौं, तुम गहिर गँभीरा ।
सूरत मैं मूरत बसै, सोइ निरख कबीरा ॥ ३ ॥

---

(१) बड़ाई । (२) समाया । (३) बराबर ।

॥ शब्द ३२ ॥

ननदी जाव रे महलिया, आपन बिरना[1] जगाव ॥ टेक ॥
भौजी सोवै जगाये न जागै, लै न सकै कछु दाव ।
काया गढ़ में निसि अँधियरिया, कौन करै वा को भाव ॥१॥
मन कै अगिन दया कै दीपक, बाती प्रेम जगाव ।
तत्त कै तेल चुवै दीपक में, मदन[2] मसाल जराव ॥ २ ॥
भरम कै ताला लगे मन्दिर में, ज्ञान की कुंजी लगाव ।
कपट किवरिया खोलि के रे, यहि बिधि पिय को जगाव ॥३
ब्रम्हंड पार वह पति सुंदर है, अब से भूलि जिनि जाव ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, फिरि न लगै अस दाव ॥४॥

॥ शब्द ३३ ॥

घूँघट का पट खोल रे, तो को पीव मिलैंगे ॥टेक॥
घट घट में वहि साईं रमता ।
कटुक[3] बचन मत बोल रे, (तो को पीव) ॥१॥
धन जोबन का गर्ब न कीजै ।
झूठा पँचरँग चोल[4] रे, (तो को पीव) ॥२॥
सुन्न महल में दियना बारि ले ।
आसा से मत डोल रे, (तो को पीव) ॥३॥
जोग जुगत से रंगमहल में ।
पिय पाये अनमोल रे, (तो को पीव) ॥४॥
कहै कबीर अनंद भयो है ।
बाजत अनहद ढोल रे, (तो को पीव) ॥५॥

॥ शब्द ३४ ॥

सैयाँ बुलावे मैं जैहौं ससुरे ।
जल्दी से महरा डोलिया कस रे ॥ १ ॥

---

(१) भाई । (२) काम । (३) कडुवा । (४) पाँच तत्वों का शरीर ।

नैहर के सब लोग छुटत रे।
कहा करूँ अब कछु नहिं बस रे ॥ २ ॥
वीरन[1] आवो गरे तोरे लागोँ।
फेर मिलब है न जानौं कस रे ॥ ३ ॥
चालनहार भई मैं अचानक।
रहैाँ बाबुल[2] तोरी नगरी सुबस रे ॥ ४ ॥
सात सहेली ता पै अकेली।
संग नहीं कोउ एक न दस रे॥ ५ ॥
गवना चाला तुराव[3] लगो है।
जो कोउ रोवै वा को न हँस रे ॥ ६ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो।
सैयाँ के महल मैं बसहु सुजस रे ॥ ७ ॥

॥ शब्द ३५ ॥

गुरु दियना बारु रे, यह अंध कूप संसार ॥ टेक ॥
माया के रँग रची सब दुनियाँ, नहिं सूझ परत करतार ॥१॥
पुरुष पुरान बसै घट भीतर, तिनुका ओट पहार ॥२॥
मृग के नाभि बसत कस्तूरी, सूँघत भ्रमत उजार[4] ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, छूटि जात भ्रम जार ॥४॥

॥ शब्द ३६ ॥

पायौ सतनाम गरे कै हरवा ॥ टेक ॥
साँकर खटोलना रहनि हमारी, दुबरे दुबरे पाँच कहरवा ॥१
ताला कुंजी हमैं गुरु दीन्हो, जब चाहैाँ तब खोलैाँ किवरवा २

(१) भाई। (२) बाप। (३) पंजाबी बोली मैं "तुरो" का अर्थ "चलो" है।
(४) जंगल मैं दौड़ता है।

प्रेम प्रीति कै चुनरी हमरी, जब चाहैँ तब नाचैँ सहरवा॥३
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बहुरि न ऐबै एहि नगरवा ॥४॥

॥ शब्द ३७ ॥

भजन मेँ होत अनंद अनंद ।
बरसत बिसद[1] अमी के बादर, भीँजत है कोइ संत ॥१॥
अगर बास जहँ तत की नदिया, मानो धारा गंग ।
करि असनान मगन होइ बैठी, चढ़त सबद कै रंग॥२॥
रोम रोम जा के अमृत भीना, पारस परसत अंग ।
सबद गह्यो जिव संसय नाहीँ, साहिब भये तेरे संग ॥३॥
सोई सार रच्यो मेरे साहिब, जहँ नहिँ माया अहं ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जपो सोहं सोहं ॥ ४ ॥

॥ शब्द ३८ ॥

नाम अमल उतरै ना भाई ॥ टेक ॥
और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै,
नाम अमल दिन बढ़ै सवाई ॥ १ ॥
देखत चढ़ै सुनत हिये लागै,
सुरत किये तन देत घुमाई ॥ २ ॥
पियत पियाला भये मतवाला,
पायो नाम मिटी दुचिताई ॥ ३ ॥
जो जन नाम अमल रस चाखा,
तर गइ गनिका सदन कसाई ॥ ४ ॥
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया,
बिन रसना[2] क्या करै बड़ाई ॥ ५ ॥

---

(१) निर्मल । (२) ज़बान ।

होली

॥ शब्द १ ॥

मैं तो वा दिन फाग मचैहौं, जा दिन पिय मोरे द्वारे ऐहैं॥टेक
रंग वही रँगरेजवा वाही, सुरँग चुनरिया रँगैहौं ॥ १ ॥
जोगिनि होइ के बन बन ढूँढ़ौं, वाही नगर में रहिहौं ॥२॥
बालपने गल सेल्ही बनैहौं, अंग भभूत लगैहौं ॥ ३ ॥
कहै कबीर पिय द्वारे ऐहैं, केसर माथ रँगैहौं ॥ ४ ॥

॥ शब्द २ ॥

ये अँखियाँ अलसानी हो, पिय सेज चलो ॥ टेक ॥
खंभ पकरि पतंग अस डोलै, बोलै मधुरी बानी ॥ १ ॥
फूलन सेज बिछाइ जो राख्यौ, पिया बिना कुम्हिलानी ॥२
धीरे पाँव धरौ पलँगा पर, जागत ननद जिठानी ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, लोक लाज बिलछानी[1] ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

होरी खेलत फाग बसंत, सतसँग होइ रहु जोधा ॥
तन मन भेंटि मिलौ जिव साचे, अंतर बिछोह न राखौ ।
मगन होइ सेवा में सन्मुख, मधुर बचन सत भाखौ ॥१॥
होइ दयाल संत घर आवैं, चरनामृत करि पावौ ।
महा प्रसाद सीत मुख लेवौ, या बिधि जनम सुधारौ ॥२॥
सील सँतोष सदा सम दृिष्टी, रहनि गहनि में पूरा ।
जा के दरस परस भय भाजे, होइ कलेस सब दूरा ॥३॥
निसि बासर चरचा चित चंदन, आन कथा न सुहावै ।
सीतल सबद लिये पिचुकारी, भरम गुलाल उड़ावै ॥४॥

---

(१) छोड़ी ।

सब्द सरूप अखंडित अविचल, निर्भय बेपरवाई ।
कहै कबीर ताहि पग परसौ, घट घट सब सुखदाई ॥५॥

॥ शब्द ४ ॥

उड़िजा रे कुमतिया काग उड़िजा रे ॥ टेक ॥
तुम्हरो बचन मोहिं नीक न लागै। स्रवन सुनत दुख जागै ॥१
कोइल बोल सुहावन लागै । सब सुनि सुनि अनुरागै ॥२॥
हमरे सैयाँ परदेस बसतु हैं । मोर चित चरनन लागै॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो । गुरू मिलैं बड़ भागै ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबहीं मोरी बारी ॥टेक
साज समाज पिया लै आये, और कहरिया चारी ।
बम्हना बेदरदी अचरा पकरि के, जोरत गँठिया हमारी।
सखी सब पारत गारी ॥१॥
विधि[1] गति बाम कछु समझ परत ना, बैरी भई महतारी।
रोइ रोइ अँखियाँ मोर पोंछत, घरवाँ से देत निकारी।
भई सब को हम भारी ॥ २ ॥
गवन कराइ पिया लै चाले, इत उत बाट निहारी ।
छूटत गाँव नगर से नाता, छूटे महल अटारी
करम गति टरै न टारी ॥ ३ ॥
नदिया किनारे बलम मोर रसिया, दीन्ह घुँघट पट टारी।
थरथराय तन काँपन लागे, काहू न देखि हमारी ।
पिया लै आये गोहारी ॥ ४ ॥

(१) ब्रह्मा ।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद लेहु बिचारी ।
अब के गौना बहुरि नहिं औना, करिले भेंट अँकवारी ।
एक बेर मिलि ले प्यारी ॥ ५ ॥

॥ शब्द ६ ॥

खेलै फाग सबै नर नारी, हाथ लकुट[१] मुख मैं गारी ॥टेक॥
घर से निकसीं बनी[२] सुन्दरी, भाँति भाँति पहिरे सारी ।
अबिर गुलाल लिये भर झोरी, मिलन चलीं पिय की प्यारी॥१
अपने अपने झुंडन मिल करि, गावत बिरध तरुन बारी[३]।
पहुँचीं जाइ जहँ पिय मन्दिर है, बर बैठे मूरति धारी ॥२॥
को चितवै को बोलै का सोँ, निरजिव रूप कहूँ का री ।
निहुरि निहुरि सब पैयाँ परतु हैं, यह देखो अचरज भारी ॥३
सबै सखी मिलि मुरुक[४] चली हैं, कोइ न गहै सँग पिय प्यारी।
सुर नर मुनि सब ही अस भूले, परम पुरुष की गति न्यारी ॥४
ये सब भरम छोड़ि दे बौरी, क्यौं अब जनम जुआ हारी ।
कहै कबीर आपन पति चीन्हो, सुख सागर चेतन सारी[५] ॥५

॥ शब्द ७ ॥

बावरो सखि ज्ञान है मेरा ॥ टेक ॥
मातु पिता मोहिं नितहि सिखावैं, बरजैं बेरी बेरा ।
जैान कौल करि आयो पिय से, सो गुन एक न हेरा,
कहैं औगुन बहुतेरा ॥ १ ॥
आय गयो अनुहार[६] रे सजनी, कियो दरवजवैं डेरा ।
जल्दी डोलिया फँदाय माँगे बलमू, लावै न तनिको देरा,
देखैं सब लोग घनेरा ॥ २ ॥

(१) छड़ी । (२) बनी ठनी । (३) बूढ़ी, जवान और लड़की । (४) मुड़ । (५) पूरा । (६) बुलानेवाला ।

रोय रोय सब पूछन लागीं, कब करिहौ तुम फेरा।
सात समुद्र पार तोरा सासुर, लौटब कठिन करेरा,
जहाँ कहुँ नाव न बेड़ा ॥ ३ ॥
कहै कबीर जब पिय से मिलौंगी, जिया न्यौछावर मेरा।
आवागवन न है या नगरी, यह लेखा सब केरा,
झूठ दुनिया का बसेरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द ८ ॥

कैसे खेलौं पिया सँग होरी, दुबिधा रार मचाय रही रे ॥ टेक
पाँच पचीसो फाग रच्यो है, ममता रंग बनाय रही रे।
नाचत काल करम के आगे, संसा भाव बताय रही रे ॥१॥
करिके सिंगार कुमति बनि बैठी, भरम के घुँघरू बजाय रही रे।
तीनौं ताल मृदंग बजावैं, मैं मैं रागिनि छाय रही रे ॥२॥
कपट कटोरा मद बिष भरि भरि, तृस्ना मन को छकाय रही रे।
याहि जीव को बस करि अपने, हंस को काग बनाय रही रे ३
जानि बूझि के सुनो भाई साधो, संत जनन ने पीठ दई रे।
दास कबीर कहै कर जोरी, हमरी तो ऐसिही बीति गई रे ॥४

॥ शब्द ९ ॥

नित मंगल होरी खेलो, नित बसंत नित फाग ॥ टेक ॥
दया धर्म की केसर घोरो, प्रेम प्रीति पिचुकार।
भाव भगति से भरि सतगुरु तन, उमँग उमँग रँग डार ॥१॥
छिमा अबीर चरच[1] चित चंदन, सुमिरन ध्यान धमार।
ज्ञान गुलाल अगर कस्तूरी, सुफल जनम नर नार ॥ २ ॥

---
(१) छिड़क कर।

चरनामृत परसाद चरन रज, अपने सीस चढ़ाव ।
लोक लाज कुल कान छाड़ि के, निरभय निसान बजाव ॥३
कथा कीरतन मँगल महोछव, कर साधन की भीर ।
कभी न काज बिगरिहै तेरो, सत सत कहत कबीर ॥ ४ ॥

॥ शब्द १० ॥

मन तोहिं नाच नचावे माया ॥ टेक ॥
आसा डोरि लगाइ गले बिच, नट जिमि कपिहि[1] नचाया ।
नावत सीस फिरै सबही को, नाम सुरत बिसराया ॥ १ ॥
काम हेतु तुम निसि दिन नाचे, का तुम भरम भुलाया ।
नाम हेतु तुम कबहुँ न नाचे, जो सिरजल[2] तोरी काया ॥२
ध्रू प्रहलाद अचल भये जा से, राज बिभीखन पाया ।
अजहूँ चेत हेत कर पिउ से, हे रे निलज बेहाया ॥ ३ ॥
सुख सम्पति सब साज बड़ाई, लिखि तेरे साथ पठाया ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, गनिका बिवान चढ़ाया ॥४

॥ शब्द ११ ॥

पिय बिन होरी को खेलै, बावरी भइ डोलै ॥ टेक ॥
बाबा हमारे ब्याह रच्यो है, बर बालक हूँ स्यानी ।
सैयाँ हमारे झूलैं पलना, हमहिं झुलावनहारी ॥ १ ॥
नौवा भूले बरिया भूले, भूले पंडित ज्ञानी ।
मातु पिता दोउ अपनि गरज के, हमरो दरद न जानी ॥२॥
अनब्याही मन हौस[3] करतु हैं, ब्याही तो पछितानी ।
गौने से मौने होइ बैठी, समुझ समुझ मुसकानी ॥ ३ ॥
वै मुसकानी वै हुलसानी, बिचलत ना दोउ नैना ।
दास कबीर कहै सोइ लखि गइ, सखी सहेलि की सैना ॥४॥

---

(१) बंदर को । (२) पैदा किया । (३) चाव ।

॥ शब्द १२ ॥

गगन मँडल अरुझाई, नित फाग मची है ॥ टेक ॥
ज्ञान गुलाल अबीर अरगजा, सखियाँ लै लै धाईं ।
उमँगि उमँगि रँग डारि पिया पर, फगुवा देहु भलाई ॥१॥
गगन मँडल बिच होरी मची है, कोइ गुरु गम तें लखि पाई ।
सबद डोर जहँ अगर ढरतु है, सोभा बरनि न जाई ॥ २ ॥
फगुवा नाम दियौ मोहिं सतगुरु, तन की तपन बुझाई ।
कहै कबीर मगन भइ बिरहिनि, आवागवन नसाई ॥ ३ ॥

॥ शब्द १३ ॥

बिरहिनि झकोरा मारी, को बूझै गति न्यारी ॥ टेक ॥
चोवा चन्दन अबिर अरगजा, करनी कै केसर घोरी ।
प्रेम प्रीति कै भरि पिचुकारी, रोम रोम रँगी सारी ॥१॥
इँगला पिँगला रास रचो है, सुखमन बाट बहोरी ।
खेलत हैं कोइ संत बिरहिया, जोग जुगति लगी तारी ॥ २ ॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, तुरही तान नफीरी[1] ।
सुरत निरत जहँ नाचन निकसे, बाढ़त रंग अपारी ॥ ३ ॥
फागुन के दिन आनि लगे री, अब कैसे काह करो री ।
दास कबीर आतम परमातम, खेलत बहियाँ मिरोरी ॥ ४ ॥

॥ शब्द १४ ॥

का सँग होरी खेलौं हो, बालम परदेसवा ॥ टेक ॥
आई है अब रितु बसंत की, फूलन लागे टेसुवा ।
वस्त्र रँगीले पहिरन लागे, बिरहिनि ढारत अँसुवा ॥ १ ॥
भरि गये ताल तलैया सागर, बोलन लागे मेघवा[2] ।
उमड़ी नदी नाव कहँ पाओं, केहि बिधि लिखौं सँदेसवा ॥ २ ॥

---

(१) एक बाजा शहनाई का सा जो मुँह से बजाया जाता है । (२) मेंडक ।

जो जो गये बहुरि नहिं आये, कैसन है वह देसवा ।
आवत जावत लखै न कोई, येहो मोहिं अँदेसवा ॥ ३ ॥
बालापन जोबन दोउ बीते, पाकन लागे केसवा ।
कहै कबीर निज नाम सम्हारी, लै सतगुरु उपदेसवा ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

कोइ मो पै रंग न डारौ, मैं तो भइ हूँ बौरी ॥टेक॥
इक तो बौरी दूजे बिरह की मारी, तीजे नेह लगो री ॥१॥
अपने पिय सँग होरी खेलौँ, येही फाग रचो री ॥२॥
पाँच सुहागिनि होरी खेलैं, कुमति सखी से न्यारी ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आवागवन निवारी ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

ऐसी खेल ले होरी जोगिया, जा मैं आवागवन तजि डारी॥
ज्ञान ध्यान कै अबिर गुलाल लै, सुरति किये पिचुकारी ।
भक्ति भभूत लै अँग पर डारौ, मृग मुद्रा नृतकारी ॥१॥
सील सँतोष कै पहिरि चोलना, छिमा टोप सिर धारी ।
बिरह बैराग कै कानन मुद्रा, अनहद लाओ तारी ॥२॥
प्रीति प्रतीति नारि सँग लैलै, केसर रंग बना री ।
ब्रम्ह नगर मैं होरी खेलो, अलख रंग भरि झारी ॥३॥
काम क्रोध अरु मोह लोभ कै, कीच दूर तजि डारी ।
जनम मरन की दुबिधा मेटौ, आसा तृस्ना मारी ॥४॥
निर्गुन सर्गुन एकहि जानौ, भरम गुफा मत जा री ।
आनँद अनुभव उर मैं धारौ, अनहद मृदँग बजा री ॥५॥
जल थल जीव औ जन्तु चराचर, एकहि रूप निहारी ।
दास कबीर से होरी मचाओ, खेलो जग मैं धमारी ॥६॥

॥ शब्द १७ ॥

खेलौ नित मंगल होरी, नित बसंत नित मंगल होरी ॥टेक
दया धरम की केसर घोरी, प्रेम प्रीति पिचुकारी ।
भाव भक्ति छिड़कै सतगुरु पैं, सुफल जनम नर नारी ॥१॥
प्रीति प्रतीति फूल चित चंदन, सुमिरन ध्यान तुम्हारी ।
ज्ञान गुलाल अगर कस्तूरी, उमँग उमँग रँग डारी ॥२॥
चरनामृत परसाद चरन रज, अपने सीस चढ़ाई ।
लोक लाज कुल करम मेटि के, अभय निसान घुमाई ॥३॥
कथा कीरतन नाम गुन गावै, करि साधन की भीर ।
कौन काज बिगरयो है तेरो, यों कथि कहत कबीर ॥४॥

॥ शब्द १८ ॥

कोइ है रे हमारे गाँव को, जा से परचा पूछौं ठाँव को॥टेक॥
बिन बादर बरखै अखँड धार, बिन बिजुरी चमकै अति अपार ॥१॥
ससि भानु बिना जहँ है प्रकास, गुरू सबद तहँ कियो निवास ॥२॥
बृच्छ एक तहँ अति अनूप, साखा पत्र न छाँह धूप ॥३॥
बिन फूलन भँवरा करि गुँजार, फल लागे तहँ निराधार ॥४
ऊँच नीच नहिं जाति पाँति, त्रिगुन न ब्यापै सदा सांति ॥५॥
हर्ष सोग नहिं राग दोष, जरा मरन नहिं बंध मोष ॥६॥
अखँडपुरी इक नग्र नाम, जहँ बसैं साध जन सहज धाम ॥७॥
मरै न जीवै आवै न जाय, जन कबीर गुरु मिले धाय ॥८॥

॥ शब्द १९ ॥

मानुष तन पायो बड़े भाग, अब बिचारि के खेलो फाग ॥टेक
बिन जिभ्या गावै गुन रसाल, बिन चरनन चालै अधर चाल ॥१
बिन कर बाजा बजै बैन, निरखि देखि जहँ बिना नैन ॥२॥

बिन ही मारे मृतक होइ, बिन जारे है खाक सोइ ॥३॥
बिन माँगे बिन जाँचे देइ, सो सालिम[1] बाजी जीति लेइ॥४
बिन दीपक बरै अखंड जोति, पाप पुन्न नहिँ लागे छोति[2] ५
चन्द सूर नहिँ आदि अंत, तहँ कबीर खेलै बसंत ॥६॥

॥ शब्द २० ॥

खेलैँ साध सदा होरी, तहँ दुन्द उपाधि नहीँ खोरी[3] ॥टेक॥
ताल मूल सुर सदा बाट धरि, पछिम दिसा चढ़ि गहि डोरी।
खोलि कपाट[4] सहज घर पाया, सुन्दर रूप सुरत गोरी ॥१॥
निर्तत[5] सखी चतुर सब गावैँ, बाजत तुरही दै दै तारी।
छिरकत चीर रंग चित चंचल, प्रेम केसर भरि पिचुकारी ॥२
जहँ राजत राम आप मन मूरति, अति रसाल[6] छत्र धारी।
सुर नर मुनि तहँ होत कुलाहल, ज्ञान गुलाल उड़त भारी ॥३
कोइ निरगुन कोइ सरगुन राचा[7], आप बिसारि चले सबही
कहै कबीर चेतु नर प्रानी, सब्द सरूप मिल्यो अबही ॥४॥

॥ शब्द २१ ॥

मन मिलि सतगुरु खेलो होरी ॥ टेक ॥
संसय सकल जात छिन माहीँ, आवागवन के फंदा तोरी ॥१
चित चंचल इसथिर करि राखो, सूरत निरत एक ठैारी ॥ २ ॥
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, अनहद धुनि कै घनघोरी॥३॥
गावत राग सबै अनुरागी, सार सबद अंतर मोड़ी ॥ ४ ॥
ज्ञान ध्यान की करि पिचुकारी, केसर गुरु किरपा घोरी ॥५॥
अगर बास महकै चहुँ ओरी, सेत अबीर लै भरि झोरी ॥६॥
अजर अमर फगुवा नित पावै, कहै कबीर गये जम जोरी[8] ॥७

(१) पूरन। (२) छूत। (३) ईर्पा। (४) किवाड़। (५) नाचती है। (६) भारी। (७) भीना। (८) बल, जुल्म।

॥ शब्द २२ ॥

सखीरी ऐसी होली खेल, जा मेँ हुरमत लाज रहै री ॥टेक॥
सील सिँगार करौ मोरी सजनी, धीरज माँग भरो री।
ज्ञान गुलाल उड़ाओ तन से, समता फेँट कसो री ॥ १ ॥
मची धमार नगर तेरे मेँ, अनहद बीन बजो री।
गुरु से फगुवा माँग सखी री, हिरदय साँति धरो री ॥२॥
खेती गऊ वनिज औ बछरा, चेला सिष्य करोरी।
नाव भरी है पार होन को, कालीदह मेँ परो री ॥ ३ ॥
संसकिरत भाषा पढ़ि लीन्हा, ज्ञानी लोग कहो री।
आस तृस्ना मेँ बहि गयो सजनी, जम के डंड सहो री ॥४॥
मान मनी की मेटुकी सिर पर, नाहक बोझ मरो री।
मेटुकी पटकि मिलो सतगुरु से, दास कबीर कहो री ॥५॥

॥ शब्द २३ ॥

खेलि ले दिन चार पियारी, ये होरी रस खूब मचा री॥
ज्ञान को ढोल बिबेक मजीरा, राग उठै झनकारी।
जंत्री संत भली बिधि जानै, बाजत अनहद तारी,
न जानै कारन अनाड़ी[1] ॥ १ ॥
कर्म नाम की जेवरी[2] तोड़ी, धर्म गुलाल उड़ा री।
लोभ मोह के कंगन तोड़े, भर्म भाँडा फोड़ा री,
कपट जड़ मूल उखाड़ी ॥ २ ॥
अर्ध उर्ध बिच फाग रचो है, सुखमन सुरत सम्हारी।
पिय प्यारी खेलैँ अपने पिया सँग, छिरकैँ रंग अपारी,
दृगन की चितवन न्यारी ॥ ३ ॥

---

(१) मूर्ख। (२) रस्सी।

होरी आवै फिरि फिरि जावै, यह तन बहुरि न पावै।
पूर्न प्रताप दया सतगुरु की, आवागवन नसावै,
बात यह कठिन करारी ॥ ४ ॥
सबै संग मिलि होरी खेलैं, गगन मैं फाग रचा री।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, वेद न पावै पारी।
सेस की रसना[1] हारी ॥५॥

॥ शब्द २४ ॥

जहँ बारह मास बसंत होय, परमारथ बूझै साध कोय॥टेक॥
बिन फूलन फूल्यो अकास, ब्रम्हादिक सिव लियो निवास॥१
सनकादिक रहैं भँवर होइ, लख चौरासी जीव सोइ ॥२॥
साता सागर पिये हैं घोर, आन जुरे तैंतिस करोर ॥३॥
अमर लोक फल लियो है जाय, कहै कबीर जाने सो खाय॥४

॥ शब्द २५ ॥

सत साहिब खेलैं ऋतु बसंत। कोटि दास सुर मुनि अनंत॥टेक
हँसैं हंस जगमगैं दंत। सेत पुहुप बरखैं अनंत ॥ १ ॥
अग्र सबद की बास माहिं। निरखि हंस सबदै समाहिं॥२॥
नौ खेलैं तैंतीस तीन। लोक बेद बिष संग लीन ॥ ३ ॥
खेलैं प्रकृति पचीस संग। न्यारा न्यारा धरैं रंग ॥४॥
सब नर खेलैं गुनन माहिं। अधर बस्तु कोउ लखै नाहिं॥५
जुगल जोरि दोउ रहै साध। जुग जुग लिख जो दीन्ह हाथ ६
वाकी निकसै पकरि लेइ। बहुरि बहुरि जम त्रास देइ॥७॥
कहै कबीर नर अजहुँ चेत। छाड़ खेल धर सबद हेत ॥८॥

(१) जीभ।

॥ शब्द २६ ॥

सखि आज हमारे गृह बसंत ।
सुख उपज्यौ अब मिले कंत ॥ टेक ॥
पिया मिले मन भयो अनंद, दूरि गये सब दोष दुंद ।
अब नहिँ ब्यापै संस[1] सोग, पल पल दरसन सरस भोग॥१॥
जहँ बिन कर बाजे बजैँ बैन, निरखि देख तहँ बिना नैन ।
धुनि सुन थाक्यो चपल चित्त, पल न बिसारौँ देखौँ नित्त ॥२॥
जहँ दीपक जेहि[2] बरै आगि, सिव सनकादिक रहैँ लागि ।
कहै कबीर जहँ गुरु प्रताप, तहँ तो नाहीँ पुन्न पाप ॥ ३ ॥

॥ शब्द २७ ॥

तुम घट बसंत खेलो सुजान । सत्त सबद मैँ धरो ध्यान॥टेक॥
एक ब्रम्ह फल लगे दोय । सुबुधि कुबुधि लखि लेहु सोय ॥१॥
बिष फल खावै सब संसार । अमृत फल साधु करै अहार॥२॥
पाँच पचीस जहँ फूले फूल । भर्म भँवर डरि रहे भूल ॥ ३ ॥
काम क्रोध दोउ लागे पात । नर पसु खाहिँ कोइ ना अघात ॥४॥
जहँ नौ द्वारे औ दस जुवार[3] । तहँ सीँचनहारा है मुरार ॥५॥
मेरे मुक्ति बाग मैँ सुख निधान[4] । देखै सो पावै अयन[5] जान ६
संत चरन जो रहै लाग । वह देखै अपनो मुक्ति बाग ॥ ७ ॥
कहै कबीर सुख भयो भोग । एक नाम बिन सकल रोग ॥८॥

॥ शब्द २८ ॥

चाचरि खेलो हो, समझि मन चाचरि खेलो ॥ टेक ॥
चाचरि खेलो संत मिलि, चित चरन लगाई ।
सतसंगत सत भाव करि, सुख मंगल गाई ॥ १ ॥

---

(१) संसय । (२) जैसे । (३) बैल । (४) भंडार । (५) घर ।

यह जग जम की खान है, या को न पतीजै[१] ।
सतगुरु सब्द बिचारि ले, तो जुग जुग जीजै[२] ॥ २ ॥
जनम जनम भरमत रह्यो, जिव नेक न बूझेव ।
चौरासी के खेल में, निज पंथ न सूझेव ॥ ३ ॥
एक कनक और कामिनी, इन सँग मन बंधा ।
अंत नरक ले जातु हैं, चीन्है नहिं अंधा ॥ ४ ॥
तीनि लोक चाचरि रची, इन तीनों देवा ।
सुर नर मुनि औ देवता, करैं इन की सेवा ॥ ५ ॥
चौथा पद नहिं जानहीं, भूले भ्रम माया ।
सेवक की सेवा करैं, साहिब बिसराया ॥ ६ ॥
यह औसर अब जातु है, चेतो नर प्रानी ।
आदि नाम चित दृढ़ गहो, छूटै जम खानी ॥ ७ ॥
खेलो सुरत सम्हारि के, सुकिरत उर राखो ।
प्रेम मगन बहु प्रीति से, अमृत रस चाखो ॥ ८ ॥
नाद मृदंग सम्हारि, तार दोउ संग मिलावो ।
आदी मूल बिचारि के, निज धुन उपजावो ॥ ९ ॥
निसि बासर खेलो सदा, जा तें लौ लागै ।
पिव सेती परिचय करो, सकलै भ्रम भागै ॥ १० ॥
सील सँतोष को अरगजा, सब अंग लगावो ।
काम क्रोध मद लोभ, अबीर गुलाल उड़ावो ॥ ११ ॥
नचै नवेली नारि, सबै मिलि के इक ठौरा ।
चाचरि खेलो प्रीति से, छूटै सब औरा ॥ १२ ॥

(१) भरोसा करो । (२) जीवो ।

पिचुकारी भरि अगर बास, खेलो पिय संगा ।
महकै बास सुबास, खेल लागे अति रंगा ॥ १३ ॥
छूटै बिषय बिकार, सबै भौसागर केरा ।
सुख सागर मैं घर करै, फिर होइ न फेरा ॥ १४ ॥
खेल संत सुजान, सोई या गति को जानैं ।
अनजाने बादै[1] सबै, कोइ नेक न मानै ॥ १५ ॥
कहैं कबीर बिचारि के, छाड़ो सब आसा ।
ऐसी चाचरि खेलई, सोई निज दासा ॥ १६ ॥

॥ शब्द २९ ॥

मन रंगी खेलै धमार, तीन लोक मैं सार ॥ टेक ॥
काहू को पाताल पठावा, काहू को आकास ।
काहू को बैकुंठ देतु है, फिरि मृत लोक को आस ॥ १ ॥
सुर नर मुनि सबही को छलिया, काम क्रोध के संग ।
अंतर और कहै कछु औरै, करत सबन मन भंग ॥२॥
निसि बासर ममता उपजावत, बाजी देत भुलाइ ।
चौरासी पिचुकारी मारत, जनम जनम भरमाइ ॥ ३ ॥
षट दरसन पाखंड छानवे[2], भर्म पर्‌यो संसार ।
वेद पुरान सबै मिलि गावत, करम लगाये लार[3] ॥ ४ ॥
ज्ञानी गुनी चतुर कवि बाँधे, माया रसरी डारि ।
पछा पछी खेलत सब कोऊ, डारे पकरि पछार ॥ ५ ॥
आँधर करि राखे सबहिन को, नैनन डारि अबीर ।
काल कुटिल जो छलबल मारे, नेक न वा को पीर ॥६॥

---

(१) बकै। (२) जनेऊ। (३) साथ।

खेलि न जानै खेलै निसि दिन, सुधि बुधि गई हिराय।
जिभ्या के लंपट नर भोंदू, मानुष जनम गँवाय ॥ ७ ॥
चीन्हो रे नर प्रानी या को, निसि दिन करत अँदोर[१]।
होइ साह सब को घर मूसत, तीनि लोक को चोर ॥८॥
सतगुरु सबद सत्त गहि निज करि, जा तें संसय जाइ।
आवागवन रहित ह्वै तेरो, कहै कबीर समुझाय ॥ ९ ॥

॥ शब्द ३० ॥

मेरो साहिब आवनहार, होरी मैं खेलौंगी ॥ टेक ॥
करनी के कलस सँजोय सकल बिधि, प्रीति पावरी डारी।
चरन पखारि चरनामृत लेहौं, मन को मान उतारी॥ १ ॥
तन मन धन सब अर्पन करिहौं, बहु विधि आरत साज।
प्रेम मगन ह्वै होरी खेलौं, मेटौं कुल की लाज ॥ २ ॥
धोखा धूरि उड़ाइ सरीर तें, ज्ञान गुलाल प्रकास।
पारस पान लेउँ सतगुरु से, मेटौं दूसर आस ॥ ३ ॥
दया धरम के केसर घोरौं, भाव भगति पिचुकारी।
सत्त सुकिरत अबीर अरगजा, देहौं पिय पर डारी ॥ ४ ॥
दास कबीर मिले मोहिं सतगुरु, फगुवा दीन्हो नाम।
आवागवन की मिटी कल्पना, पायौ आनँद धाम ॥५॥

---

(१) खलबल।

मंगल

॥ शब्द १ ॥

अब हम आनँद को घर पाये ।
जब तेँ दया भई सतगुरु की, अभय निसान उड़ाये ॥१॥
काम क्रोध की गागर फोड़ी, ममता नीर बहाये ।
तजि परपंच बेद बिधि किरिया, चरन कँवल चित लाये ॥२॥
पाँच तत्त कर तन कै गुदरिया, सुरत कै टोप लगाये ।
हद घर छोड़ बेहद घर आसन, गगन मँडल मठ छाये ॥३॥
चाँद न सूर दिवस ना रजनी, तहाँ जाइ लौ लाये ।
कहै कबीर कोइ पिय की प्यारी, पिया पिया रटि लाये ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

अखंड साहिब का नाम, और सब खंड है ।
खंडित मेरु सुमेरु, खंड ब्रह्मंड है ॥ १ ॥
थिर न रहै धन धाम, सो जीवन धंध है ।
लख चौरासी जीव, पड़े जम फंद है ॥ २ ॥
जा का गुरु से हेत, सोई निर्बन्ध है ।
उन साधन के संग, सदा आनन्द है ॥ ३ ॥
चंचल मन थिर राखु, जबै भल रंग है ।
तेरे निकट उलट भरि पीव, सो अमृत गंग है ॥ ४ ॥
दया भाव चित राखु, भक्ति को अंग है ।
कहै कबीर चित चेत, सो जगत पतंग है ॥ ५ ॥

॥ शब्द ३ ॥

सुनो सुहागिनि नारि, प्यार पिव से करो ।
ये वेले[1] व्यैाहार तिन्हँ तुम परिहरो ॥ टेक ॥ १ ॥

---

(१) वायल, वेमतलब ।

दिनाँ चार को रंग, संग नहिं जायगा ।
यह तो रंग पतंग[1], कहाँ ठहरायगा ॥ २ ॥
पाँच चोर बड़ जोर, कुसंगी अति घने ।
ये ठगियन जिव संग, मुसत घर निसि दिने ॥ ३ ॥
सोवत जागत रैन, दिवस घर मूसहीं ।
ठाढ़े खड़े पुठवार[2], भली विधि लूटहीं ॥ ४ ॥
इन ठगियन को राव[3], पकड़ि सो लीजिये ।
जो कहुँ आवै हाथ, छाड़ि नहिं दीजिये ॥ ५ ॥
चौथे घर इक गाँव, ठाँव पिव को बसै ।
वासा दस के मद्ध, पुरुष इक तहँ हँसै ॥ ६ ॥
होत है सिंध घमोर, संख धुनि अति घनी ।
तन्ती[4] की झनकार, बजत है झिनझिनी ॥ ७ ॥
महरम होय जो संत, सोई भल जानई ।
कहै कबीर समुझाय, सत्त करि मानई ॥ ८ ॥

॥ शब्द ४ ॥

सुरत सरोवर न्हाइ के मंगल गाइये ।
दर्पन सबद निहारि, तिलक सिर लाइये ॥ १ ॥
चल हंसा सतलोक, बहुत सुख पाइये ।
परस पुरुष के चरन, बहुरि नहिं आइये ॥ २ ॥
अमृत भोजन तहाँ, अमी अचवाइये ।
मुख मेँ सेत तँबूल, सबद लौ लाइये ॥ ३ ॥
पुहुप अनूपम वास, घर हंस चलीजिये ।
अमृत कपड़े ओढ़ि, मुकट सिर दीजिये ॥ ४ ॥

(१) एक लकड़ी जिस से कच्चा लाल रंग निकला है। (२) ज़बरदस्त। (३) सरदार। (४) सारंगी।

वह घर बहुत अनन्द, हंसा सुख लीजिये।
बदन मनोहर गात, निरखि के जीजिये ॥ ५ ॥
दुति[1] बिन मसि[1] बिन अंक, सो पुस्तक बाँचिये।
बिन कर ताल बजाय, चरन बिन नाचिये ॥ ६ ॥
बिन दीपक उँजियार, अगम घर देखिये।
खुलि गये सबद किवाड़, पुरुष से भेटिये ॥ ७ ॥
साहिब सन्मुख होइ, भक्ति चित लाइये।
मन मानिक सँग हंस, दरस तहँ पाइये ॥ ८ ॥
कहै कबीर यह मंगल, भागन पाइये।
गुरु संगत लै। लाय, हंसा चलि जाइये ॥ ९ ॥

॥ शब्द ५ ॥

अगमपुरी के ध्यान, खबर सतगुरु करी।
लीजे तत्त बिचार, सुरत मन मैं धरी ॥ १ ॥
सुरत निरत दोउ संग, अगम के गम किये।
सबर बिबेक बिचार, छिमा चित में दिये। ॥ २ ॥
गुरु के सबद लै। लाय, अगोचर घर किये।
सबद उठै झनकार, अलख तहँ लखि लिये। ॥ ३ ॥
अलख लखो लौ लाय, डोरि आगे धरो।
जगमगार वह देस, केल हंसा करो ॥ ४ ॥
सतगुरु डोरी लाय, पुकारैं जीव के।
हंसा चले सँभालि, मिलन निज पीव के ॥ ५ ॥
मंगल कहै कबीर, सो गुरमुख पास है।
हंसा आये लोक, अमर घर बास है ॥ ६ ॥

(१) दावात और सियाही।

॥ शब्द ६ ॥

तुम साहिब बहुरंगी, रँग बहुतै किये ।
कब के बिछुड़े हंस, बाँहि गहि अब लिये ॥ १ ॥
प्रथम पठाये छाप, सुरत से लीजिये ।
पाइ परवाना पान, चरन चित दीजिये ॥ २ ॥

॥ छंद ॥

पुरब पच्छिम देख दक्खिन, उत्तर रहै ठहराइ के ।
जहाँ देखो गम्म गुरु की, तहीं तत्त समाइ के ॥ ३ ॥
सुरत उत्तर पास किलकै, पुहुप दीप तें आइके ।
लाइ लौ की डोरि बाँधै, संत पकरै जाइके ॥ ४ ॥
पकरि चरन कर जोरि, निछावर कीजिये ॥
तन मन धन औ प्रान, गुरू को दीजिये ॥ ५ ॥
तब गुरु होहिं दयाल, दया चित्त लावईं ।
गहि हंसा की बाँहि, सु घर पहुँचावईं ॥ ६ ॥

॥ छंद ॥

दया करि जब मुक्ति दीन्हो, गह्यो तत्त बनाइ[१] के ।
परम प्रोतम जानि अपने, हृदय लियो समाइ के ॥ ७ ॥
जरा मरन को भय नसायो, जबै गुरु दाया करी ।
कर्म भर्म को छाड़ि जिय तें, सकल ब्याधा परिहरी ॥ ८ ॥
तुम मेरे परम सनेहीं, हंसा घर चलौ ।
छाड़ि बिषय भैासागर, हँस हंसन मिलो ॥ ९ ॥
सूरत निरत बिचार, तत्त पद सार है ।
बैठु हंस सत लोक, नाम आधार है ॥ १० ॥

---

(१) अच्छी तरह ।

॥ छंद ॥

सत्त लोक अमान हंसा, सुखसागर सुख बास है।
सत्त सुकिरत पुरुष राजै, तहाँ नहिं जम त्रास है ॥११॥
अजर अमर जो हंस है, सुनि सत्त सबद चित लाइ के।
आवागवन से रहित होवै, कहै कबीर समुझाइ के ॥१२॥

॥ शब्द ७ ॥

देखि माया को रूप, तिमिर आगे फिरै।
तेरी भक्ति गई बड़ि दूर, जीव कैसे तरै ॥ १ ॥
जुन्हरी डार रस होय, तहू गुड़ ना पकै ।
कोदक[1] कर्म कमाय, भक्ति बिन ना तरै ॥ २ ॥
ईखहि से गुड़ होय, भक्ति से क्रम कटै ।
जम को बंद न होय, काल कागद फटै ॥ ३ ॥
कहै कबीर बिचारि, बहुरि नहिं आवई।
लोक लाज कुल मेटि, परम पद पावई ॥ ४ ॥

॥ शब्द ८ ॥

साध संगत गुरुदेव, उहाँ चलि जाइये ।
भाव भक्ति उपदेस, तहाँ तैं पाइये ॥ १ ॥
अस संगत जरि जाव, न चरचा नाम की।
दूलह बिना बरात, कहो किस काम की ॥ २ ॥
दुबिधा को करि दूर, सतगुरू ध्याइये।
आन देव की सेव, न चित्त लगाइये ॥ ३ ॥
आन देव की सेव, भली नहिं जीव को।
कहै कबीर बिचारि, न पावै पीव को ॥ ४ ॥

(१) छोटे, ओछे।

॥ शब्द ९ ॥

दुविधा को करि दूर, धनी को सेव रे।
तेरी भौसागर मैं नाव, सुरत से खेव रे ॥ १ ॥
सुमिरि सुमिरि गुरु नाम, चिरंजिव जीव रे।
नाम खाँड़ बिन मोल, घोल कर पीव रे ॥ २ ॥
काया मैं नहिं नाम, गुरू के हेत का।
नाम बिना बेकाम, मटीला[1] खेत का ॥ ३ ॥
ऊँचे बैठि कचहरी, न्याव चुकावते।
ते माटी मिलि गये, नजर नहिं आवते ॥ ४ ॥
तू माया धन धाम, देखि मत भूल रे।
दिना चार का रंग, मिलैगा धूल रे ॥ ५ ॥
बार बार नर देह, नहीं यह बीर[2] रे।
चेत सके तो चेत, कहै कब्बीर रे ॥ ६ ॥

॥ शब्द १० ॥

यह कलि ना कोइ अपनो, का सँग बोलिये रे।
ज्यौं मैदानी रूख, अकेला डोलिये रे ॥ १ ॥
माया के मद माते, सुनै नहिं कोई रे।
क्या राजाक्या रंक, बियाकुल दोई रे ॥ २ ॥
माया का बिस्तार, रहै नहिं कोई रे।
ज्यौं पुरइनि[3] पर नीर, थीर नहिं होई रे ॥ ३ ॥
विष बोये संसार, अमृत कस पावै रे।
पुरब जन्म तेरो कीन्ह, दोस कित लावै रे ॥ ४ ॥
मन आवै मन जावै, मनहिं बटोरो रे।
मन बुड़वै मन तारै, मनहिं निहोरो[4] रे ॥ ५ ॥

---

(१) ढेला। (२) भाई। (३) कोईं। (४) समझाओ, राज़ी करो।

कहै कबीर यह मंगल, मन समझावो रे ।
समझि के कहौं पयाम[1], बहुरि नहिं आवो रे ॥ ६ ॥

॥ शब्द ११ ॥

करिके कौल करार, आया था भजन को ।
अब तू मुरख गँवार, कुँवे लगा परन को ॥ १ ॥
पर्‌यो माया के जाल, रह्यो मन फूलि के ।
गर्भ बास की त्रास, रह्यो नर भूलि के ॥ २ ॥
ऊँची अटरिया पैाल[2], चढ़ौ चढ़ि गिरि परैा ।
सतगुरु बुधि लइ नाहिं, पार कैसे परैा ॥ ३ ॥
सतगुरु होहु दयाल, बाँह मेरी गहौ ।
बूड़त लेव उबारि, पार अब के करैा ॥ ४ ॥
दास कबीर सिर नाय, कहै कर जोरि के ।
इक साहिब से जोरि, सबन से तोरि के ॥ ५ ॥

॥ शब्द १२ ॥

आरत कीजै आतम पूजा, सत्त पुरष की और न दूजा ॥१॥
ज्ञान प्रकास दीप उँजियारा, घट घट देखौ प्रान पियारा ॥२
भाव भक्ति और नहिं भेवा, दया सरूपी करि ले सेवा ॥३॥
सत संगत मिलि सबद विराजै, धोखा दुंद भरम सब भाजै ४
काया नगरी देव बहाई, आनँद रूप सकल सुखदाई ॥५॥
सुन्न ध्यान सब के मन माना, तुम बैठो आतम अस्थाना ॥६
सबद सुरत ले हृदय बसावो, कपट क्रोध को दूरि बहावो॥७॥
कहै कबीर निज रहनि सम्हारी, सदा अनन्द रहैं नर नारी ॥८

॥ शब्द १३ ॥

कहै कबीर सुनो हो साधो, अमृत बचन हमार ।
जो भल चाहो आपनो, परखो करो बिचार ॥ १ ॥

---

(१) संदेश। (२) दर, ज़ीना ।

जुगन जुगन सब से कही, काहु न दीन्हो कान ।
सुर नर मुनि मद माते, झूठे भर्म भुलान ॥ २ ॥
वरम्हा भूले परथमै, आद्या[१] का उपदेस ।
करता चीन्हि पस्यो नहीं, लाये बिरह बिदेस ॥ ३ ॥
जे करता तें ऊपजे, ता से परि गयो बीच ।
अपनी बुद्धि बिबेक बिन, सहज बिसाई[२] मीच ॥ ४ ॥
अपनी फहम[३] रु उक्ति[४] करि, बिबि[५] अच्छर धस्यो नाम ।
सबद अनाहद थापिया, सिरजे बेद पुरान ॥ ५ ॥
वेद कथे उन उक्ति तें, बिस्नु कथे बहु रूप ।
सहस नाम संकर कथे, जोग जुगत अँध कूप ॥ ६ ॥
इनकी माड़नि मड़ि[६] रही, चहुँ दिसि रोकी बाट ।
फैलि गई सब सृष्टि में, समझ न मेटी फाट[७] ॥ ७ ॥
सनकादिक तप ठानिया, तत्त साधना कीन ।
गगन सुन्न में पैठि के, अनहद धुन लौलीन ॥ ८ ॥
अपनो तत्त जो सोधि के, लीन्ही जोति निकास ।
जोति निरंजन थापिया, भई सबन कि उपास ॥ ९ ॥
यहि में तें सब मत चले, यही चल्यो उपदेस ।
निस्चै गहि निर्भय रहौ, सुन परम तत्त संदेस ॥ १० ॥
सनकादिक मुनि नारदा, व्यास रु गोरखदत्त ।
यही मते सब भूलि के, झूले कोटि अनन्त ॥ ११ ॥
ध्रू प्रहलाद भभीखना, भर्थरि गोपीचंद ।
जहँ लौं भक्ता जक्त में, सब उरझे यहि फंद ॥ १२ ॥

---

(१) योग माया । (२) मोल ली । (३) समझ । (४) युक्ति । (५) दो । (६) दाँय चल रही है । (७) फाही, जाल ।

या फन्दा तें नीकसहू, मानो बचन हमार ।
उलटि अपनपौ चीन्हहू, देखहु नजरि पसार ॥ १३ ॥
केहि गावो केहि ध्यावहू, छोड़हु सकल धमार[1] ।
हम हिरदे सब के बसे, कस सेवो सून उजाड़ ॥ १४ ॥
दूरहि करता थापि के, करी दूर की मान ।
जो करता दूरे हुते, तो को जग सिरजे आन ॥ १५ ॥
जो जानो यहँ है नहीं, तो तुम धावो दूर ।
दूरि के ढोल सुहावने, निरफल मरो बिसूर[2] ॥ १६ ॥
दुर्लभ दरसन दूर के, नियरे सद सुख बास ।
कहै कबीर मोहिं ब्यापिया, मत दुख पावे दास ॥ १७ ॥
आप अपनपौ चीन्हहू, नखसिख सहित कबीर ।
आनँद मंगल गावहू, होहि अपनपो थीर ॥ १८ ॥

॥ शब्द १४ ॥

सतगुरु सबद कमान, सुरत गाँसी भई ।
मारत हियरे बान, पीर भारी भई ॥ १ ॥
निसि दिन सालै घाव, नींद आवै नहीं ।
पिया मिलन की आस, नैहर भावै नहीं ॥ २ ॥
चढ़ि गैलूँ गगन अटारी, तो दीपक बारि के ।
होइ गैलै पुरुष से भेट, तो तन मन हारि के ॥ ३ ॥
कागा बोली बोल, कहाँ लगि भाखिये ।
कहै कबीर धर्मदास, तीन गुन त्यागिये ॥ ४ ॥

॥ शब्द १५ ॥

बंदी छोर कबीर, भक्ति मोहिं दीजिये ।
बाँहि गहे की लाज, गहर[3] मत कीजिये ॥ १ ॥

---

(१) नाच, दौड़ धूप। (२) सिसक कर रोना। (३) देर।

कागा वरन छुड़ाइ, हंस बुधि लाइये ।
पूरन पद को देव, महा सुख पाइये ॥ २ ॥
जो तुम सरनै आयौं, बचन इक मानिये ।
भौसागर बहै जोर, सुरत निज राखिये ॥ ३ ॥
दसो द्वार बेकार, नवो नाटिका[१] बहै ।
सुरत नहीं ठहराय, लगन कैसे लगै ॥ ४ ॥
जैसे मीन सनेह, सदा जल मैं रहै ।
जल बिन त्यागै, प्रान लगन ऐसी लगै ॥ ५ ॥
मेटौ सकल बिकार, भार सिर लेइयो ।
तुमहिं मैं रहौं समाइ, आपन करि लेइयो ॥ ६ ॥
कहै कबीर बिचारि, सोई टकसार है ।
हंस चले सतलोक, तो नाम अधार है ॥ ७ ॥

मिश्रित

॥ शब्द १ ॥

समुझि बूझि के देखो गुइयाँ, भीतर यह क्या बोले है ॥१॥
बलि बलि जाउँ आपने गुरु की, जिन यह भेद को खोले है२
आदम मैं वह आप समाया, जो सब रँग मैं घोले है ॥३॥
कहत कबीर जगे का सुपना, कहि न सकै वह बोले[२] है ॥४

॥ शब्द २ ॥

हम ऐसा देखा सतगुरु संत सिपाही ॥ टेक ॥
सत्त नाम कौ पटा लिखायौ, सतगुरु आज्ञा पाई ।
चौरासी के दुक्ख मिटे, अनुभौ जागीरी पाई ॥ १ ॥

---

(१) नाड़ी । (२) शब्द, वचन ।

सुरत सीँगरा[1] साँग[2] समुझ को, तन की तुपक बनाई ।
दम को दारू सहज को सीसा, ज्ञान के गज ठहकाई ॥२॥
सील सँतोष प्रेम की पथरी, चित चकमक चमकाई ।
जोग को जामा बुद्धि मुद्रिका, प्रीति पियाला पाई ॥३॥
सत कै सेल्ह[3] जुगत कै जमधर[4], छिमा ढाल ठनकाई ।
मोह मोरचा पहिले मार्खो, दुबिधा मारि हटाई ॥ ४ ॥
सन्त नाम कै लगा पलीता, हरहर होत हवाई ।
गम गोला गढ़ भीतर मार्खो, भरम के बुर्ज ढहाई ॥५॥
सुरत निरत कै घेरा दीन्हो, बंद कियो दरवाजा ।
सब्द सूरमा भीतर पैठा, पकरि लियो मन राजा ॥६॥
पाँचो पकरे कामदार जो, पकरी ममता माई ।
दास कबीर चढ़्यो गढ़ ऊपर, अभय निसान बजाई ॥७॥

॥ शब्द ३ ॥

दिन रातै गावो मोरी सजनी, सतगुरु को सिर नाइ हो ।
फिर पाछे पछितैहो सजनी, जब जम पकरै आइ हो ॥१॥
सुख सागर मेँ परी हो सजनी, दुख को देहु बहाइ हो ।
भक्ति घाँघरा पहिरो सजनी, रैन दिवस गुन गाइ हो ॥२॥
निरभय अँगिया कसि लेउ सजनी, भयहिँ भगावो दूरि हो ।
प्रीति लगी साहिब सँग सजनी, डारि जगत पर धूरि हो ॥३
प्रेम चुनरिया ओढ़ो सजनी, सतगुरु दीन्ह रँगाइ हो ।
जित देखौँ तित साहिब सजनी, नैनन रह्यो समाइ हो ॥४॥
फहम[5] फुलेल बनाइ के सजनी, सिर मेँ दीन्हो डारि हो ।
ज्ञान की कँगही लैकै सजनी, कर्म केस निरवारु[6] हो ॥५॥

---

(१) सींघ की सूरत की एक चीज़ बारूद रखने की। (२) बरछा। (३) बरछी।
(४) कटार। (५) समझ बूझ। (६) सुलझाओ।

समुझ की पटिया पारो सजनी, चुटिया गुहौ सम्हारि हो।
संतोष सहेलरि गुहि ले आई, झबिया सहज अपार हो ॥६॥
दया भाव की टिकुली सजनी, बिरह बीज अनुसार हो।
जा को दया न आवै सजनी, परै चौरासी धार हो ॥७॥
सील कै सेंदुर माँग भरु सजनी, सोभा अगम अपार हो।
धीरज अंजन आँजो सजनी, छिमा की बेंदी लिलार[१] हो ॥८
बेसर बनी बुद्धि की सजनी, मोती बचन सुधार हो।
दीन गरीबी रहो गुरन से, सोई गले कै हार हो ॥९॥
बाजूबन्द बिवेक के सजनी, बहुँटा ब्रम्ह बिचारि हो।
चाल की चुरियाँ पहिरो सजनी, परख पटीला डारि हो१०
नेह निगरही दुहरी सजनी, ककना अकिल के ढारि हो।
मन की मुँदरी पहिरो सजनी, नाम नगीना सार हो॥११॥
नाम जपो निसि बासर सजनी, काटै जम कै फाँसि हो।
पहिरो चोप चुनरिया सजनी, चित मत करहु उदास हो ॥१२
सत सुकिरत दोउ नूपुर सजनी, उठै सबद झनकार हो।
पहिरि पचीसो बिछिया सजनी, धरि ल्यो पाँव सम्हारहो१३
तीनों गुन कै अनवट सजनी, गुरु से ल्यो बदलाइ हो।
काम क्रोध दोउ सम करि सजनी, अमर लोक कैा जाइ हो१४
घर जो बाड़ा कुमति को सजनी, सहर से देव बहाइ हो।
पिया जो सोवै महल मैं सजनी, उन को लेव जगाइ हो ॥१५
येहि बिधि सुन्दर साजि के सजनी, करि ल्यो सोरहो सिँगार हो।
पाँच सहेलरि सँग ल्यो सजनी, गावो मंगलचार हो ॥१६॥
पिय मोर सोवै महल मैं सजनी, अगम अगोचर पार हो।
अकिल आरसी लैकै सजनी, पिय को रूप निहार हो ॥१७

(१) माथे।

घूँघट खोलि कपट कै सजनी, हेरो गुरुन की ओरि हो।
पान लेहु मुक्ती को सजनी, जम से तिनुका तोरि हो ॥१८॥
बिन सतगुरु चरचा के सजनी, सो पुनि बड़े लबार हो।
बिना पुरुष की तिरिया सजनी, उन कै झूठ सिँगार हो ॥१९
सो दिन जिन जानो मोरि सजनी, जो गावै संसार हो।
यह तो दिन मुक्ती कै सजनी, साधो लेहु बिचार हो ॥२०॥
दास कबीर की बिनती सजनी, सुन लेहु संत सुजान हो।
आवागवन न होइहै सजनी, पावो पद निर्बान हो ॥२१॥

॥ शब्द ४ ॥

अब कोइ खेतिया मन लावै ॥ टेक ॥
ज्ञान कुदार ले बंजर गोड़ै, नाम को बीज बोवावै।
सुरत सरावन[1] नय कर फेरै, ढेला रहन न पावै ॥ १ ॥
मनसा खुरपी खेत निरावै, दूब बचन नहिँ पावै।
कोस पचीस इक बथुवा नोचे, जड़ से खोदि बहावै ॥२॥
काम क्रोध के बैल बने हैं, खेत चरन को आवैँ।
सुरत लकुटिया ले फटकारै, भागत राह न पावैँ ॥ ३ ॥
उलटि पलटि के खेत को जोतै, पूर किसान कहावै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जब वा घर को पावै ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

अस कोइ मन हिँ लोह सम[2] तावै ॥ टेक ॥
करम जारि के कोइला करि दे, ब्रम्ह अगिन परचावै।
ताय तूय के निर्मल करि ले, सील के नीर बुझावै ॥ १ ॥
इतनो जोरि जुगत करि लावै, लगन लुहार कहावै।
ज्ञान बिबेक जतन से करि ले, जा बिधि अजर झरावै ॥२॥

---

(१) हेंगा, पटरा। (२) लोहा के सदृश।

सुरत निरत की सँड़सी करि ले, जुगत निहाई जमावै ।
नाम हथौड़ा दृढ़ करि मारै, करम की रेख मिटावै ॥३॥
पाँच आतमा दृढ़ करि राखै, योँ करि मन समुझावै ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भूला अर्थ लगावै ॥ ४ ॥

॥ शब्द ६ ॥

साधो यह मन है बड़ जालिम ।
जा को मन से काम परो है, तिसही ह्वैहै मालुम ॥१॥
मन कारन जो उनको छाया, तेहि छाया में अटके ।
निरगुन सरगुन मन की बाजी, खरे सयाने भटके ॥२॥
मन ही चैादह लोक बनाया, पाँच तत्त गुन कीन्हे ।
तीन लोक जीवन बस कीन्हे, परै न काहू चीन्हे ॥ ३ ॥
जो कोउ कहै हम मन को मारा, जा के रूप न रेखा ।
छिन छिन मैं कितनौं रँग ल्यावै, जे सपनेहु नहिं देखा ॥४॥
रसातल इकइस ब्रम्हंडा, सब पर अदल चलावै ।
षट रस मैं भोगी मन राजा, सो कैसे कै पावै ॥ ५ ॥
सब के ऊपर नाम निहच्छर, तहँ लै मन को राखै ।
तब मन की गति जान परै यह, सत कबीर मुख माखै ॥६॥

॥ शब्द ७ ॥

यह मन जालिम जोर री, बरजे नहिं मानै ॥ टेक ॥
जो कोइ मन को पकरा चाहै, भागत साँकर तोर ॥१॥
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, हाथ न आवै चोर ॥२॥
जो हंसा सतगुरु कै होई, राखै ममता छोर ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बचो गुरुन की ओट ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

वाह वाह सरनागति ता की है ॥ टेक ॥
बोल अबोल अडोल अचाहक, ऐसी गतिया जा की है ॥१॥

अंतरगति में भया उजाला, बिन दीपक बिन बाती है ॥२॥
सुरत सुहागिनि भइ मतवारी, प्रेम सुधा रस चाखी है ॥३॥
निरखि निरखि अंतर पग धरना, अजब झरोखे झाँकी है ॥४॥
कहै कबीर इक नाम सुमिरि ले, आदि अंत जो साखी है ॥५॥

॥ शब्द ९ ॥

वाह वाह अमर घर पाया है ॥ टेक ॥
दुक्ख दर्द काल नहिं ब्यापै, आनँद मंगल गाया है ॥१॥
मूल बीज बिन बिर्छ बिराजै, सतगुरु अलख लखाया है ॥२॥
कोटि भानु छबि भया उजारा, हंस हिरम्बर भाया है ॥३॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आवा गवन मिटाया है ॥४॥

॥ शब्द १० ॥

ना मैं धर्मी नाहिं अधर्मी, ना मैं जती न कामी हो ।
ना मैं कहता ना मैं सुनता, ना मैं सेवक स्वामी हो ॥१॥
ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता, ना निर्बंध सरबंगी हो ।
ना काहू से न्यारा हूआ, ना काहू को संगी हो ॥ २ ॥
ना हम नरक लोक को जाते, ना हम सुरग सिधारे हो ।
सबही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन तें न्यारे हो ॥ ३ ॥
या मत को कोइ बिरला बूझै, सो सतगुरु हो बैठै हो ।
मत कबीर काहू को थापे, मत काहू को मेटे हो ॥ ४ ॥

॥ शब्द ११ ॥

हीरा वहाँ भँजैये, जहँ कोइ रतन पारखी पैये ॥ टेक ॥
वस्तु हमारी अगम अगोचर, जाइ सराफा लैये ।
जहाँ जाइ जम हाथ पसारै, तहँ तुम बस्तु छिपैये ॥१॥

मूल कै डाँड़ी तत्त कै पलरा, ज्ञान कै डोर लगैये।
मासा पाँच पचीस रती के, तोला तीन तुलैये॥ २॥
तोल ताल के जमा सुलाखा, तब वा के घर जैये।
जैाहरि नाम अनादी के रे, तहँ तुम बस्तु दिखैये॥ ३॥
चलत फिरत मैं बहुतक ठग हैं, तिन को नहिं दिखलैये।
कहै कबीर भाव कै सौदा, पूरी गाँठि लगैये॥ ४॥

॥ शब्द १२ ॥

अपनपै। आपुहि तैं बिसरो॥ टेक॥
जैसे स्वान[1] काच मंदिर मैं भ्रम से भूँकि मरो॥ १॥
ज्यौं केहरि[2] वपु[3] निरख कूप[4] जल प्रतिमा[5] देखि गिरो॥२
वैसे ही गज[6] फटिक[7] सिला[8] मैं दसनन[9] आनि अड़ो॥३॥
मरकट[10] मूठि[11] स्वाद नहिं बहुरै, घर घर रटत फिरो॥४
कह कबीर नलनी[12] के सुगना[13] तोहि कवन पकरो॥५॥

॥ शब्द १३ ॥

हरि दरजी का मरम न पाया, जिन यह चोला अजब बनाया १
पानी की सुई पवन के धागा, आठ मास दस सीवत लागा २
पाँच तत्त कै गुदरी बनाई, चाँद सुरज दुइ थेगली[14] लगाई ३
जतन जतन करि मुकट बनाया, ता बिच हीरा लाल जड़ाया ४
आपहि सीवे आप बनावे, प्रान पुरुष को ले पहिरावे॥५
कहै कबीर सोई जन मेरा, या चोले का करै निबेरा॥६

॥ शब्द १४ ॥

हरि ठग जगत ठगौरी लाई।
हरि के बियोगी कस जीवैं भाई॥ १॥

---

(१) कुत्ता। (२) बाघ। (३) शरीर। (४) कुवाँ। (५) छाया। (६) हाथी। (७) बिल्लौर। (८) चट्टान। (९) दाँत। (१०) बंदर। (११) मुट्ठी। (१२) नली जिससे तोता फसाया जाता है। (१३) तोता। (१४) पैवँद।

को का को पुरुष कौन का की नारी ।
अकथ कथा जम दुष्ट पसारी ॥ २ ॥
को का को पुत्र कौन का को बापा ।
को रे मरै को सहै संतापा ॥ ३ ॥
ठगि ठगि मूल[1] सबन को लीन्हा ।
राम ठगौरी काहु न चीन्हा ॥ ४ ॥
कहै कबीर ठग से मन माना ।
गई ठगौरी जब ठग पहिचाना ॥ ५ ॥

॥ शब्द १५ ॥

जोगवै निस बासर जोग जती ॥ टेक ॥
जैसे सोना जोगवत सोनरा, जाने देत न एक रती ॥१॥
जैसे कृपिन कनी को जोगवै, क्या राजा क्या छत्रपती ॥२॥
जैसे ब्रम्हा बिस्नुहिं जोगवत, सिव को जोगवत पारबती ॥३
जैसे नारि पुरुष को जोगवत, जरति पिया सँग होत सती ॥४
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कोइ कोइ बचि गये सूर सती ॥५

॥ शब्द १६ ॥

डुगडुगी सहर में बाजी हो ॥ टेक ॥
आदि साहिब अदली आये, पकरे पंडित काजी हो ॥१॥
कोतवालन के गुरुआ पकरे, पाँच पचीस समाजी हो ॥२॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, रैयत होगई राजी हो ॥३॥

॥ शब्द १७ ॥

रिमझिम बरसै बूँद सुरतिया ।
का से कहौं दिल आपन बतिया ॥ १ ॥
अब सुन सजनी सरोवर गैलै ।
सुखाइ कँवल कुम्हिलाइ गैलै ॥ २ ॥

---

(१) जमा ।

औघट घटिया लगलि मोरी नैया।
ताहि पै चढ़लैं पाँचो भैया ॥ ३ ॥
अब सुन सजनी भैलै मतवार।
कस जाइब औघट के पार ॥ ४ ॥
चाँद सुरज तुम मोरे साथी।
सैयाँ दरबरवा हमार पत राखी ॥ ५ ॥
दास कबीर गावै निरगुन ज्ञनियाँ।
समुझि बिचारि जिय लेइ सरनियाँ ॥ ६ ॥

॥ शब्द १८ ॥

कँवल से भँवरा बिछुड़ल हो, जहँ कोइ न हमार ॥ १ ॥
भौजल नदिया भयावन हो, बिन जल कै धार ॥ २ ॥
ना देखूँ नाव न बेड़ा हो, कैसे उतरब पार ॥ ३ ॥
सत्त की नैया सिर्जावल हो, सुकिरत करि यार ॥ ४ ॥
गुरु के सबद की नहरिया हो, खेइ उतरब पार ॥ ५ ॥
दास कबीर निरगुन गावल हो, संत लेहु बिचार ॥ ६ ॥

॥ शब्द १९ ॥

आऊँगा न जाऊँग मरूँगा न जिऊँगा।
गुरु के साथ अमी रस पिऊँगा ॥ १ ॥
कोई फेरै माला कोई फेरै तसबी।
देखो रे लोगो दोनौँ कसबी ॥ २ ॥
कोई जावै मक्के कोई जावै कासी।
दोऊ के गल बिच परि गइ फाँसी ॥ ३ ॥
कोइ पूजै मड़ियाँ कोइ पूजै गोराँ[1]।
दोऊ की मतियाँ हरि लई चोराँ ॥ ४ ॥

---

(१) क़बर।

कहत कबीर सुनो नर लोई ।

हम न किसी के न हमरा कोई ॥ ५ ॥

॥ शब्द २० ॥

चली चल मग मेँ का भरमावै ॥ टेक ॥
नई बहुरिया गौने आई, लहबर लहबर[1] होय ।
इन बातन मेँ नफ़ा नहीँ है, सूधी सड़क टटोय[2] ॥ १ ॥
तोहुँ बहुरिया अजहुँ न मानै, डाखो खलक बिलोय ।
पिया मिले पीहर को रोवै, लाज न आवै तोहि ॥ २ ॥
सृंगी ऋषि तो बन के बासी, वो भी डारे खोय ।
नैन मारि पलकोँ मेँ राखे, पल मेँ डारे बिगोय ॥ ३ ॥
सोहं नारी अधिक दुलारी, पिय की प्यारी होय ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, जबरदस्त की जोय ॥ ४ ॥

॥ शब्द २१ ॥

ज्ञान आरती इमरित बानी, पूरन ब्रम्ह लेव पहिचानी ॥
जिनके हुकुम पवन अरु पानी, तिनकी गति कोइ बिलैं जानी ॥
तिरदेवा मिलि जोति बखानी, निरंकार की अकथ कहानी॥
दृष्टि बिना दुनिया बैारानी, भरम भरम भटकै नर खानी ॥
जो आसा सब हिलिमिलि ठानी, साहिब छाड़ि जम हाथ बिकानी॥
गगन बाव गरजै असमाना, निःचै धुजा पुरुष फहराना ॥
कहै कबीर सोइ संत सियाना, जिन जिन सबद गुरुन कै माना ॥

॥ शब्द २२ ॥

हीरा नाम अमोल है, रहै घट घट थीरा ।
सिद्धी आसन सोधि के, बैठै वहि तीरा ॥ १ ॥

---

(१) पोशाक—भाव कपड़े की सम्हाल न हो सकने से लबर झबर चलने का है। (२) टटोल, ढूँढ।

गंग जमुन के रेत पर, बहै झिरि झिरि नीरा ।
पुरब सोधि पच्छिम गये, करिके मन धीरा ॥ २ ॥
बिरहिनि बाजे बाँसुरी, सुनि गइ मोर पीरा ।
आठ पहर बाजत रहै, अस गहिर गँभीरा ॥ ३ ॥
हीरा झलकै द्वार पर, परखै जोइ सूरा ।
कहै कबीर गुरु गम्म से, पहुँचै कोइ पूरा ॥ ४ ॥

॥ शब्द २३ ॥

जग मैं सोइ बैराग कहावै ॥ टेक ॥
आसन मारि गगन मैं बैठै, दुर्मति दूर बहावै ॥ १ ॥
भूख प्यास औ निद्रा साधै, जियते तनहिं जरावै ॥ २ ॥
भौसागर के भरम मिटावै, चौरासी जिति[1] आवै ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भाव भक्ति मन लावै ॥४॥

निरख प्रबोध की रमैनी

(१)

अस सतगुरु बोले सत बानी। धन धन सत्त नाम जिन जानी॥
नाम प्रतीति भई सब संता। एक जानि के मिटे अनंता॥
अनँत नाम जब एक समाना। तब हो साध परम पद जाना॥
बिरला संत परम गति जानै। एक अनंत सो कहा बखानै॥
सब तें न्यारा सब के माहीं। माँझी सतगुरु दूजा नाहीं॥
सत्त नाम जा के धन होई। धन जीवन ताही को सोई॥

॥ दोहा ॥

जिनके धन सतनाम है, तिन का जीवन धन्न ।
तिन को सतगुरु तारहीं, बहुरि न धरई तन्न ॥ १ ॥

---

(१) जीत कर।

सत्तनाम की महिमा जानै । मन बच करमै सरना आनै ॥
एक नाम मन बच करि लेई । बहुरि न या भवजल पग देई ॥
जोग जज्ञ जप तप का करई । दान पुन्न तेँ काज न सरई ॥
देवी देवा भूत परेता । नाम लेत भाजैँ तजि खेता ॥
टोना टामन पूजा पाती । नाम लेत सहजै तरि जाती ॥
जो इच्छा आवै मन माहीँ । पुरवै तुरत बिलँब कछु नाहीँ ॥
सो सतनाम हृदय अनुरागी । सो कहिये साचा बैरागी ॥
जब लग नाम प्रतीत न करई । तब लग जनम जनम दुख भरई ॥

॥ दोहा ॥

कबीर महिमा नाम की, कहना कही न जाय ।
चार मुक्ति औ चार फल, और परम पद पाय ॥ २ ॥

सत्तनाम है सबतेँ न्यारा । निर्गुन सर्गुन सबद पसारा ॥
निर्गुन बीज सर्गुन फल फूला । साख ज्ञान नाम है मूला ॥
मूल गहे तेँ सब सुख पावै । डाल पात मेँ मूल गँवावै ॥
सतगुरु कही नाम पहिचानी । निर्गुन सर्गुन भेद बखानी ॥

॥ दोहा ॥

नाम सत्त संसार मेँ, और सकल है पोच[1] ।
कहना सुनना देखना, करना सोच असोच ॥ ३ ॥

सब ही झूठ झूठ करि जाना । सत्त नाम को सत कर माना ॥
निसि बासर इक पल नहिँ न्यारा । जाने सतगुरु जाननहारा ॥
सुरत निरत ले राखै जहवाँ । पहुँचै अजर अमर घर तहवाँ ॥
सत्तलोक को देय पयाना । चार मुक्ति पावै निर्बाना ॥

॥ दोहा ॥

सत्तलोक सब लोक-पति, सदा समीप प्रमान ।
परम जोति से जोति मिलि, प्रेम सरूप समान ॥४॥

---

(१) तुच्छ ।

अंस नाम तेँ फिरि फिरि आवै। पूरन नाम परम पद पावै ॥
नहिँ आवै नहिँ जाय सो प्रानी। सत्तनाम की जेहि गति जानी ॥
सत्तनाम मेँ रहै समाई। जुग जुग राज करै अधिकाई ॥
सत्त लोक में जाय समाना। सत्त पुरुष से भया मिलाना ॥
हंस सुजान हंस ही पावा। जोग संतायन भया मिलावा ॥
हंसा सुघर दरस दिखलावा। जनम जनम की भूख मिटावा ॥
सुरत सुहागिनि आगे ठाढ़ी। प्रेम सुभाव प्रीति अति बाढ़ी ॥
पुहुप दीप मेँ जाइ समाना। बास सुबास चहूँ दिसि आना ॥

॥ दोहा ॥

सुख सागर सुख बिलसही, मानसरोवर न्हाय।
कोटि काम सी कामिनी, देखत नैन अघाय ॥ ५ ॥

सूरत नाम सुनै जब काना। हंसा पावै पद निर्बाना ॥
अब तो कृपा करी गुरु देवा। ता तेँ सुफल भई सब सेवा ॥
नाम दान अब लेय सुभागी। सत्त नाम पावै बड़ भागी ॥
मन बच क्रम चित निस्चय राखै। गुरु के सबद अमीरस चाखै ॥
आदि अंत कै भेदै पावै। पवन आड़ में ले बैठावै ॥
सब जग झूठ नाम इक साचा। स्वास स्वास मेँ साचा राचा ॥
झूठा जानि जगत सुख भोगा। साचा साधू नाम सँजोगा ॥
यह तन माटी इन्द्री छारी। सत्तनाम साचा अधिकारी ॥
नाम प्रताप जुगै जुग भाखी। साध संत ले हिरदे राखी ॥

॥ दोहा ॥

महिमा बड़ी जो साध की, जा के नाम अधार।
सतगुरु केरी दया तेँ, उतरे भैाजल पार ॥ ६ ॥

(२)

प्रथम एक जो आपै आप। निराकार निर्गुन निर्जाप ॥
नहिँ तब भूमी पवन अकासा। नहिँ तब पावक नीर निवासा ॥

नहिँ तब पाँच तत्त गुन तीनी। नहिँ तब सृष्टी माया कीनी ॥
नहिँ तब आदि अंत मधि तारा। नहिँ तब अंध धुंध उजियारा॥
नहिँ तब ब्रम्हा बिस्नु महेसा। नहिँ तब सूरज चाँद गनेसा ॥
नहिँ तब मच्छ कच्छ बाराहा। नहिँ तब भादौं फागुन माहा॥
नहिँ तब कंस क्रुस्न बलि बावन। नहिँ तब रघुपति नहिँ तब रावन ॥
नहिँ तब सरगुन सकल पसारा। नहिँ तब धारे दस औतारा॥
नहिँ तब सरसुति जमुना गंगा। नहिँ तब सागर समुद तरंगा ॥
नहिँ तब तीरथ ब्रत जग पूजा। नहिँ तब देव दैत अरु दूजा॥
नहिँ तब पाप पुन्न गुरु सीखा। नहिँ तब पढ़ना गुनना लीखा॥
नहिँ तब बिद्या बेद पुराना। नहिँ तब भये कतेब कुराना ॥

॥ दोहा ॥

कहै कबीर बिचारि के, तब कछु किरतम नाहिँ ।
परम पुरुष तहँ आपही, अगम अगोचर माहिँ ॥७॥

करता एक अगम है आप। वा के कोई माय न बाप ॥
करता के बंधू नहिँ नारी। सदा अखंडित अगम अपारी ॥
करता कछु खावै नहिँ पीवै। करता कबहूँ मरै न जीवै ॥
करता के कछु रूप न रेखा। करता के कछु बरन न भेषा॥
जा के जाति गोत कछु नाहीं। महिमा बरनि न जाय मो पाहीँ॥
रूप अरूप नहीं तेहि नाँव। बर्न अबर्न नहीं तेहि ठाँव ॥

॥ दोहा ॥

कहै कबीर बिचारि के, जा के बरन न गाँव ।
निराकार और निर्गुना, है पूरन सब ठाँव ॥ ८ ॥

करता किर्तिम बाजी लाई। ओंकार तेँ सृष्टि उपाई॥
पाँच तत्त तीन गुन साजा। तातेँ सब किर्तिम उपराजा॥
किर्तिम धर्ती क्रिर्तिम अकास। क्रिर्तिम चंद सूर परकास ॥

किर्तिम पाँच तत्त गुन तीनी। किर्तिम सृष्टि जु माया कीनी॥
किर्तिम आदि अंत मध तारा। किर्तिम अंध कूप उजियारा॥
किर्तिम सर्गुन सकल पसारा। किर्तिम कहिये दस औतारा॥
किर्तिम कंस किर्तम बल बावन। किर्तिम रघुपति किर्तम रावन॥
किर्तिम कच्छ मच्छ बाराहा। किर्तिम भादों फागुन माहा॥
किर्तिम सागर समुद तरंगा। किर्तिम सरसुति जमुना गंगा॥
किर्तिम सिम्रिति बेद पुराना। किर्तिम काजी कतेब कुराना॥
किर्तिम जोग जज्ञ ब्रत पूजा। किर्तिम देवी देव जो दूजा॥
किर्तिम पाप पुन्न गुर सीषा। किर्तिम पढ़ना गुनना लीखा॥

कहै कबीर विचारि के, किर्तिम करता नहिं होय।
यह बाजी सब किर्तिम है, साच सुनो सब कोय॥९॥

करता एक और सब बाजी। ना कोइ पीर मसायख काजी॥
बाजी ब्रम्हा बिस्नु महेसा। बाजी इन्द्र रु चन्द गनेसा॥
बाजी जल थल सकल जहाना। बाजी जानु जमीं असमाना॥
बाजी बरनो सिम्रिति बेदा। बाजीगर का लखै न भेदा॥
बाजी सिद्ध साधक गुर सीषा। जहाँ तहाँ यह बाजी दीखा॥
बाजी जोग यज्ञ ब्रत पूजा। बाजी देवी देवल दूजा॥
बाजी तीरथ ब्रत आचारा। बाजी जोग जज्ञ ब्योहारा॥
बाजी जल थल सकल किवाई[1]। बाजी से बाजी लिपटाई॥
बाजी का यह सकल पसारा। बाजी माहिं रहै संसारा॥
कहै कबीर सब बाजी माहीं। बाजीगर को चीन्हैं नाहीं॥

॥ कबीर शब्दावली द्वितीया भाग समाप्त॥

---

(१) काई।

॥ सूचीपत्र ॥

अ

इ

उ

ए

विषय पृष्ठ

ठ

त

द

ध

न

विषय पृष्ठ

प

ब

भ

कबीर साहेब की शब्दावली

॥ तीसरा भाग ॥

॥ आदि बानी ॥

बलिहारी अपने साहेब की, जिन यह जुक्ति बनाई ।
उनकी सोभा केहि बिधि कहिये, मो से कही न जाई ॥१॥
बिना जोत की जहँ उँजियारी, सो दरसै वह दीपा ।
निरतैं हंस करैं कंतूहल, वोही पुरुष समीपा ॥२॥
झलकै पद्म नाना विधि बानी, माथे छत्र बिराजै ।
कोटिन भानु चन्द्र की क्रांती, रोम रोम में छाजै ॥३॥
कर गहि बिहँसि जबै मुख बोले, तब हंसा सुख पावै ।
अंस वंस जिन बूझि बिचारी, सो जीवन मुक्तावै ॥४॥
चौदह लोक बेद का मंडल, तहँ लगि काल दोहाई ।
लोक बेद जिन फंदा काटी, ते वह लोक सिधाई ॥५॥
सात सिकारी चौदह पारिंद*, भिन्न भिन्न निरतावै ।
चार अंस जिन समुझि बिचारी, सो जीवन मुक्तावै ॥६॥
चौदह लोक बसै जम चौदह, तहँ लगि काल पसारा ।
ता के आगे जोति निरंजन, बैठे सून्य मँझारा ॥७॥
सोरह खंड अच्छर भगवाना, जिन यह सृष्टि उपाई ।
अच्छर कला से सृष्टी उपजी, उनहीं माहिँ समाई ॥८॥

---

* पारिंद्र=बाघ, शेर ।

सत्रह संख पर अधर द्वीप जहँ, सब्दातीत विराजै ।
निरतै संखी बहु विधि सोभा, अनहद बाजा बाजै ॥९॥
ता के ऊपर परम धाम है, मरम न कोऊ पाया ।
जो हम कही नहीं कोउ मानै, ना कोउ दूसर आया ॥१०॥
वेदन साखी सब जिव अरुझे, परम धाम ठहराया ।
फिर फिर भटके आप चतुर होइ, वह घर काहु न पाया ॥११॥
जो कोइ होइ सत्य का किनका, सो हम को पतियाई ।
और न मिलै कोटि कहि थाके, बहुरि काल घर जाई ॥१२॥
सोरह संख के आगे समरथ, जिन जग मोहिं पठाया ।
कहैं कबीर आदि की बानी, वेद भेद नहिं पाया ॥१३॥

॥ महिमा आदि धाम ॥

॥ शब्द १ ॥

सखिया वा घर सब से न्यारा, जहँ पूरन पुरुष हमारा ॥टे०॥
जहँ नहिं सुख दुख साँच झूठ नहिं, पाप न पुन्न पसारा ।
नहिं दिन रैन चन्द नहिं सूरज, बिना जोति उँजियारा ॥१॥
नहिं तहँ ज्ञान ध्यान नहिं जप तप, बेद कितेब न बानी ।
करनी धरनी रहनी गहनी, ये सब उहाँ हेरानी ॥२॥
धर नहिं अधर न बाहर भीतर, पिंड ब्रह्मंड कछु नाहीं ।
पाँच तत्त्व गुन तीन नहीं तहँ, साखी सब्द न ताहीं ॥३॥
मूल न फूल बेल नहिं बीजा, बिना बृच्छ फल सोहै ।
ओअं सोहं अर्ध उर्ध नहिं, स्वाँसा लेख न कोहै ॥४॥
नहिं निर्गुन नहिं सर्गुन भाई, नहिं सूच्छम अस्थूलं ।
नहिं अच्छर नहिं अविगत भाई, ये सब जग के भूलं ॥५॥

---

* निर्णायक शब्द ।

जहाँ पूरुष तहवाँ कछु नाहीं, कहैं कबीर हम जाना ।
हमरी सैन लखै जो कोई, पावै पद निरबाना ॥६॥

॥ शब्द २ ॥

अवधू कौन देस निरबाना ॥ टेक ॥
आदि जोति तबै कछु नाहीं, नहिं रहे बीज अँकूरा ।
वेद कितेब तबै कछु नाहीं, नहीं पिंड ब्रह्मंडा ॥१॥
पाँच तत्त गुन तीनों नाहीं, नहीं जीव अंकूरा ।
जोगी जती तपी सन्यासी, नहीं रहे सत सूरा ॥२॥
ब्रह्मा बिष्नु महेसुर नाहीं, नहिं रहे चौदह लोका ।
लोक दीप की रचना नाहीं, तब कै कहो ठेकाना ॥३॥
गुप्त कली जब पुरुष उचारा, परगट भया पसारा ।
कहैं कबीर सुनो हो अवधू, अधर नाम परवाना ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

अवधू छोड़ो मन बिस्तारा ।
सो पद गहो जाहि से सद गति, पारब्रह्म से न्यारा ॥१॥
नहीं महादेव नहीं मुहम्मद, हरि हजरत तब नाहीं ।
आतम ब्रह्म नहीं तब होते, नहीं धूप नहिं छाहीं ॥२॥
अस्सी सहस मुनी तब नाहीं, सहस अठासी मुलना ।
चाँद सूर्ज तारागन नाहीं, मच्छ कच्छ औतारा ॥३॥
बेद कितेब सुमिरन तब नाहीं, जीव न पारख आये ।
आदि अंत मध मन ना होते, पिरथी पवन न पानी ॥४॥
बाँग निवाज कलमा ना होते, नहीं रसूल खुदाई ।
गूँगा ज्ञान बिज्ञान प्रकासै, अनहद डंक बजाई ॥५॥
कहैं कबीर सुनो हो अवधू, आगे करो बिचारा ।
पूरन ब्रह्म कहाँ तें प्रगटे, कृत्रम किन उपचारा ॥६॥

॥ शब्द ४ ॥

सुरति से देखिले वहि देस ॥ टेक ॥
देखत देखत दीसन लागे, मिटिगे सकल अँदेस ॥१॥
वहँ नहिँ चन्द वहाँ नहिँ सूरज, नाहिँ पवन परवेस ॥२॥
वहँ नहिँ जाप वहाँ नहिँ अजपा, निःअच्छर परवेस ॥३॥
वहँ के गये बहुरि नहिँ आये, नहिँ कोउ कहा सँदेस ॥४॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, गहो सतगुरु उपदेस ॥५॥

॥ शब्द ५ ॥

हंसन का इक देस है, तहँ जाय न कोई।
काग बरन छूटै नहीं, कस हंसा होई ॥१॥
हंस बसै सुख सागरे, झीलर* नहिँ आवै।
मुक्ताहल को छाँड़ि के, कहुँ चुंच न लावै ॥२॥
मानसरोवर की कथा, बकुला का जानै।
उन के चित तलिया† बसै, कहो कैसे मानै ॥३॥
हंसा नाम धराइ के, बकुला सँग भूले।
ज्ञान दृष्टि सूझै नहीं, वाही मति फूले ॥४॥
हंसा उड़ि हंसा मिले, बकुला रहि न्यारा।
कहैँ कबीर उठि ना सकै, जड़ जीव बिचारा ॥५॥

॥ शब्द ६ ॥

अवधू कौन देस निज डेरा ॥ टेक ॥
संसय काल सरीरे व्यापै, काम क्रोध मद घेरा।
भूलि भटकि रचि पचि मरि जैहै, चलत हंस जम घेरा ॥१॥
भवसागर औगाह अगम है, वहाँ नाव ना बेड़ा।
छाँड़ो कपट कुटिल चतुराई, केचुलो पंथ न हेरा ॥२॥

---

* छिछले पानी में। † तलैया।

चित्रगुप्त जब लेखा माँगै, कवन पुरुष बल हेरा ।
मारै जीव दाव* फटकारे, अगिन कुंड लै डारा ॥३॥
मन बच कर्म गहो सतनामा, मान बचन गुरु केरा ।
कहैं कबीर सुनो हो अवधू, सब्द मैं हंस बसेरा ॥४॥

॥ शब्द ७ ॥

हंसा चलो अगमपुर देसा ।
छाँड़ो कपट कुटिल चतुराई, मानि लेहु उपदेसा ॥१॥
छाँड़ो काम क्रोध औ माया, छाँड़ो द्वेस कलेसा ।
ममता मेटि चलो सुख सागर, काल गहै नहिं केसा ॥२॥
तीन देव पहुँचैं नाहीं तहँ, नहीं सारदा सेसा ।
कुरम बराह तहँ पार न पावै, नहिं तहँ नारि नरेसा ॥३॥
गुरु गम गहो सब्द की करनी, छाँड़ो मति बहुतेसा ।
हंसा सहज जाइ तहँ पहुँचे, गहि कबीर उपदेसा ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

हंसा अमरलोक निज देसा ॥ टेक ॥
ब्रह्मा बिस्नु महेसुर देवा, परे भर्म के भेसा ।
जुगन जुगन हम आइ चेताये, सार सब्द उपदेसा ॥१॥
सिव सनकादिक नारद हूँ गै, कर्म काल कलेसा ।
आदि अंत से हमैं न चीन्हे, धरत काल को भेसा ॥२॥
कोइ कोइ हंसा सब्द बिचारे, निरगुन करै निबेरा ।
सार सब्द हिरदे मैं झलके, सुख सागर की आसा ॥३॥
पान परवाना सब्द बिचारे, नरियर लेखा पाये ।
कहैं कबीर सुख सागर पहुँचे, छुटे कर्म की फाँसा ॥४॥

---

* तबर, कुल्हाड़ी ।

॥ शब्द ९ ॥

हंसा जगमग जगमग होई ॥ टेक ॥
विन बादर जहँ बिजुली चमकै, अमृत बर्षा होई।
ऋषि मुनि देव करैं रखवारी, पिये न पावै कोई ॥१॥
राति दिवस जहँ अनहद बाजै, धुनि सुनि आनँद होई।
जोति बरै साहेब के निसु दिन, तकि तकि रहत समोई ॥२॥
सार सब्द की धुनी उठत है, बूझै बिरला कोई।
झरना झरै जूह* के नाके, (जेहिँ) पियत अमर पद होई ॥३
साहिब कबीर प्रभु मिले बिदेही, चरनन भक्ति समोई।
चेतनवाला चेत पियारे, नहिँ तौ जात बहोई ॥४॥

॥ शब्द १० ॥

हंसा गवन बड़ि दूर, साजन मिलना हो ॥ टेक ॥
ऊँची अटरिया पिया कै दुअरिया, गगन चढ़ै कोइ सूर ॥१॥
यहि बन बोलत कोइल कोकिला, वोहि बन बोलत मोर ॥२॥
अंतर बीच प्रेम कै बिरवा, चढ़ि देखब देस हजूर ॥३॥
कहैं कबीर सुनु पिय की प्यारी, नाचु घुँघट करि दूर ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

चलो हंसा वा लोक मैं, जहँ प्रीतम प्यारा ॥ टेक ॥
अगम पंथ सूझै नहीं, नहिँ दिस ना द्वारा।
नाम क पेच घुमाइ के, रहु जग से न्यारा ॥१॥
रैन दिवस उहवाँ नहीं, नहिँ रवि ससि तारा।
जहाँ भँवर गुंजार है, गति अगम अपारा ॥२॥
मात पिता सुत बंधु है, सब जगत पसारा।
इहाँ मिले उहाँ बीछुरे, हंसा होय न्यारा ॥३॥

---

*नदी, नहर।

निरगुन रूप अनूप है, तन मन धन वारा।
कहैं कबीर गुरु ज्ञान मैं, रहु सुरति सम्हारा ॥४॥

॥ शब्द १२ ॥

कहौं उस देस की बतियाँ, जहाँ नहिं होत दिन रतियाँ ॥१॥
नहीं रवि चन्द्र औ तारा, नहीं उँजियार अँधियारा ॥२॥
नहीं तहँ पवन औ पानी, गये वहि देस जिन जानी ॥३॥
नहीं तहँ धरनि आकासा, करै कोइ संत तहँ बासा ॥४॥
उहाँ गम काल की नाहीं, तहाँ नहिं धूप औ छाहीं ॥५॥
न जोगी जोग से ध्यावै, न तपसी देंह जरवावै ॥६॥
सहज म ध्यान से पावै, सुरति का खेल जेहि आवै ॥७॥
सोहंगम नाद नहिं भाई, न बाजै संख सहनाई ॥८॥
निहच्छर जाप तहँ जापै, उठत धुन सुन्न से आपै ॥९॥
मँदिर मैं दीप बहु बारी, नयन बिनु भई अँधियारी ॥१०॥
कबीरा देस है न्यारा, लखै कोइ नाम का प्यारा ॥११॥

॥ महिमा नाम ॥

॥ शब्द १ ॥

सुरतिया नाम से अटकी ॥ टेक ॥
कर्म भर्म औ बेद बड़ाई, या फल से सटकी।
नाम के चूके पार न पैहै, जैसे कला नट की ॥१॥
जागत सोवत सोवत जागत, मोहिं परै चट* सी।
जैसे पपिहा स्वाँति बुन्द को, लागि रहै रट सी ॥२॥
भर्म मेटुकिया सिर के ऊपर, सो मेटुकी पटकी।
हम तो अपनी चाल चलत हैं, लोग कहैं उलटी ॥३॥

* चाट, चटक।

प्रीत पुरानी नई लगन है, या दिल मैं खटकी ।
और नजर कछु आवत नाहीं, नहिं मानै हटकी ॥४॥
प्रेम की डोरी मैं मन लागा, ज्ञान डोर झटकी ।
जैसे सलिता सिंधु समानी, फेर नहीं पलटी ॥५॥
गहु निज नाम खोज हिरदे मैं, चीन्हि परै घट की ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, फेर नहीं भटकी ॥६॥

॥ शब्द २ ॥

अजर अमर इक नाम है सुमिरन जो आवै ॥टेक॥
बिन मुखड़ा से जाप करो, नहिं जीभ डोलावो ।
उलटि सुरति ऊपर करो, नैनन दरसावो ॥१॥
जाहु हंस पच्छिम दिसा, खिरकी खुलवावो ।
तिरवेनी के घाट पर, हंसा नहवावो ॥२॥
पानी पवन की गम नहीं, वोहि लोक मँझारा ।
ताही बिच एक रूप है, वोहि ध्यान लगावो ॥३॥
जिमीं असमान उहाँ नहीं, वो अजर कहावै ।
कहैं कबीर सोइ साध जन, वा लोक मँझावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

हंसा निसु दिन नाम अधारा ॥टेक॥
सार सब्द हिरदे गहि राखो, सब्द सुरति करु मेला ।
नाम अमी रस निसु दिन चाखो, बैठो अधर अधारा ॥१॥
यह संसार सकल जम फंदा, अरुझि रहा जग सारा ।
निरमल जोति निरंतर झलकै, कोऊ न कीन्ह बिचारा ॥२॥
माया मोह लोभ मैं भूले, कर्म भर्म ब्योहारा ।
निस दिन साहेब संग बसत है, सार सब्द टकसारा ॥३॥

आदि अंत कोइ जानत नाहीं, भूल परा संसारा।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बैठो पुरुष दुआरा ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

हंसा करो नाम नौकरी ॥टेक॥
नाम बिदेही निसु दिन सुमिरै, नहिं भूलै छिन घरी॥१॥
नाम बिदेही जो जन पावैं, कबँु न सुरति बिसरी ॥२॥
ऐसो सब्द सतगुरु से पावै, आवा गवन हरी ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, पावै अमर नगरी ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

ब्योपारी निज नाम का हाटे चल भाई ॥टेक॥
साध संत गहकी भये, गुरु हाट लगाई।
अग्र बस्तु इक मूल है, सौदागर लाई ॥१॥
सील सँतोष पलरा भये, सूरति करि डाँड़ी।
ज्ञान बटखरा चढ़ाइ कै, पूरा करु भाई ॥२॥
करि सौदा घर को चले, रोके दरबानी।
लेखा माँगे बस्तु का, कहँ के ब्योपारी ॥३॥
अच्छर पुरुष इक मूल है, गुरु दीन्ह लखाई।
इतना सुनि लज्जित भये, सिर दीन्ह नवाई ॥४॥
हाट गली पचरंग की, भव करत दलाली।
जो होवै वहि पार को, तिन्ह देत उतारी ॥५॥
अमर लोक दाखिल भये, तजि कै संसारा।
खबर भई दरबार, पुरुष पै नजर गुजारा ॥६॥
कहैं कबीर बैठे रहो, सिख लेहु हमारी।
काल कष्ट ब्यापै नहीं, येहि नफा तुम्हारी ॥७॥

॥ शब्द ६ ॥

धुनि सुनि के मनुवाँ मगन हुआ ॥टेक॥
लाइ समाज रहो गुरु चरना, अंत काल दुख दूरि हुआ॥१॥
सुन्न सिखर पर झालर झलकै, बरसै अमी रस बुंद चुआ २
सुरति निरति की डोरी लागी, तेहिँ चढ़ हंसा पार हुआ॥३
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, अगम पंथ पर पाँव दिया ॥४

॥ शब्द ७ ॥

जो कोइ सत्तनाम धुनि धरता ॥टेक॥
तन कर गुन* औ मन कर सूजा, सब्द परोहन† भरता ॥१॥
करु ब्योपार सहज है सौदा, टूटा कबहुँ न परता ॥२॥
बेद कितेब से नाम सरस है, सोई नाम लै तरता ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, फँटा कोइ न पकरता ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

सुमिरन बिन अवसर जात चली ॥टेक॥
बिन माली जस बाग सूखि गै, सींचे बिन कुम्हिलात कली १
छिमा सँतोष जबै तन आवै, सकल ब्याध तब जात टली २
पाँचोँ तत्त बिचारि के देखो, दिल की दुरमति दूर करी ३
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, सकल कामना छोड़ चली ॥४॥

---

*सुतली। †बरधी लादने की; माल।

॥ महिमा शब्द ॥

॥ शब्द १ ॥

हंसा सब्द परख जो आवै ।
करि अकास* चित तान पार को, मूल सब्द तब पावै ॥१॥
पाँच तत्त पच्चीस प्रकिरती, तीनौं गुनन मिलावै ।
अंक परवाना जबही पावै, तब वह संत कहावै ॥२॥
अंक परवाना सब्द अतीत है, जो निसु दिन गोहरावै ।
अंस बंस ह्वै मलयागिरि परसत, सत्त सबै बिधि पावै ॥३॥
एकै सब्द सकल जग पूरा, सुरति रहनि जब आवै ।
चंद सुरज दुइ साखी देई, सुखमनि चँवर ढुरावै ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाइ हंसा, या पद को अरथावै ।
जगमग जोत झलाझल झलकै, निर्मल पद दरसावै ॥५॥

॥ शब्द २ ॥

हंसा परखु सब्द टकसारा ॥ टेक ॥
बिन पारख कोइ पार न पावै, भूला जग संसारा ।
सब आये ब्योपार करन को, घर की जमा गँवाया ॥१॥
राम रतन पहलाद पारखी, नित उठ पारख कीन्हा ।
इंद्रासन सुख आसन लीन्हा, सार सब्द ना चीन्हा ॥२॥
अब सुनि लेहु जवाहिर मोदी, खरा खोट नहिं बूझा ।
सिव गोरख अस जोगी नाहीं, उनहूं को नहिं सूझा ॥३॥
बड़ बड़ साधू बाँधे छोरे, राम भाग दुइ कीन्हा ।
'रारा' अच्छर पारख लीन्हा, 'मा' हिं भरम तज दीन्हा ॥४॥
जो कोइ होय जौहरी जग मैं, सो या पद को बूझै ।
तीन लोक औ चार लोक लौं, सब घट अंतर सूझै ॥५॥

---

*आकाश के अर्थ छिद्र के भी हैं—यहाँ अभिप्राय तीसरे तिल से है ।

कहैं कबीर हम सब को देखा, सबै लाभ को धावै ।
सतगुरु मिलै तो भेद बतावै, ठीक ठौर तब पावै ॥६॥

॥ शब्द ३ ॥

इक दिन साहेब बेनु बजाई ।
सब गोपिन मिलि धोखा खाई, कहैं जसुदा के कन्हाई ॥१॥
कोइ जंगल कोइ देवल बतावै, कोइ द्वारिका जाई ।
कोइ अकास पाताल बतावै, कोइ गोकुल ठहराई ॥२॥
जल निर्मल परवाह थकित भे, पवन रहे ठहराई ।
सोरह वसुधा एकइस पुर लौं, सब मुर्छित होइ जाई ॥३॥
सात समुद्र जबै घहराना, तैंतिस कोटि अघाना ।
तीन लोक तीनौं पुर थाके, इन्द्र उठा अकुलाना ॥४॥
दस औतार कृष्न लौं थाका, कुरम बहुत सुख पाई ।
समुझि न परो वार पार लौं, या धुनि कहँ तैं आई ॥५॥
सेसनाग औ राजा वासुक, बराह मुर्छित होइ आई ।
देव निरंजन आद्या माया, इन दुनहुन सिर नाई ॥६॥
कहैं कबीर सतलोक के पूरुष, सब्द केर सरनाई ।
अमी अंक तैं कुहुक निकारी, सकल सृष्टि पर छाई ॥७॥

॥ साध महिमा ॥

॥ शब्द १ ॥

साधु घर सील सँतोष बिराजै ।
दया सरूप सकल जीवन पर, सब्द सरोतरि गावै ॥१॥
जहाँ जहाँ मन पैारत धावै, ताके संग न जावै ।
आसन अदल अरु छिमा अग्र धुज, तन तजि अंत न धावै २

ततबादी सतगुरु पहिचाना, आतम दीप प्रगासा ।
साधू मिले सदा सीतल गति, निसु दिन सब्द बिलासा ॥३॥
कह कबीर प्रीति सतगुरु से, सदा निरंतर लागी ।
सतगुरु चरन हृदय मैं धारे, सुख सागर मैं बासी ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

धन्य भाग जा के साध पाहुना आये ॥टेक॥
भयो लाभ चरन अमृत लै, महा प्रसाद कि आसा ।
जौन मता हम जुग जुग ढूँढ़ो, सो साधन के पासा ॥१॥
जौन प्रसाद देवन को दुर्लभ, साध से नित उठि पाये ।
दगाबाज दुरमति के कारन, जनम जनम डहकाये* ॥२॥
कथा ग्रंथ होय द्वारे पर, भाव भक्ति समझावैं ।
काम क्रोध मद लोभ निवारे, हिलि मिलि मंगल गावैं ॥३॥
सील सँतोष बिबेक छिमा धरि, मोह के सहर लुटावैं ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, अमर लोक पहुँचावैं ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

बसै अस साध के मन नाम ॥टेक॥
जैसे हेत गाय बछवा से, चाटत सूखा चाम ॥१॥
कामी के हिये काम बसो है, सूम की गाँठी दाम ॥२॥
जस पुरइन जल बिन कुम्हिलावै, वैसे भगत बिन नाम ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, पद पाये निरबान ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

है साधू संसार मैं, कँवला जल माहीं ।
सदा सर्बदा सँग रहै, जल परसत नाहीं ॥१॥

---

*ठगाये ।

जल केरी ज्यों कूकुही, जल माहिँ रहानी ।
पँख पानी बेधै नहीं, कछु असर न जानी ॥२॥
मीन तिरै जल ऊपरे, जल लागै न भारा ।
आड़ अटक मानै नहीं, पैड़ै जल धारा ॥३॥
जैसे सीप समुद्र मेँ, चित देत अकासा ।
कुंभकला* है खेलही, तस साहेब दासा ॥४॥
जुगति जमूरा[†] पाइ कै, सरपै लपटाना ।
विष वा के बेधै नहीं, गुरु गम्म समाना ॥५॥
दूध भात घृत भोजन, वहु पाक मिठाई ।
जिभ्या लेस लगै नहीं, उन कै रसनाई ॥६॥
बामी मेँ बिषधर बसै, कोइ पकरि न पावै ।
कहैँ कबीर गुरु मंत्र से, सहजै चलि आवै ॥७॥

॥ शब्द ५ ॥

नगर मेँ साधू अदल चलाई ॥टेक॥
सार सब्द को पटा लिखावो, जम से लेहु लड़ाई ।
पाँच पचीस करो बस आपन, सहजे नाम समाई ॥१॥
सूरति सब्द एक सम राखो, मन का अदल उठाई ।
काम क्रोध की पूँजी तौलो, सहज काल टरि जाई ॥२॥
सूरति उलटि पवन के सोधो, त्रिकुटी मध ठहराई ।
सोहं सोहं बाजा बाजै, अजब पुरी दरसाई ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु बस्तु लखाई ।
अरध उरध बिच तारी लावो, तब वो लोके जाई ॥४॥

---

* घड़ों का खेल जिन्हैं सिर पर रख कर नट बाँस पर चढ़ते हैँ ।
† ज़हरमोहरा जिससे साँप का ज़हर असर नहीं करता ।

॥ शब्द ६ ॥

है कोइ अदली अदल चलावै ।
नगर मेँ चोर मूसन नहिँ पावै ॥१॥
संतन के घर पहरा जागै ।
फिरि वो काल कहाँ होइ लागै ॥२॥
पाँचो चोर छठे मन राजा ।
चित के चौतरा न्याव चुकावै ॥३॥
लालच नदिया निकट बहतु है ।
लोभ मोह सब दूर बहावै ॥४॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो ।
गगन मेँ अनहद डंक बजावै ॥५॥

॥ बिरह और प्रेम ॥

॥ शब्द १ ॥

कौन मिलावै मोहिँ जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाय ॥ टेक ॥
हौँ* हरनी पिया पारधी† हो, मारे सब्द के बान ।
जाहि लगी सो जानही हो, और दरद नहिँ जान हो ॥१॥
मैँ प्यासी हौँ पीव की हो, रटत सदा पिव पीव ।
पिया मिलै तो जीव है, (नातो) सहजै त्यागौँ जीव हो ॥२॥
पिय कारन पियरी भई हो, लोग कहैं तन रोग ।
छः छः लंघन मैँ करौँ रे, पिया मिलन के जोग हो ॥३॥
कहैँ कबीर सुन जोगिनी हो, तन मेँ मनहिँ मिलाय ।
तुम्हरी प्रीति के कारन जोगी, बहुरि मिलैंगे आय हो ॥४॥

---

* मैं । † शिकारी ।

॥ शब्द २ ॥

जो कोइ येहि बिधि प्रीति लगावै ॥ टेक ॥
गुरु का नाम ध्यान ना छूटै, परगट ना गोहरावै ॥१॥
कुरम* सुतन† को धरत है ऊँचे, आपु उदर को धावै।
निसु दिन सुरत रहै अंडन पर, पल भर ना बिसरावै ॥२॥
जैसे चात्रिक रटै स्वाँति को, सलिता निकट न आवै।
दीनदयाल लगन हितकारी, स्वाँती जल पहुँचावै ॥३॥
फूटि सुगंध कंज‡ की जैसे, मधुकर§ के मन भावै।
ह्वै गइ साँझि बंधि गे संपुट, ऐसी भक्ति कहावै ॥४॥
जैसे चकोर ससी तन निरखे, तन की सुधि बिसरावै।
ससि तन रहत एक टक लागो, तब सीतल रस पावै ॥५॥
ऐसी जुगत करै जो कोई, तब सो भगत कहावै।
कहैं कबीर सतगुरु की मूरत, तेहिं प्रभु दरस दिखावै ॥६॥

॥ शब्द ३ ॥

साहिब हमरे सनेसी आये ॥ टेक ॥
आये सनेसी मोरे आदि घरा से, सोवत मोहिं जगाये ॥१॥
पाती बाँचि जुड़ानी छाती, नैनन मैं जल धाये ॥२॥
धन्न भाग मोर सुनो हो सखी री, अजर अमर बर पाये ॥३॥
साहेब कबीर मोहिं मिलिगे सतगुरु, बिगरल मोर बनाये ४

॥ शब्द ४ ॥

अमी रस भँवरा चाखि लिया ॥ टेक ॥
जा के घट मैं प्रेम प्रगासा, सो बिरहिन काहे बारै दिया १
अंते न जाय अपन घट खोजै, सो बिरहिनि निज पावै पिया २

---

* कछुआ। † बच्चे या अंडे। ‡ कमल। § भँवरा।

पाव पलक मैं तसकर मारूँ, गुरु अपने को साखि दिया॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जियतै यह तन जोति लिया ४

॥ शब्द ५ ॥

बिरहिनि तो बेहाल है, को जानत हाला ॥ टेक ॥
सजन सनेही नाम का, हर दम का प्याला।
पीवैगा कोइ जौहरी, सतगुरु मतवाला ॥१॥
पीवत प्याला प्रेम का, हम भइ हैं दिवानी।
कहा कहूँ पिय रूप को, कछु अकथ कहानी ॥२॥
नाचन निकसी हे सखी, का घूँघुट काढ़ो।
नाच न जाने बावरी, कहे आँगन टेढ़ो ॥३॥
निःअच्छर के ध्यान मैं, मेटै अँधियाला।
कहैं कबीर कोइ संतजन, बिच लावत ख्याला ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

पिय को सोई सुहागिन भावै।
चित चंदन को निसु दिन रगरै, चुनि चुनि अंग चढ़ावै १
अति सुगंध बोलै मुख बानी, यहि बिधि खसम मनावै।
दाबत चरन दगा नहिं दिलमैं, काग कुबुधि बिसरावै २
बीते दिवस रैन जब आई, कर जोरि सेवा लावै।
इक इक कलियाँ चुनै महल मैं, सुंदर सेज बिछावै ॥३॥
सुरति चँवर लै सनमुख झारै, तबै पलंग पौढ़ावै।
मगन रहै नित गगन झरोखे, झलकत बदन छिपावै ॥४
मिलि दुलहा जब दुलहिन सोहै, दिल मैं दिलहिं मिलावै।
कहैं कबीर भाग वहि धन के, पतिब्रता बनि आवै ॥५॥

॥ शब्द ७ ॥

अलमस्त दिवानी, लाल भरी रँग जोबनियाँ।
रस मगन भरी है, देखि लालन की सेजरियाँ ॥१॥

कर पंखा डोलावै, संग सोहंग सहेलरियाँ।
जहँ चंद न सूरा, रैन नहीं वहँ भोरनियाँ ॥२॥
जहँ पवन न पानी, बिन बादल घनघोरनियाँ।
जहं बिजुली चमकै, प्रेम अमी की लगीं झरियाँ ॥३॥
वहँ काया न माया, कर्म नहीं कछु रेखनियाँ।
जहँ साहेब कबीर हैं, बिगसित पुहुप प्रकासनियाँ ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

दरस दिवाना बावरा, अलमस्त फकीरा।
एक अकेला ह्वै रहा, अस मत का धीरा ॥१॥
हिरदे में महबूब है, हर दम का प्याला।
पीयेगा कोइ जौहरी, गुरुमुख मतवाला ॥२॥
पियत पियाला प्रेम का, सुधरे सब साथी।
आठ पहर झूमत रहै, जस मैगल* हाथी ॥३॥
बंधन काटे मोह के, बैठा निरसंका।
वा के नजर न आवता, क्या राजा रंका ॥४॥
धरती तो आसन किया, तंबू असमाना।
चोला पहिरा खाक का, रहा पाक समाना ॥५॥
सेवक को सतगुरु मिले, कछु रहि न तबाही†।
कहैं कबीर निज घर चलो, जहँ काल न जाई ॥६॥

॥ शब्द ९ ॥

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई ॥ टेक ॥
गनिये न बरन अबरन रंक धनी, बिमल बास निज सोई १
बाम्हन छत्री बैस सुद्र सब, भगत समान न कोई ॥२॥
धन वह गाँव ठाँव अस्थाना, ह्वै पुनीत संग सब लोई॥३॥

---

* मस्त। † दुख, क्लेश।

होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई ॥४॥
जैसे पुरइनि रहै जल भीतर, कहैं कबीर जग मैं जन सोई ५

॥ सूरमा ॥

॥ शब्द १ ॥

लागा मोरे बान कठिन करका ॥ टेक ॥
ज्ञान बान धरि सतगुरु मारा, हिरदे माहिँ समाना ।
बीच करेजा पीर होत है, धीरज ना धरना ॥१॥
करिया* काटे जिये रे भाई, गुरु काटे मरि जाई ।
जिनके लागे सब्द के डंडा, त्यागि चले पात्छाई† ॥२॥
यह दुनियाँ सब भई दिवानी, रोवत है धन काँ ।
दौलत दुनिया छोड़ि दिया है, भागि चले बन काँ ॥३॥
चारि दिनाँ की है जिँदगानी, मरना है सब का ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गाफिल है कब का ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

बाजत कीँगरी निरवान ॥ टेक ॥
सुनि सुनि चित भइ बावरी, रीझै मन सुल्तान ।
सील सँतोष के बख्तर पहिरी, सत दृष्टी परवान ॥१॥
ज्ञान सरोही‡ कमर बाँधि लै, सूरा रनहिँ समान ।
प्रेम मगन है घायल खेलै, कायर रन बिचलान ॥२॥
सूरा के मैदान मैं, का कायर को काम ।
सूरा को सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥३॥
जीवत मृतक होइ रहु जोधा, करो बिमल असनान ।
उनमुनि दृष्टि गगन चढ़ि जावो, लागै त्रिकुटी ध्यान ॥४॥

---

* साँप । † बादशाही । ‡ एक तरह की तलवार ।

रोम रोम जाको पद परगासा, ता को निरमल ज्ञान ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, करो इस्थिर मन ध्यान ॥५॥

॥ शब्द ३ ॥

भाई ऐन लड़ै सोइ सूरा ॥ टेक ॥
मन मारि अगमपुर लेहू, चित्रगुप्त परे डेरा करहू ॥१॥
जहँ नाहिं जन्म अरु मरना, जम आगे न लेखा भरना ॥२॥
जमदूत है तेरा बैरी, का सोवो नींद घनेरी ॥३॥
जहँ बाँधि सकल हथियारा, गुरु ज्ञान को खड़ग सम्हारा ॥४
गढ़ बस किये पाँचो थाना, जहँ साहेब है मेहरबाना ॥५॥
जहँ बाजै जुझावर* बाजा, सब कायर उठि उठि भाजा॥६॥
कोइ सूर अड़े मैदाना, तहँ काट किये खरिहाना ॥७॥
जहँ तीर तुपक नहिं छूटे, तहँ सब्दन सोँ गढ़ टूटे ॥८॥
जहँ बाजै कबीर को डंका, तहँ लूटि लिये जम बंका ॥९॥

॥ बिनती ॥

॥ शब्द १ ॥

कब लखि हौं बंदी-छोर ॥ टेक ॥
जरा मरन मेटो जिय के रो, जियत मरत दुख जोर ॥१॥
हे साहेब मोहिं अरज न आवै, पुरवो ललसा मोर ॥२॥
हे साहेब मैं बारी भोरी, आखिर आमिन† तोर ॥३॥
हे साहेब मोर भरम मिटावो, राखो चरन कि ओर ॥४॥
कहैं कबीर सुनो मोर आमिनि, ले चलुँ फंदा तोड़ ॥५॥

---

*लड़ाई का । † धनी धर्मदास की स्त्री का नाम; शरणागत जीव ।

॥ शब्द २ ॥

अबकी बार उबारिये, मेरी अरजी दीनदयाल हो ॥टेक॥
आई थी वा देस से हो, भई परदेसिन नारि।
वा मारग मोहिं भूलि गो, (जासे) बिसरि गयो
निज नाम हो ॥१॥
जुगन जुगन भरमत फिरी हो, जम के हाथ बिकाय।
कर जोरे बिनती करौं हो, मिलि बिछुरन
नहिं होय हो ॥२॥
बिषम नदी बिकरार है हो, मन हठ करिया धार।
मोह मगर वा के घाट में, (जिन) खायो
सुर नर झारि हो ॥३॥
सब्द जहाज कबीर के हो, सतगुरु खेवनहार।
कोइ कोइ हंसा उतरिहैं हो, पल में लेउँ छोड़ाइ हो ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

साहेब मैं ना भूलौं दिन राती ॥ टेक ॥
जैसे सीपि रहै जल भीतर, चाहत नीर सुवाँती।
बारह मास अमी रस बरसै, ता से नाहिं अघाती ॥१॥
जैसे नारि चहै पिय आपन, रहै बिरह रस माती।
अंतर वा के उठै मलोला, बिरह दहै तन छाती ॥२॥
गम्म अगम कोउ जानत नाहीं, रोकै काल अचानक घाटी।
या तें नाम से लगन लगाओ, भक्ति करो दिन राती ॥३॥
साहेब कबीर अगम के बासी, नाहिं जाति नहिं पाँती।
निसु दिन सतगुरु चरन भरोसे, साध के संग सँगाती ॥४॥

॥ दीनता का अंग ॥

॥ शब्द १ ॥

गरीबी है सब मेँ सरदार ॥टेक॥
उलटि के देखो अदल गरीबी, जा की पैनी धार ॥१॥
सतजुग त्रेता द्वापर कलिजुग, परलय तारनहार ॥२॥
दुखभंजन सुखदायक लायक, बिपति बिडारनहार ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, हंस उबारनहार ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

साहेब को मेहीँ* होय सो पावै ॥टेक॥
मोटी माटी परै कोहरा† घर, उठि चार लात लगावै।
वो माटी को मेहीँ करि सानै, तबै चाक बैसावै‡ ॥१॥
मोटा सूत परै कोरिया घर, मेहीँ मेहीँ गोहरावै।
वोहा सूत को ताना तानै, मेहीँ कहाँ से आवै ॥२॥
बिखरी खाँड़ परै रेती मेँ, कुंजर मुख ना आवै।
मान बड़ाई छोड़ बावरे, चिँउटी होइ चुनि खावै ॥३॥
बड़े भये तो सब जग जानै, सब पर अदल चलावै।
कहैँ कबीर बड़ बाँधा जैहै, वा को कौन छुड़ावै ॥४॥

॥ भेद बानी ॥

॥ शब्द १ ॥

पियत मरहमी यार, अमी रस बुंद झरै ॥टेक॥
बिन सागर के अमृत भरिया, बिना सीप के मोती।
संत जवाहिर पारख कीन्हा, अग्र ले बस्तु धरी ॥१॥
होरी डगर गगर सिर ऊपर, गेडुर मद्ध धरी।
चेतन चले सुरति नाहिँ चूकै, उलटा नीर चढ़ी ॥२॥

---

*महीन=बारीक अर्थात दीन। †कुम्हार। ‡बैठावै।

टोहि लया सतसंग पाइ कै, बिन गुरु कौन कही।
सोना थीर कसौटी नाहीं, कैसे कै समुझि परी ॥३॥
भेदी होय सो भर भर पीवै, अनभेदी भरम फिरी।
कहैं कबीर मिलैं जो सतगुरु, जीवन मुक्त करी ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

जो कोइ निरगुन दरसन पावै ॥टेक॥
प्रथमे सुरति जमावै तिल पर, मूल मंत्र गहि लावै।
गगन गराजै दामिनि दमकै, अनहद नाद बजावै ॥१॥
बिन जिभ्या नामहिं को सुमिरै, अमि रस अजर चुवावै।
अजपा लागि रहै सूरति पर, नैन न पलक डोलावै ॥२॥
गगन मँदिल मैं फूल फुलाना, उहाँ भँवर रस पावै।
इँगला पिँगला सुखमनि सोधै, प्रेम जोति लौ लावै ॥३॥
सुन्न महल मैं पुरुष बिराजै, जहाँ अमर घर छावै।
कहैं कबीर सतगुरु बिन चीन्हे, कैसे वह घर पावै ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

पिया कै खोजि करै सो पावै ॥टेक॥
ई करता बसि या घट भीतर, कहत न कछु बनि आवै।
स्वाँसा सार सुरति मैं राखै, त्रिकुटी ध्यान लगावै ॥१॥
नाभि कमल अस्थान जीव का, स्वाँसा लगि लगि जावै।
ठहरत नाहिं पलक निस बासर, हाथ कवन बिधि आवै ॥२॥
बंक नाल होइ पवन चढ़ावै, गगन गुफा ठहरावै।
अजपा जाप जपै बिनु रसना, काल निकट नहिं आवै ॥३॥
ऐसी रहनि रहै निस बासर, करम भरम बिसरावै।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बहुरि न भव जल आवै ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

बिन गुरु ज्ञान नाम ना पैहौ, मिरथा जनम गँवाई हो ॥टेक
जल भर कुंभ धरे जल भीतर, बाहर भीतर पानी हो।
उलटि कुंभ जल जलहि समैहै, तब का करिहै। ज्ञानी हो १
बिनु करताल पखावज बाजै, बिनु रसना गुन गाया हो।
गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु अलख लखाया हो ॥२॥
है अथाह थाह सबहिन मैं, दरिया लहर समानी हो।
जाल डारि का करिहौ धीमर, मीन के ह्वै गै पानी हो ॥३॥
पंछी क खोज औ मीन कै मारग, ढूँढ़े ना कोइ पाया हो।
कहैं कबीर सतगुरु मिल पूरा, भूले को राह बताया हो ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

उतर दिसा पँथ अगम अगोचर, अधर अंग एक देस हो।
चल हो सजन वो देस अमर है, जहँ हंसन को बास हो १
आवै जाय मरै ना कबहूँ, रहै पुरुष के पास हो।
आलस मोह एको नहिँ ब्यापै, सुपने सूरति जास हो ॥२॥
पीवो हंस अमृत सुख धारा, बिनु सुरही* के दूध हो।
संसय सोग कछू नहिँ मन मैं, बिनु मुक्ता गुन सूझ हो॥३
सेत सिँहासन सेत बिछौना, जहँ बसै पुरुष हमार हो।
अच्छर मूल सदा मुख भाखौ, चित दे गहहु सोहाग हो॥४
सेत तँबूल समरथ मुख छाजै, बैठे लोक मँझार हो।
हंसन के सिर मटुक बिराजै, मानिक तिलक लिलार हो ५
आमिनि ह्वै उतरे भवसागर, जिन तारे कुल बंस हो।
सतगुरु भाव कछनी तन कपरा, मिलि लेहु पुरुष कबीर हो ६

---

* गाय।

॥ शब्द ६ ॥

अवधू हंस देस है न्यारा ॥टेक॥
तीरथ ब्रत औ जोग जाप तप, सुरति निरति से न्यारा।
तीन लोक से बाहर डोलै, करम भरम पचि हारा ॥१॥
कोटि कोटि मुनि ब्रह्मा होइगे कोई न पाये पारा।
मंतर जाप उहाँ ना पहुँचै, सुरति करो दरबारा ॥२॥
सुख सागर मेँ बासा कीजै, मुकता करो अहारा।
बंकनाल चढ़ि गरजन गरजै, सतगुरु अधर अधारा ॥३॥
कहैँ कबीर सुनो हो अवधू, आप करो निरवारा।
हंसा हमरे मिले हंसन मेँ, पुनि न लखे भवजारा ॥४॥

॥ शब्द ७ ॥

सतगुरु सब्द गही मोरे हंसा, का जड़ जन्म गँवावसु हो।टेक
त्रिकुटी धार बहै इक संगम, बिना मेघ झरि लावसु हो।
लौका लौकै बिजुली तड़पै, अजब रूप दरसावसु हो।१॥
करहु प्रीति अभि अंतर उर मेँ, कवने सुर लै गावसु हो।
गगन मँदिल मेँ जोति बरत है, तहाँ सुरत ठहरावसु हो २
इँगला पिँगला सुखमनि सोधो, गगन पार ठहरावसु हो।
मकर तार के द्वारे निरखो, ऊपर गढ़ी उठावसु हो ॥३॥
बंकनाल पट खरकि* उलटिगे, मूल चक्र पहिरावसु हो।
द्वादस कोस बसै मोर साहेब, सूना सहर बसावसु हो ॥४॥
दूनौँ सरहद अनहद बाजै, आगे सोहँग दरसावसु हो।
कहैँ कबीर सुनो भाइ साधो, अमर लोक पहुँचावसु हो॥५

*खिड़की, द्वार।

॥ शब्द ८ ॥

हंसा कोइ सतगुरु गम पावै ॥टेक ॥
उजल वास निसु बासर देखै, सीस पदम झलकावै ।
राव रंक सब सम करि जानै, प्रगट संत गुन गावै ॥१॥
अति सुख सागर नर्क स्वर्ग नहिँ, दुरमति दूर बहावै ।
जहँ देखूँ तहँ परसत चंदा, फनि मनि जोति बरावै॥२॥
रमै जगत में ज्यौं जल पुरइनि, येहि बिधि लेप न लावै ।
जल के पार कँवल बिगसाना, मधुकर के मन भावै ॥३॥
बरन बिबेक भेद सब जाना, अबरन बरन मिलावै ।
अटक भटक आड़ नहिँ कबहीं, घट फूटे मिलि जावै ॥४
जब का मिलना अब मिलि रहिये, बिछुरत छुरी लखावै।
कहँ कबीर काया का मुरचा, सिकल किये बनि आवै॥५॥

॥ शब्द ९ ॥

अविगति पार न पावै कोई ॥टेक॥
अविगति नाम पुरुष को कहिये, अगम अगोचर बासा ॥
ता को भेद संत कोइ जानै, जा की सुरति समोई ॥१॥
अविगति अच्छर जग से न्यारा, जिभ्या कहा न जाई ।
बेद कितेब पार नहिँ पावै, भूलि रहे नर लोई ॥२॥
अविगति पुरुष चराचर ब्यापै, भेद न पावै कोई ।
चार बेद में ब्रह्मा भूले, आदि नाम नहि पाई ॥३॥
अविगति नाम की अद्भुद महिमा, सुरति निरति से पाई।
दास कबीर अमरपुर बासी, हंसा लोक पठाई ॥४॥

॥ शब्द १० ॥

हंसा अमर लोक पहुँचावो ॥टेक॥
मन कै मरम धरो गुरु आगे, ज्ञान घोड़ चढ़ि आवो।
सहज पलान चित्त कै चाबुक, अलख लगाम लगावो १
निरखि परखि के तरकस बाँधो, सुरति कमान चढ़ावो।
रबि को रथ सहजे मैं मिलिहै, वोही को सान बुझावो २
कुमति काटि अलग करि डारो, सुमति के नीर बुझावो।
सार सब्द की बाँधि कटारी, वोही से मारि हटावो॥३
धीर्ज छिमा का संग लिये दल, मोह के महल लुटावो।
ताही समय ममोसी राजा, वाहि को पकरि मँगावो ॥४
दिल को भेदी सहजहि मिलिहै, अनहद संख बजावो।
कहैं कबीर तोरे सिर पर साहेब, ताही से लव लावो॥५॥

॥ शब्द ११ ॥

निरभय होइ के जागु रे मन मोर ॥टेक॥
दिन के जागो राति के जागो, मूसै ना घर चोर ॥१॥
बावन कोठरी दस दरवाजा, सब मैं लागैं चोर ॥२॥
आगे जेठ जिठनियाँ पाछे, सँग मैं देवर तोर ॥३॥
कहैं कबीर चलु गुरु के मत मैं, का करिहै जम जोर ॥४॥

॥ शब्द १२ ॥

देखब साँईं कै बजार, सखी सँग हमहुँ चलब अब॥टेक॥
सासु के आये पाहुना, ननदी के चालनहार।
खिरकी के पैंड़ा लै चले हैं, खुलि गये कपट किवार ॥१॥
चार जतन का बना खटोलना, आले आले बाँस लगाय।
पाँच जना मिलि लै चले हैं, ऊपर से लालि ओढ़ाय॥२॥

भवसागर इक नदी बहत है, रोवै कुल परिवार।
एक न रोवै उनकी तिरिया, जिन्ह के सिखावनहार ॥३॥
भवसागर के घाट पर, इक साध रहे त्रिकरार।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बिरले उतरिगे पार ॥४॥

॥ शब्द १३ ॥

रासा परचे रास है, जानै कोइ जागृत सूरा।
सतगुरु की दाया भई, लखो जगमग नूरा ॥१॥
दो परबत के संधि मैं, लखो जगमग नूरा।
अद्भुत कथा अपार है, कैसे लागै तीरा ॥२॥
तन मन से परिचय करो, सहजै ध्यान लगावो।
नाद बिंद दोइ बाँधि के, उलटा गगन चढ़ावो ॥३॥
अधर मध्य के सुन्न मैं, बोलै सब्द गँभीरा।
ज्यौं फूलन मैं बास है, त्यौं रमि रहे कबीरा ॥४॥

॥ शब्द १४ ॥

जुक्ति से परवान बाबा, जुक्ति से परवान बे ॥टेक॥
मूल बाँधो नाभि साधो, पियो हंसा पवन बे।
सुषमना घर करो आसन, मिटै आवागवन बे ॥१॥
तीन बाँधो पाँच साधो, आठ डारो काट बे।
आव हंसा पियो पानी, त्रिबेनी के घाट बे ॥२॥
माय मार पिता को बाँधो, घर को देव जराय बे।
ऐसो बाबा चतुर भेदी, गगन पहुँचै जाय बे ॥३॥
मार ममता टार तृष्ना, मैल डारो धोय बे।
कहैं कबीरा सुनौ साधो, आप कर्ता होय बे ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

अवधू जानि राखु मन ठौरा, काहे को बाहर दौरा ॥टेक॥
तो मैं गिरवर तो मैं तरवर, तो मैं रबि औ चन्दा ।
तारा मंडल तोहि घट भीतर, तो मैं सात समुन्दा ॥१॥
ममता मेटि पहिर मन मुद्रा, ब्रह्म बिभूति चढ़ावो ।
उलटा पवन जटा कर जोगी, अनहद नाद बजावो ॥२॥
सील कै पत्र छमा कै झोली, आसन दृढ़ करि कीजै ।
अनहद सब्द होत धुन अंतर, तहाँ अधर चित दीजै ॥३॥
सुकदेव ध्यान धस्यो घट भीतर, तहाँ हती कहँ माला ।
कहैं कबीर भेष सोइ भूला, मूल छोड़ि गहि डाला ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

माई मैं तो दोनौं कुल उँजियारी ॥टेक॥
सास ससुर को लातन मारी, जेठ की मूछ उखारी ।
राँध पड़ोसिन कीन्ह कलेवा, घर बुढ़िया महतारी ॥१॥
पाँच पूत कोखिया के खाये, छठएँ ननद दुलारी ।
स्वामी हमरे सेज बिछावैं, सूतब गोड़ पसारी ॥२॥
पाँच खसम नैहर मैं कीन्हे, सोरह किये ससुरारी ।
वा मुंडो* का मूड़ मुड़ाऊँ, जो सरवर करै हमारी ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, आपै करो बिचारी ।
आदि अंत कोइ जानत नाहीं, नाहक जनम खुवारी ॥४॥

॥ शब्द १७ ॥

देखलूँ मैं सजनवाँ, पियवा अनमोल के ॥ टेक ॥
देखलूँ मैं कायानगर मैं, काया पुरुषवा खोज के ।
काहे सजनवाँ बिराजे भवनवाँ, दोनौं नयनवाँ जोड़ के ॥१

*राँड़ ।

इँगला पिँगला सुषमन साधो, मनुवाँ आपन रोक के।
दसईं दुअरिया लागी कवरिया, खोलो सब्द से जोड़ के॥२
रिमिझिमि रिमिझिमि मोती बरसै हीरा लाल बटोरके।
लौका लौकै बिजुली चमकै, झिँगुर बोलै झनकोर के ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निर्बान के।
या पद के जो अर्थ लगावै, सोई पुरुष अनमोल के ॥४॥

॥ चेतावनी ॥

॥ शब्द १ ॥

तोरी गठरी मैं लागे चोर, बटोहिया का रे सोवै ॥टेक॥
पाँच पचीस तीन है चोरवा, यह सब कीन्हा सोर-
बटोहिया का रे सोवै ॥१॥
जाग सबेरा बाट अनेड़ा, फिर नहिं लागै जोर-
बटोहिया का रे सोवै ॥२॥
भवसागर एक नदी बहतु है, बिन उतरे जाव बोर*-
बटोहिया का रे सोवै ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जागत कीजे भोर-
बटोहिया का रे सोवै ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

दिन रात मुसाफिर जात चला ॥ टेक ॥
जिन का चलना रैन सबेरा, सो क्यों गाफिल रहत परा ॥१॥
चलना सहर का कौन भरोसा, इक दिन होइहै पवन कला २

---

* बूड़, डूब।

मात पिता सुत बंधू ठाढ़े, आड़ि न सकै कोइ एक पला ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, देह धरे का यही फला ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

जागु हो काया गढ़ के मवासी ॥ टेक ॥
जो बंदे तुम जागत रहि हो, तुमहि को मिलत सोहाग हो १
जागत सहर में चोर न मूसै, नहिं लूटै भंडार हो ॥२॥
अनहद सब्द उठै घट भीतर, चढ़ि के गगनगढ़ गाज हो ॥३
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सार सब्द टकसार हो ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

बंदे जागो अब भइ भोर ।
बहुतक सोये जन्म सिराये, इहाँ नहीं कोइ तोर ॥१॥
लोभ मोह हंकार तिरिसना, संग लीन्हे कोर ।
पछिताहुगे तुम आदि अंत से, जइ हौ कवनी ओर ॥२॥
जठर अगिन से तोहि उबारे, रच्छा कीन्ह्यो तोर ।
एक पलक तुम नाम न सुमिरे, बड़े हरामीखोर ॥३॥
बार बार समझाय देखाऊँ, कहा न माने मोर ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, ध्रिग जीवन जग तोर ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

का सोवो सुमिरन की बेरिया ॥ टेक ॥
जिन सिरजा तिन की सुधि नाहीं, झकत फिरो
झक झलनि झलरिया ॥१॥
गुरु उपदेस सँदेस कहत हैं, भजन करो चढ़ि
गगन अटरिया ॥२॥
नित उठि पाँच पचीस कै झगरा, ब्याकुल मोरी
सुरति सुँदरिया ॥३॥

कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, भजन बिना तोरी
सूनी नगरिया ॥४॥

॥ शब्द ६ ॥

मन बौरा रे जग में भूल परी, सतगुरु सुधि बिसरी ॥टेक॥
आवत जात बहुत दिन बीते, जैसे रहट घरी।
निर्गुन नाम बिना पछितैहौ, फिरि फिरि येहि नगरी ॥१॥
मिथ्या धन तृष्ना के कारन, परजिव हतन करी।
मानुष जन्म भाग से पायो, सुधर के फिरि बिगरी ॥२॥
जेहि कारन तुम निस दिन धावो, धरे पाप मोटरी।
मातु पिता सुत बंधु सहोदर, सुगना कै ललरी* ॥३॥
जग सागर मन भँवर भुलाना, नाना बिधि घुमरी।
तेहि से काल दिया बंदिखाना, चौरासी कोठरी ॥४॥
कालहिं धाय चीन्हि नहिं पाये, बहु प्रकार भभरी†।
ज्यौं केहरि‡ प्रतिबिम्ब देखि के, कूप में कूदि परी ॥५॥
जोरि जारि बहुत पत गूँथे, भूसा की रसरी।
सत्त लोक की गैल बिसरि गे, परे जोनि जठरी§ ॥६॥
सतगुरु सरन हरन भव संकट, ता में चित न धरी।
पानी पाथर देव गोहराये, दर दर भटक मरी ॥७॥
सुख सागर आगर अबिनासी, ता में चित न धरी।
पासहिं रहा चीन्ह नहिं पाये, सुधि बुधि सकल हरी ॥८॥
निःचिंता निःतत्त्व निहच्छर, डोरी नहिं पकरी।
जा घर से तुम या घर आये, घर की सुधि बिसरी ॥९॥

---

* ललनी या कल जिस में तोता फँस जाता है। † हदस जाना, सहम जाना। ‡ शेर। § जठराग्नि का स्थान अर्थात उदर।

कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बिरलहिं सूझि परी।
सत्तनाम परवाना पावै, ता से काल डरी ॥१०॥

॥ शब्द ७ ॥

क्या सोवे गफलत के मारे, जागु जागु उठि जागु रे।
और तेरे कोइ काम न आवै, गुरु चरनन उठि लागु रे ॥१॥
उत्तम चोला बना अमोला, लगत दाग पर दाग रे।
दुइ दिन का गुजरान जगत में, जरत मोह की आग रे ॥२॥
तन सराय में जीव मुसाफिर, करता बहुत दिमाग रे।
रैन बसेरा करि ले डेरा, चलना सबेरा ताक रे ॥३॥
ये संसार बिषय रस माते, देखो समुझि बिचार रे।
मन भँवरा तजि बिष के बन को, चलु बेगम के बाग रे ॥४॥
कैंचुलि कर्म लगाइ चित्त में, हुआ मनुष तें नाग रे।
पैठा नाहिं समुझ सुख सागर, बिना प्रेम बैराग रे ॥५॥
साहेब भजै सो हंस कहावै, कामी क्रोधी काग रे।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, प्रगटे पूरन भाग रे ॥६॥

॥ शब्द ८ ॥

बिदेसी सुधि करु अपनो देस ॥ टेक ॥
आठ पहर कहँवाँ तुम भूलो, छाँड़ि देहु भ्रम भेस ॥१॥
ज्ञान ठौर सम ठौर न पाओ, या जग बहुत कलेस ॥२॥
जोगी जती तपी सन्यासी, राजा रंक नरेस ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सतगुरु के उपदेस ॥४॥

॥ शब्द ९ ॥

तुम तौ दिये नर कपट किवारी ॥ टेक ॥
वहि दिन कै सुधि भूल गये हौ, किये जो कौल करारी।
जाते भजन करौं दिन राती, गहि हौं सरन तुम्हारी ॥१॥

धार बार तुम अरज कियो है, कष्ट निवारु हमारी ।
यहाँ आइ कै भूलि पर्‍यो है, कीयो बहुत लबारी ॥२॥
आपु भुलायो जगत भुलायो, सब को कियो सँघारी ।
नाम भजे बिनु कौन बचावै, बहुत कियो मतवारी* ॥३॥
बार बार जंगल में धावै, आगि दियो परचारी ।
बहुत जीव तुम परलय कीन्हा, कस होय हाल तुम्हारी ॥४॥
तुम्हरे बदे† तो नरक बना है, अगिन कुंड में डारी ।
मार पीट के जम लै डारै, तब को करत गोहारी ॥५॥
बिन गुरु भक्ति के माता कैसी, जैसी बाँझिन नारी ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, भक्ती करो करारी ॥६॥

॥ शब्द १० ॥

मुसाफिर जैहौ कौनी ओर ॥टेक॥
काया सहर कहर है न्यारा, दुइ फाटक घनघोर ।
काम क्रोध जहँ मन है राजा, बसत पचीसो चोर ॥१॥
संसय नदी बहै जल धारा, बिषय लहर उठै जोर ।
अब का गाफिल सोवै बौरा, इहाँ नहीं कोइ तोर ॥२॥
उतर दिसा एक पुरुष बिदेही, उन पै करो निहोर ।
दाया लागै तब लै जैहैं, तब पावो निज ठौर ॥३॥
पाछल पैंड़ा समुझो भाई, होइ रहो नाम कि ओर ।
कहैं कबीर सुनो हो साधो, नाहीं तौ पैहौ झकझोर ॥४॥

॥ शब्द ११ ॥

सुलताना बलख बुखारे का ॥ टेक ॥
जिनके ओढ़न साल दुसाला, नवो तार दस तारे का ।
सो तो लागे भार उठावन, नव मन गुदरा भारे का ॥१॥

---

* मस्ती । † वास्ते, लिये ।

जिन के खाना अजब सराहन*, मिसरी खाँड़ छुहारे का।
अब तो लागे बखत गुजारन, टुकड़ा साँझ सकारे† का॥२॥
जा के संग कटक दल बादल, नौ सै घोड़ कँधारे का।
सो सब तजि के भये औलिया, रस्ता धरे किनारे का॥३॥
चुनि चुनि कलियाँ सेज बिछावै, डासन‡ न्यारे न्यारे का।
सो मरदौं ने त्याग दिया है, देखो ज्ञान बिचारे का॥४॥
सोलह सै साहेलरि§ छाँड़े, साहेब नाम तुम्हारे का।
कहैं कबीरा सुनो औलिया, फक्कर भये अखाड़े का॥५॥

॥ शब्द १२ ॥

धोबिया बन का भया न घर का ॥ टेक ॥
घाटै जाय धोबिनिया मारै, घर में मारै लरिका॥१॥
आज काल आपै फुटि जाई, जैसे ढेल डगर का॥२॥
भूला फिरै लोभ के मारे, जैसे स्वान सहर का॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, भेद न कहो नगर का॥४॥

॥ शब्द १३ ॥

भजन कर बीती जात घरी ॥ टेक ॥
गर्भ बास मैं भगति कबूले, इच्छा आन करी।
भजन तोहार करब हम साहेब, पक्का कौल करी॥१॥
वहँ से आय हवा जब लागी, माया अमल‖ करी।
दूध पिये मुसकात गोद मैं, किलकिल कठिन करी॥२॥
खात पियत औंड़ात गली मैं, चर्चा वह बिसरी।
ज्वान भये तरुनी सँग माते, अब कहु कैसे करी॥३॥

---

* प्रशंसा योग्य। † सबेरे। ‡ बिछौना। § सहेली। ‖ नशा।

वृद्ध भये तन काँपन लागे, कंचन जात बही ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बिरथा जनम गई ॥४॥

॥ शब्द १४ ॥

करो भजन जग आइ कै ॥ टेक ॥
गर्भ बास मेँ भक्ति कबूले, भूलि गए तन पाइ कै ॥१॥
लगी हाट सौदा कब करिहौ, का करिहौ घर जाइ कै ॥२॥
चतुर चतुर सब सौदा कीन्हा, मूरुष मूल गँवाइ कै ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गुरु के चरन चित लाइ कै ॥४॥

॥ शब्द १५ ॥

कोल्हुवा बना तेरा तेलिनी[*], पेरै संसार ॥ टेक ॥
कर्म काठ कै कोल्हुवा हो, संसय परी जाठ[†] ।
लोभ लहर के कातर[‡] हो, जग पाचर[§] लाग ॥१॥
तीरथ बरत के बैला हो, मन देहु नधाय[‖] ।
लोक लाज कै आँतरि[¶] हो, उबरि चलै न कोय ॥२॥
तिरगुन तेल चुआवै हो, तेलहन[**] संसार ।
कोइ न बचे जोगी जती, पेरै बारम्बार ॥३॥
कुमति महल बसै तेलनी, नापै कडुवा तेल ।
साहेब कबीर दैँ हेला हो, देखो औरै खेल ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

सब्दै चीन्ह मिलै सो ज्ञानी ॥ टेक ॥
गावत गीत बजावत ताली, दुनिया फिरै भुलानी ।
खोटा दाम बाँधि के गाँठी, खोजै बस्तु हेरानी ॥१॥

---

[*] माया । [†] कोल्हू का खंभा । [‡] पीढ़ा कोल्हू का जिस पर बैठ कर बैल को हाँकते हैं । [§] पचड़ । [‖] जोतना । [¶] रस्सी जिससे बैल को कोल्हू से नाथ देते हैं । [**] घानी ।

पोथी बाँधि बगल में दावे, थापै बस्तु बिरानी।
मूल मंत्र के मरम न जानै, कथनी बहुत बखानी॥२॥
आठो पहर लोभ में भूले, मोह चले अगुवानी।
ये सब भूत प्रेत होइ धावैं, अगिला जनम नसानी॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निरबानी।
हंसा हमरे सब्द महरमी, सो परखैं निज बानी॥४॥

॥ शब्द १७ ॥

तन बैरागी ना करौ, मन हाथ न आवै।
पुरुष बिहूनी नारि के, नित बिरह सतावै॥१॥
चोवा चंदन अगजा, घसि अंग चढ़ावै।
रोकि रहै मग नागिनी, जुग जुग भरमावै॥२॥
मान बड़ाई उर बसै, कछु काम न आवै।
अष्ट कोट* के भर्म में, कस दरसन पावै॥३॥
माया प्रान अकोर† दे, कर सतगुरु पूरा।
कहैं कबीर तब बाचिहै, जम कागद चीरा॥४॥

॥ शब्द १८ ॥

जनम यहि धोखे बीता जात॥ टेक॥
जस जल अँचुली में भल सीझै।
छुटि गये प्रान जस तरवर पात॥१॥
चारि पहर धंधा में बीते।
रैन गँवाई सोवत खाट॥२॥
एकै पहर नाम को गहि ले।
नाम न गहो तो कौने साथ॥३॥

---

* पाँच तत्व और तीन गुन। † चाट; घूस।

का लै आये का लै जावो।
मन में देख हृदय पछितात ॥४॥
जम के दूत पकरि लै जैहैं।
जीभ ऐंठि के मरिहैं लात ॥५॥
कहैं कबीर अबहिं नर चेतो।
यह जियरा के नहिं बिस्वास ॥६॥

॥ शब्द १९ ॥

भजो सतनाम अहो रे दिवाना ॥ टेक ॥
गुदरी तोरी रंग बिरंगी, धागा अहै पूराना।
वा दरजी से परिचै नाहीं, कैसे पैहो ठिकाना ॥१॥
चाल चलै जस मैगल* हाथी, बोली बोलै गुमाना।
ऐहै जम्म पकरि लै जैहै, आखिर नर्क निसाना ॥२॥
पानी क सुइँस ऐसन सरि जैहौ, तब ऐहै परवाना।
सिरजनहार बसै घट भीतर, तुम कस भरम भुलाना ॥३॥
लौका† लौके बिजुली तड़पै, मेघ उठै घमसाना।
कहैं कबीर अमी रस बरसै, पीवत संत सुजाना ॥४॥

॥ शब्द २० ॥

हंसा हो यह देस बिराना ॥ टेक ॥
चहुँ दिसि पाँति बैठि बगुलन की, काल अहेरत‡
साँझ बिहाना ॥१॥
सुर नर मुनी निरंजन देवा, सब मिलि कीन्हा
एक बँधाना ॥२॥
आपु बँधे औरन को बाँधे, भवसागर को कीन्ह पयाना ॥३॥

---

* मस्त। † बिजली। ‡ शिकार करता है।

काजी मुलना दुइ ठहराना, इन का कलिया लेत जहाना॥४॥
कोइ कोइ हंसा गे सत लोकै, जिन पाये अमर
परवाना ॥५॥
कहैं कबीर और ना जैहै, कोटि भाँति हो चतुर
सयाना ॥६॥

॥ शब्द २१ ॥

एक दिन परलै होइ है हंसा, अबहिं सम्हारो हो ॥टेक॥
ब्रह्मा बिष्नु जब ना रहै, नहिं सिव कैलासा हो ॥१॥
चाँद सुरज जब ना रहै, नहिं धरनि अकासा हो ॥२॥
जोत निरंजन ना रहै, नहिं भोग भगवाना हो ॥३॥
सत यिष्नू मन मूल है, परलय तर आई हो ॥४॥
सोरह संख जुग ना रहै, नहिं चौदह लोका हो ॥५॥
अंड पिंड जब ना रहै, नहिं यह ब्रह्मंडा हो ॥६॥
कबीर हंसा पुरुष मिले, मोरे और न भावै हो ॥७॥
कोटिन परलय टारि कै, तोहि आँच न आवै हो ॥८॥

॥ उपदेश ॥

॥ शब्द १ ॥

बिरहनी सुनो पिया की बानी ॥ टेक ॥
सहज सुभाव मूल रहु रहनी, सुनो सब्द सुत तानी ।
सील सँतोष कै बाँधो कामरि, होइ रहो मगन दिवानी ॥१॥
दुइ फल तोरि मिलो हंसन मैं, सोई नाम निसानी ।
तत्त भेष धारे जब बिरहिन, तब पिव के मन मानी ॥२॥

कुमति जराइ सुमति उजियारी, तब सूरति ठहरानी ।
सो हंसा सुख सागर पहुँचे, भरै मुक्त जहँ पानी ॥३॥
कहैं कवीर सुनो भाइ साधो, यह पद है निरबानी ।
जो या पद को निंदा करिहै, ता की नरक निसानी ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

सम्हारो सखी सुरति न फूटे गगरी ॥ टेक ॥
कोरा घड़ा नई पनिहारिनि, सील सँतोष की
लागी रसरी ॥१॥
इक हाथ करवा दुसर हाथ रसरी, त्रिकुटी महल
की डगरी पकरी ॥२॥
निसु दिन सुरत घड़ा पर राखो, पिया मिलन
की जुगती यहि री ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, पिय तोर बसत
अमरपुर नगरी ॥४॥

॥ शब्द ३ ॥

बिना भजे सतनाम गहे बिनु, को उतरै भवपारा हो ॥टेक॥
पुरइनि एक रहै जल भीतर, जलहि मैं करत पुकारा हो ।
वा के पत्र नीर नहिँ लागै, ढरकि परे जस पारा हो ॥१॥
तिरिया एक रहै पतिबरता, पिय का बचन नहिं टारा हो ।
आपु तरै औरन को तारै, तारै कुल परिवारा हो ॥२॥
सूरा एक चढ़ै लड़ने को, पाछे पग नहिँ धारा हो ।
वा के सुरति रहे लड़ने मैं, प्रेम मगन ललकारा हो ॥३॥
नदिया एक अगम्म बहत है, लख चैारासी धारा हो ।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो, संत उतरिगे पारा हो ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

अँधियरवा मैं ठाढ़ गोरी का करलू ॥ टेक ॥

जब लग तेल दिया मैं बाती, येहि अँजोरवा
बिछाय धलतू ॥१॥

मन का पलँग सँतोष बिछौना, ज्ञान क तकिया
लगाय रखतू ॥२॥

जरि गया तेल बुझाय गइ बाती, सुरति मैं मुरति
समाय रखतू ॥३॥

कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, जोतिया मैं जोतिया
मिलाय रखतू ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

जागि कै जनि सोवो बहुरिया ॥ टेक ॥

जो बहुरी तुम आइ जगत मैं, जगत हँसै तुम
रोवो बहुरिया ॥१॥

जो बहुरी तुम बनि हौ बनाई, अपने हाथ जनि
खोवो बहुरिया ॥२॥

निसु दिन परी पाप सागर मैं, लै साधन मैं
धोवो बहुरिया ॥३॥

चाखो नाम अमी रस प्याला, तेज* त्रिषै रस
मोवो बहुरिया॥४॥

कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सत्तनाम जपि
लेवो बहुरिया ॥५॥

॥ शब्द ६ ॥

सुन सुमति सयानी, तोहि तन सारी कौन दई ॥ टेक ॥

रँगरेज न चीन्हो, रँगरेज कछू लखि ना परै ॥१॥

---

*तज या छोड़ कर।

मिलो मिलो सतगुरु से, धर्मराय नहिँ खूँट गहै ॥२॥
जौ लैाँ अटक न छूटै, तौ लैाँ भर्म खुवार करी ॥३॥
दुबिधा के मारे, सुर नर मुनि बेहाल भये ॥४॥
कहि कहि समुझाऊँ, तोहि मन गाफिल खबर नहीँ ॥५॥
भवसागर नदिया, साहेब कबीर गुरु पार करी ॥६॥

॥ शब्द ७ ॥

ऐसी रहनि रहै बैरागी ।
सदा उदास रहै माया से, सत्तनाम अनुरागी ॥१॥
छिमा की कंठी सील सरैानी*, सुरति सुमिरनी जागी ।
टोपी अभय भक्ति माथे पर, काल कल्पना त्यागी ॥२॥
ज्ञान गूदरी मुक्ति मेखला, सहज सुई लै तागी ।
जुक्ति जमात कूबरी करनी, अनहद धुनि लै लागी ॥३॥
सब्द अधार अधारी कहिये, भीख दया की माँगी ।
कहैँ कबीर प्रीति सतगुरु से, सदा निरंतर लागी ॥४॥

॥ शब्द ८ ॥

सोइ बैरागी जिन दुबिधा खोई ॥ टेक ॥
टोपी तंत सुमिरनी चितवे, सेली अनहद होई ।
नाम निरंतर चोलना पहिरे, सो लै सुरति समोई ॥१॥
छिमा भाव सहज की चोबी†, झोरी ज्ञान की डोरी ।
दिल माँगे तो सौदा कीजे, ऊँच नीच ना कोई ॥२॥
भुँइ कर आसन अकास को ओढ़न, जोति चंद्रमा सोई ।
रैन पौन दुइ करै रखवारी, दृढ़ आसन करि सोई ॥३॥
उनमुनि दृष्टि उदास जगत मेँ, भरम के महल ढहाई ।
करि असनान सोहं सागर मैँ, बिमल अनहद धुनि होई ॥४

---

* कान मैँ लगाने की डाट । † छड़ी ।

एक एक से मिलै रैन में, दिल की दुबिधा धोई ।
कहैं कबीर अमर घर पावै, हंस बिछोह न होई ॥५॥

॥ शब्द ९ ॥

अगम की सतगुरु राह उघारी ॥ टेक ॥
जतन जतन जो तन मन सिरजे, सुखमनि सेज सँवारी ।
जागत रहै पलक नहिं लागै, चाखत अमल करारी ॥१॥
सुमति क अंजन भरि भरि दीजै, मिटै लहर अँधियारी ।
छूटै त्रिबिधि भरम भय जल का, सहजे भइ उँजियारी ॥२॥
ज्ञान गली मुक्ती के द्वारे, पच्छिम खुलै किवारी ।
नौबत बाजि धुजा फहरानी, सूरति चढ़ी अटारी ॥३॥
एही चाल मिलो साहेब से, मानो कही हमारी ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, चेत चलो नर नारी ॥४॥

॥ माया ॥

॥ शब्द १ ॥

साधो बाघिन खाइ गइ लोई ॥ टेक ॥
अंजन नैन दरस चमकावै, हँसि हँसि पारै गारी ।
लुभुकि लुभुकि चरै अभि अंतर, खात करेजा काढ़ी ॥१॥
नाक धरे मुलना कान धरे काजी, औलिया बछरू पछारी।
छत्र भूपती राम बिडारा, सोखि लीन्ह नर नारी ॥२॥
दिन बाघिन चकचौंधी लावै, राति समुंदर सोखी ।
ऐसन बाउर नगरि के लोगवा, घर घर बाघिन पोसी ॥३॥

इन्द्राजित औ ब्रह्मादिक दुनि, सिव मुख बाघिन आई ।
गिरि गोवरधन नख पर राख्यो* बाघिन उनहुँ मरोरी ॥४॥
उतपति परलै दोउ दिसि बाघिन, कहैं कबीर बिचारी ।
जो जन सत्त कै भजन करत है, ता से बाघिन न्यारी ॥५॥

॥ शब्द २॥

यह समधिन जग ठगे मजगूत† ॥ टेक ॥
यह समधिन के मात पिता नहिं, और धिया ना पूत ॥१॥
यह समधिन के गाँव ठाँव नहिं, करत फिरै सगरे अजगूत‡२
ठगत ठगत यह सुर पुर खाये, ब्रह्मा बिस्नु महेस को खात ३
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, ठगनी कै अंत काहु नहिं पात ४

॥ मिश्रित ॥

॥ शब्द १ ॥

ठगिया हाट लगाये भवसागर तिरवा ॥ टेक ॥
आगे आगे पंडित चालत, पाछे सब दुनियाई ॥१॥
कोटिन बेद§ स्वान के लागे, मिटे न पूँछ टेढ़ाई ॥२॥
एक दुइ होय ताहि समझाऔं, सृष्टि गई बौराई ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, को बकि मरै लबगाई ॥४॥

॥ शब्द २ ॥

कुमतिया दारुन नितहिं लरै ॥ टेक ॥
सुमति कुमतिया दूनौं बहिनी, कुमति देखि के सुमति डरै ॥१
औषद न लागै द्वाई न लागै, घूमि घूमि जस बीछु चढ़ै ॥२॥

---

*श्रीकृष्ण । †मजबूत । ‡अचरज । §बिंध, भाँति ।

कितना कहौं कहा नहिं मानै, लाख जीव नित भच्छ करै॥३
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह बिष संत के झारे झरै ॥४

॥ शब्द ३ ॥

नर तोहिं नाच नचावत माया ।
नाम हेत कबहौं नहिं नाचे, जिन यह सिरजल काया ॥१॥
सकल बटोर करै बाजीगर, अपनी सुरति नचाया ।
नावत माथ फिरो बिषयन सँग, नाम अमल बिसराया ॥२॥
भुगते अपनी करनी करि करि, जो यह जग में आया ।
नाम बिसारि यही गति सब की, निसु दिन भरम भुलाया ३
जेहि सुमिरे तें अचल अछय पद, भक्ति अखंडित पाया ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, भक्त अमर पद पाया ॥४॥

॥ शब्द ४ ॥

सखी हो सुनि लो हमरो ज्ञाना ॥ टेक ॥
मात पिता घर जन्म लियो है, नैहर मे अभिमाना ।
रैन दिवस पिय संग रहत है, मैं पापिनि नहिं जाना ॥१॥
मात पिता घर जन्म बीति गे, आय गवन नगिचाना ।
का लै मिलैं पिया अपने से, करिहौं कौन बहाना ॥२॥
मानुष जन्म तो बिरथा खोये, सत्तनाम नहिं जाना ।
हे सखि मेरो तन मन काँपै, सोई सब्द सुनो काना ॥३॥
रोम रोम जा के पद परगासा, ता को निर्मल ज्ञाना ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, करो इस्थिर मन ध्याना ॥४॥

॥ शब्द ५ ॥

पायो निज नाम गले कै हरवा ॥टेक॥
सतगुरु कुंजी दई महल की,
जब चाहो तब खोल किवरवा ।
सतगुरु पठवा अगवनिहरवा*,
छोटि मोटि डोलिया चारि कहरवा ॥१॥
प्रेम प्रीति की पहिरि चुनरिया,
निहुरि निहुरि नाचौँ दरबरिया ।
यह मेरो ब्याह यही मेरो गवना,
कहैं कबीर बहुरि नहिं अवना ॥२॥

॥ शब्द ६ ॥

बिदेसी चलो अमरपुर देस ।
छाँड़ो कपट कुटिल चतुराई, छाँड़ो यह परदेस ॥१॥
छाँडो काम क्रोध औ माया, सुनि लीजे उपदेस ।
ममता मेटि चलो सुख सागर, काल गहै नहिं केस ॥२॥
तीनि देव पहुँचै नहिं तहवाँ, नहिं तहँ सारद सेस ।
लोक अपार तहँ पार न पावे, नहिं तहँ नारि नरेस ॥३॥
हंसा देस तहाँ जा पहुँचे, देखो पुरुष दरेस† ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, मानि लेहु उपदेस ॥४॥

॥ शब्द ७ ॥

परदेसिया तू मोर कही मानु हो ॥टेक॥
पाँच सखी तोरे निसु दिन ब्यापै, उनके रूप पहिचान हो॥१
ब्रह्मा बिष्नु महेसुर देवा, घर घर ठाकुर दिवान हो॥२॥

---

* बुलाने वाला । †दर्शन ।

तिरगुन तीन मता है न्यारा, अरुझो सकल जहान हो॥३
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, आदि सनेही मोहिं जान हो॥४

॥ शब्द ८ ॥

मोर पियवा ज्वान मैं बारी ॥टेक॥
चारि पदारथ जगत बीचि मैं, ला मैं बरतन हारी ॥१॥
मेरी कही पिय एक न मानै, जुग जुग कहि के हारी॥२॥
ऊँची अटरिया कैसे क चढ़बौं, बोलै कोइलिया कारी॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, केहू न बेदन टारी ॥४॥

॥ शब्द ९ ॥

संतो चूनर मोर नई ।
पाँच तत्त के बनल चुनरिया, सतगुरु मोहिं दई ॥१॥
रात दिवस के ओढ़त पहिरत, मैली अधिक भई ।
अपने मन संकोच करत है, किन रँग बोर दई ॥२॥
बड़े भाग हैं चूनर के रे, सतगुरु मिले सही ।
जुगन जुगन की छुटि मैलाई, चटक से चटक भई ॥३॥
साहेब कबीर यह रंग रचो है, संतन किये सही ।
जो यह रँग की जुगत बतावै, प्रेम मैं लटक रही ॥४॥

॥ शब्द १० ॥

पहिरो संत सुजान, भजन कै चोलनियाँ ॥ टेक ॥
गुरु हीरा करो हार, प्रेम कै झूलनियाँ* ।
कंकन रतन जड़ाव, पचोसो लागे घूँघुरियाँ ॥ १ ॥
पूरन प्रेम अनंद, धुनन की झालरियाँ ।
दही लै निकरी ग्वालिन, सुरत के डागरियाँ ॥२॥

---

* नथ ।

है कोइ संत सुजान, करै मोरी बोहनियाँ ।
चलो मोरे रंग महल मैं, करौं तोरी बोहनियाँ ॥३॥
लगि सेज सँवारे, छूटि गई तन तापनियाँ ।
मिले दास कबीरा, बहुरि न आवै संसारनियाँ ॥ ४ ॥

॥ शब्द ११ ॥

साधो मन कुँजड़ो नीक नियाई* ॥टेक॥
तन बारी तरकारी करि ले, चित करि ले चौराई ।
गुरू सब्द का बैंगन करि ले, तब बनिहै कुँजड़ाई ॥१॥
प्रेम के परवर धरो डलिया मैं, आदि की आदी लाई ।
ज्ञान के गजरा दृढ़ कर राखो, गगन मैं हाट लगाई ॥२
लौ की लौकी धरो पलरे मैं, सील कै सेर चढ़ाई ।
लेत देत के जो बनि आवै, बहुरि न हाट लगाई ॥३॥
मन धोओ दिल जान से प्यारे, निर्गुन बस्तु लखाई ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सिंधु मैं बुंद समाई ॥४॥

॥ शब्द १२ ॥

गुँगवा नसा पियत भो बौरा ॥टेक॥
पी के नसा मगन होइ बैठा, तिरथ बरत नहिँ दौड़ा ॥१
खोलि पलक तीन लोके देखा, पौढ़ि रहे जस पौढ़ा ॥२॥
बड़े भाग से सतगुरु मिलिगे, घोरि पियाये जस मोहरा† ३
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, गया साध नहिँ बहुरा ॥४॥

---

*न्यायकारी, सुकर्मी । †जहर मोहरा—बिष दूर करने की दवा ।

॥ शब्द १३ ॥

नाम बिना कस तरिहै, भूला माली ॥टेक॥
माटी खोदि के चौरा बाँधा, ता पर दूब चढ़ाई।
सो देवता को कूकुर चाटै, सो कस जाग्रत भाई ॥१॥
पत्थर पूजे जो हरि मिलते, तौ हम पुजत पहारा*।
घर की चक्की कोइ न पूजै, जा के पीसल खाय संसारा॥२
भूला माली फूलहि तोरै, फूल पत्र मैं जीव।
जो देवता को फूल चढ़ाए, सो देवता निरजीव ॥३॥
पत्थर काटि के मुरत बनाये, देइ छाती पर लात।
उस देवा मैं सक्ति जो होती, गढ़नहार को खात ॥४॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, यह सब लोक तमासा।
यह तन जात बिलम ना लागे, (जस) पानी पड़े बतासा॥५

॥ शब्द १४ ॥

कोइ ऐसा देखा सतगुरु संत सिपाही ॥टेक॥
ब्रह्म तेज की प्रेम कटारी, धीरज ढाल बनाई।
त्रिकुटी ऊपर ध्यान लगाई, सुरति कमान चढ़ाई ॥१॥
सिँगरा† सत्त समुझि के बाँधो, तन बंदूक बनाई।
दया प्रेम का अड़बंद‡ बाँधो, आतम खोल लगाई ॥२॥
सत्त नाम लै उड़े पलीता, हर दम चढ़त हवाई§।
दम के गोला घट भीतर मैं, भरम के मुरचा ढहाई ॥३॥

---

*पहाड़। †बारूतदान। ‡लँगोट। §अग्निबान।

सार सब्द का पटा लिखावो, चलत जगीरो पाई।
दया मूल संतोष धीर्ज लै, सहज काल टरि जाई ॥४॥
सील छिमा की पारस पथरी, चित चकमक चमकाई।
पहिले मारे मोह के सुरचा, दुबिधा दूर बहाई ॥५॥
अविगत राज बिबेक भये हैं, अजर अमर पद पाई।
ममता मोह क्रोध सब भागे लायो पकरि मन राई ॥६॥
पाँच पचीस तीन को बस करि, फेरी नाम दोहाई।
निर्मल पद निरबान गुरू का, संत सुरंग लगाई ॥७॥
चुगुल चोर सब पकरि मँगाये, अनहद डंक बजाई।
साहेब कबीर चढ़े गढ़ बंका, निरभय बाज बजाई ॥८॥

॥ शब्द १५ ॥

अवधू चाल चलै सो प्यारा ॥टेक॥
निसु दिन नाम बिदेही सुमिरै, कबहुं न सूरति टारा ॥१॥
सुपने नाम न भूलै कबहूँ, पलक पलक ब्रत धारा ॥२॥
सब साधुन से इक ह्वै रहवे, हिलि मिलि सब्द उचारा ॥३॥
कहैं कबीर सुनो हो अवधू, सत्त नाम गहि तारा ॥४॥

॥ शब्द १६ ॥

निरंजन धन तेरो परिवार ॥टेक॥
रंग महल मैं जंग खड़े हैं, हवलदार औ सूबेदार।
धूर धूप मैं साध बिराजे, काहे को करतार ॥१॥

बिस्वा ओढ़े खासा मलमल, मोती मूँगा के हार।
पतिब्रता कौ गजी जुरै नहिँ, रूखा सूख अहार ॥२॥
पाखंडी कौ आदर जग मैं, साँच न मानै लबार।
साँचा मानै साध बिबेकी, झूठा मानै गँवार ॥३॥
कहैं कबीर फकीर पुकारी, सब्द गहो टकसार।
साँचि कहौं जग मारन धावै, झूठा है संसार ॥४॥

॥ शब्द १७ ॥

काया नगर मैं अजब पेच है, बिरले सौदा पाया हो ॥टेक
ओहि दुकनिया कै तीन सौदागर, पाँच पचीस
भरि लाया हो।
खाँड़ कपूर एक सँग लादे, कहु कैसे बिलमाया हो ॥१॥
ऊँची दुकनिया क नीची दुवरिया, गाहक फिरि
फिरि जाई हो।
चतुर चतुर सब सौदा कीन्हा, मूरुख भाव न पाई हो ॥२॥
सार सब्द के बने पालरा, सत कै डाँड़ी लागी हो।
सतगुरु समरथ घट सौदागर, जो तौलत बनि आवै हो ।३।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, बिरले सौदा पाया हो।
आपु तरै जग जिव मुक्तावै, बहुरि न भवजल आवै हो ४

॥ शब्द १८ ॥

कोइ कहा न मानै हम काहे के कही ॥टेक॥
पूजि आतमा पुजै पषाना, तातैं दुनियाँ जात बही ॥१॥

पर जिव मारि आपन जिव पालै, ता कै बदला
तुरत चही ॥२॥
लख चौरासी जीव जंतु है, ता मँ रमिता हमहिं रही ॥३॥
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, सत्त नाम तुम काहे
न गही ॥४॥

॥ शब्द १९ ॥

पंडित तुम कैसे उत्तम कहाये ॥टेक॥
एक जोइनि से चार बरन भे, हाड़ मास जिव गूदा ।
सुत परि दूजे नाम धराये, वा को करम न छूटा ॥१॥
छेरी खाये भेड़ी खाये, बकरी टीका टाके* ।
सरब माँस एक है पंडित, गैया काहे बिलगाये ॥२॥
कन्या जाति जाति की बेचत, कौने जाति कहाये ।
आपन कन्या बेचन लागे, भारी दाम चढ़ाये ॥३॥
जहँ लगि पाप अहै दुनियाँ मँ, सो सब काँध चढ़ाये ।
कहैं कबीर सुनो हो पंडित, घर चौरासी मा छाये ॥४॥

॥ शब्द २० ॥

पंडित सुनहु मनहिं चित लाई ॥टेक॥
जोई सूत कै बन्यो जनेऊ, ता की पाग† बनाई ।
धोती पहिरि के भोजन कीन्हा, पगरी मँ छूत लगाई ॥१॥

---

*बकरा को बलिदान देने के पहिले उस के रोरी का टीका लगा देते हैं। †पगड़ी।

रकत माँस को दूध बनो है, चमड़ा घरी दुराई।
सोई दूध से पुरखा तरिगे, चमड़ा मैं छूत लगाई ॥२॥
जनम लेत उढ़री* अबला† के, लै मुख छीर पियाई।
जब पंडित तुम भये गियानी, चालत पंथ बड़ाई ॥३॥
कहैं कबीर सुनो हो पंडित, नाहक जग मैं आई।
बिना बिवेक ठौर ना कतहूँ, बिरथा जनम गँवाई ॥४॥

॥ शब्द २१ ॥

पंडित वाद वेद से झूठा।
राम के कहे जगत तरि जाई, खाँड़ कहे मुख मीठा ॥१॥
पावक कहे पाँव जो जरई, जल कहे त्रिषा बुझाई।
भोजन कहे भूख जो भागै, तब दुनियाँ तरि जाई ॥२॥
नर के पास सुवा आइ बोलै, गुरु परताप न जाना।
जो कबही उड़ि जात जँगल मैं, बहुरि सुरत नहिं आना ॥३॥
बिन देखे बिन दरस परस बिन, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनी जो होई, निरधन रहै न कोई ॥४॥
साँची हेत बिषै माया से, सतगुरु सब्द की हाँसी।
कहैं कबीर गुरू के बेमुख, बाँधे जमपुर जाहीं ॥५॥

॥ शब्द २२ ॥

नाम मैं भेद है साधो भाई ॥टेक॥
जो मैं जानूँ साँचा देवा, खट्टा मीठा खाई।
माँगि पानी अपने से पीवै, तब मोरे मन भाई ॥ १ ॥

---

*धरूक, ढुरैतिन। † स्त्री।

ठुक ठुक करिके गढ़े ठठेरा, बार बार तावाईं* ।
वा मूरत के रहो भरोसे, पछिला धरम नसाईं ॥२॥
ना हम पूजी देवी देवा, ना हम फूल चढ़ाईं ।
ना हम मूरत धरी सिँघासन, ना हम घंट बजाईं ॥३॥
कासी में जो प्रान तियागे, सो पत्थर भे भाई ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो, भरमे जन भकुवाईं† ॥४॥

---

*आग में ताव देकर । †भकुआ या सिढ़ो होकर ।

सूचीपत्र

कबीर साहिब की शब्दावली

॥ चौथा भाग ॥

॥ राग मंगल ॥

---

(१)

पिया मिलन की आस, रहौं कब लौं खड़ी।
ऊँचे चढ़ि नहिं जाय, मनैं लज्जा भरी ॥ १ ॥
पाँव नहीं ठहराय, चढ़ूँ गिरि गिरि पड़ूँ।
फिरि फिरि चढ़हुँ सम्हारि, चरन आगे धरूँ ॥ २ ॥
अंग अंग थहराय, तो बहु बिधि डरि रहूँ।
कर्म कपट मग घेरि, तो भ्रम मैं भुलि रहूँ ॥ ३ ॥
निपट बारि अनारि, तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हारि, मिलन कस होइ है ॥ ४ ॥
तेजो* कुमति बिकार, सुमति गहि लीजिये।
सतगुरु सब्द सम्हारि, चरन चित दीजिये ॥ ५ ॥
अंतर पट दे खोल, सब्द उर लाव री।
दिल बिच दास कबीर, मिलैं तोहि बावरी ॥ ६ ॥

(२)

उठो सोहंगम नारि, प्रीति पिया सौं करो।
यह उरले† ब्योहार, दूर दुरमति धरो ॥ १ ॥

---

*तजो, छोड़ो। †संसारी।

पाँच चोर बड़ जोर, संगि एते घने।
इन ठगियन के साथ, मुसै घर निसु दिने ॥ २ ॥
सोवत जागत चोर, करै चोरी घनी।
आपु भये कुतवाल, भली विधि लूटहीं ॥ ३ ॥
द्वादस नगर मँझार, पुरुष इक देखिये।
सोभा अगम अपार, सुरति छवि पेखिये ॥ ४ ॥
होत सब्द घनघोर, संख धुनि अति घनी।
तंतन की झनकार, बजत झीनी झिनी ॥ ५ ॥
है कोइ महरम साध, भले पहिचानिये।
सतगुरु कहैँ कबीर, संत की बानि ये ॥ ६ ॥

(३)

गुन करु बवरी गुन करु, जब लग नैहर बास हो।
पुनि धनि जैहौ ससुरे, कंत पियारे पास हो ॥ १ ॥
जब लग राज पिता घर, गुन करि लेहु हो।
सासु ननद के बुलवन, उत्तर का देहु हो ॥ २ ॥
आये भाट बराम्हन, लगन धराइन हो।
लगन सुनत गवने कै, मुँह कुम्हिलाइन हो ॥ ३ ॥
बाजन बाजै गहगहा, नगर उठै झनकार हो।
प्रीतम कहूँ न देखल, आयो चालनहार हो ॥ ४ ॥
लै रे उतारिन तेहि घर, जहँ दिस न दुवार हो।
मन मन झुरवै दुलहिनि, काह कीन्ह करतार हो ॥५॥
जो मैं जनतिउँ ऐसन, गुन करि लेतिउँ हो।
जातिउँ साहिब के देसवाँ, परम सुख पैतिउँ हो ॥ ६ ॥
चेति ले बवरी चेति ले, चेति लेहु दिन चारी हो।
यह संगत सब छूटि है, कहत कबीर बिचारी हो ॥७॥

(४)

मंगल एक अनूप, संत जन गावहीं
उपजै प्रेम बिलास, परम सुख पावहीं ॥ १ ॥
सतगुरु बिप्र बुलाय, तो लगन लिखावहीं।
संत कुटुम परिवार, तो मंगल गावहीं ॥ २ ॥
बहु विधि आरति साजि, तो चौक पुरावहीं।
मोतियन थार भराइ के, कलस लेसावहीं ॥ ३ ॥
हीरा हंस बिठाय, तो सब्द सुनावहीं।
जेहि कुल उपजे संत, परम पद पावहीं ॥ ४ ॥
मिटो करम को अंक, जबै आगम भयो।
पायो सूरति सोहं, संसय सब गयो ॥ ५ ॥
भक्ति हेत चित लाय, तो आरति उर धरो।
तजि पाखँड अभिमान, तो दुरमति परिहरो ॥ ६ ॥
तन मन धन औ प्रान, निछावर कीजिये।
त्रिगुन फन्द निरुवारि, पान निज लीजिये ॥ ७ ॥
यह मंगल सत लोक के, हंसा गावहीं।
कहैं कबीर समुझाय, बहुरि नहिं आवहीं ॥ ८ ॥

(५)

पूरनमासी आदि, जो मंगल गाइये।
सतगुरु के पद परसि, परम पद पाइये ॥ १ ॥
प्रथमे मँदिल झराइ के, चँदन लिपाइये।
नूतन बस्तर आनि के, चँदवा तनाइये ॥ २ ॥
(तब) पूरन गुरु के हेत, तो आसन बिछाइये।
गुरु के चरन प्रछालि, तहाँ बैठाइये ॥ ३ ॥

गज मोतियन को चौक, सो तहाँ पुराइये ।
ता पर नरियर धोति, मिष्टान्न धराइये ॥ ४ ॥
केरा और कपूर, तो बहु बिधि लाइये ।
अष्ट सुगंध सुपारि, तो पान मँगाइये ॥ ५ ॥
पल्लौ सहित सो कलसा, जोति बराइये ।
ताल मृदंग बजाइ के, मंगल गाइये ॥ ६ ॥
साधु संत सँग लैके, आरति उतारिये ।
आरति करि पुनि नरियर, तबहिं मोराइये ॥ ७ ॥
पुरुष को भोग लगाइ, सखा मिलि पाइये ।
जुग जुग छुधा बुझाइ, तो पाइ अघाइये ॥ ८ ॥
परमानन्दित होय, तो गुरुहिं मनाइये ।
कहैं कबीर सत भाय, तो लोक सिधाइये ॥ ९ ॥

(६)

सत्त सुकृत सत नाम, सुमिरु नर प्रानी हो ।
सुमति से रचहु बियाह, कुमति घर छाड़ी हो ॥ १ ॥
सत्त सुकृत कै माँड़ो, तो रुचि रुचि छावो हो ।
सतगुरु बिप्र बुलाय कै, कलस धरावो हो ॥ २ ॥
पहिली भँवरिया बेद, पढ़ै मुनि ज्ञानी हो ।
दुसरि भँवरिया तिरथ, जा को निरमल पानी हो ॥३॥
तिसरी भँवरिया भक्ति, दुबिधा जिनि लावो हो ।
चैाथी भँवरिया प्रेम, प्रतीत बढ़ावो हो ॥४॥
पँचईं भँवरिया अलख, सँग सुमति सयानी हो ।
छठईं भँवरिया छिमा, जहँ अमी नहानी हो ॥ ५ ॥

सतईं भँवरिया साहिब मिले, मिटि आवा जानी हो।
प्रेम मगन भइ भाँवर, उठत धुन तानी हो॥ ६॥
सतगुरु गाँठि प्रेम की, छोड़ि ना छूटै हो।
लागि रहो गुरु ज्ञान, डोरि ना टूटै हो॥ ७॥
दास कबीर के मंगल, जो कोइ गावै हो।
बसै सत लोक मेँ जाइ, अमर पद पावै हो॥ ८॥

(७)

मानुष जन्म अमोल, सुकृत कौ धाइये।
सुरति कुवारी कन्या, हंसा सँग ब्याहिये॥ १॥
सतगुरु बिप्र बुलाइ के, लगन धराइये।
बेगै कन्या घराइ, बिलँब ना लाइये॥ २॥
पाँच पचीस तरुनिया*, तौ मंगल गाइये।
चौरासी के दुक्ख, बहुरि ना लाइये॥ ३॥
सुरति पुरुष सँग बैठि, हाथ दोउ जोरिये।
जम से तिनुका तोरि, भँवरि भल फेरिये॥ ४॥
सुरति कियो है सिंगार, पिया पहँ जाइये।
जनम करम के अंक, सो तुरत मिटाइये॥ ५॥
हंसा कियो है बिचार, सुरति सोँ अस कही।
जुग जुग कन्या कुँवारि, एतक दिन कहँ रही॥ ६॥
सुरति कियो है प्रनाम, पिया तुम सत कही।
सतगुरु कन्या कुँवारि, एतक दिन तहँ रही॥ ७॥
प्रेम पुरुष कै साज, अखँड लेखा नहीँ।
अमृत प्याला पियै, अधर महँ झूलही॥ ८॥

---

*युवा स्त्री।

पान पर्वाना पाय, तौ नाम सुनावही।
सतगुरु कहैं कबीर, अमर सुख पावही ॥ ९ ॥

(८)

आजु लगे पुनवासी, तो मंगल गाइये।
वस्तर सेत आनि के, चँदवा तनाइये ॥ १ ॥
प्रेम कै मंदिल झारि, चँदन छिरकाइये।
सतगुरु पूरा होय, तो चौक पुराइये ॥ २ ॥
जाजिम गद्दी बिछाइ के, तकिया सजाइये।
गुरु के चरन पखारि, तो आसन कराइये ॥ ३ ॥
गज मोती मँगवाइ के, चौक पुराइये।
ता पर मेवा मिष्टान्न, तो पान चढ़ाइये ॥ ४ ॥
पल्लौ सहित तहँ कलस, तो आनि धराइये।
पाँच जोति कै दीपक, तहवाँ बराइये ॥ ५ ॥
जल थल सील सुधारि, तो जोति जगाइये।
साध संत मिलि आइ के, आरति उतारिये ॥ ६ ॥
ताल मृदंग बजाइ, तो मंगल गाइये।
आरति करु पुनवासी, तो नरियर मोरिये ॥ ७ ॥
जम सों तिनुका तोरि, तो फंद छुड़ाइये।
पुरुष को भोग लगाइ, हंसा मिलि पाइये ॥ ८ ॥
जुग जुग छुधा बुझाइ के, गुरु को मनाइये।
कहैं कबीर सत भाव, सो लोक सिधाइये ॥ ९ ॥

(९)

सतगुरु जौहरि आय, तो मानिक लाइया।
काया नगर मँझारि, बजार लगाइया ॥ १ ॥

चहुँ मुख लागि दुकान, तो झिलिमिलि ह्वै रहे।
पारख सौदा बिसाहि*, अधर डोरि झुलि रहे ॥ २ ॥
जिन जिन हंसा गाहक, बस्तु बिसाहिया।
पाया सब्द अमोल, बहुरि नहिं आइया ॥ ३ ॥
बारहबानी† के ज्ञान, तो सोई सुरंग है।
निर्गुन सब्द अमोल, साहिब को अंग है ॥ ४ ॥
करि ले सोरहो सिंगार, तो पिया को रिझाइये।
दिल बिच दास कबीर, हंसा समुझाइये ॥ ५ ॥

(१०)

साहिब को नाम अखंड, और सब खंड है।
खंड है मेरु सुमेरु, खंड ब्रह्मंड है ॥ १ ॥
नारी सुत धन धाम, सो जीवन बंध है।
लख चौरासी जीव, परे जम फंद है ॥ २ ॥
चंचल मन करु थीर, तबै भल रंग है।
उलटि निरंतर पीव, तो अमृत संग है ॥ ३ ॥
जिन के साहिब से नेह, सोई निरबंध है।
उन साधन के संग, सदा आनंद है ॥ ४ ॥
दया भाव चित राखु, भक्ति को अंग है।
कहैं कबीर चित चेतो, जक्त पतंग है ॥ ५ ॥

(११)

[पंचायन मंगल]

सत्त सुकृत सत नाम को, आदि मनाइये।
सुर्त जोग-संतायन‡, निसि दिन ध्याइये ॥

*मोल ले। †ख़ालिस सोना। ‡कबीर साहिब।

सतगुरु चरन मनाय, परम पद पाइये।
करि दंडवत प्रनाम, तो मंगल गाइये॥
गावै जो मंगल कामिनी, जहँ सत्त सीतल थान है।
परम पावन ठाम अबिचल, जहँ ससि सुरज की खान है॥
मानिक पुर इक गाँव अबिचल, जहँ न रैन बिहानि है।
कहँ कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्त नाम हिं जानि है॥१॥

अष्ट खंड जहँ कामिनि, आरति साजहीं।
चार भानु की सोभा, अंग बिराजहीं॥
दृष्टि भाव जहँ होत, हंस सुख पावहीं।
हंसन हंस बिलास, कामिनि सचि* मानहीं॥
सचि मानि कामिनि सुक्ख, हंसा आगे को पग धारहीं।
सुख सागर सुख बास मैं, जहँ सुकृत दरस निहारहीं॥
पतित-पावन भये हंसा, काया सोरह भान है।
कहँ कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्त नामहिं जानि है॥२॥

सुख सागर की सोभा, कहा बिसेखिये।
कोटिन रबि चहुँ ओर, उदय तहँ पेखिये॥
धरनि अकास जहाँ नाहिं, हीरा जगमगै।
उहवाँ दीनदयाल, हंस के सँग लगै॥
सँग लागि उहवाँ हंस के, कहै तुम हमैं भल चीन्ह हो।
अंबु करि सो दीप दिखावौं, प्रथम पुर्ष जो कीन्ह हो॥
असंख रबि औ कोटि दामिनि, पुहुप सेज अरघान† है।
कहँ कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्त नामहिं जानि है॥३॥

---

*प्रीति भाव। †अति सुगंधित।

आदि अंत जोग-जीत, हंस के सँग लगे।
पंकज* करिय अँजोर, होत साहिब मिले॥
दोउ कर जोरि मनाय, बहुत बिनती करी।
साहिब दरसन देव, हंस सरधा धरी॥
दया कीन्हा पुर्ष बिहँसे, मस्तक दरस दिखाइ हो।
अमृत फल जब चार दीन्हा, सकल हंस मिलि पाइ हो॥
अटल काया जब भई, मंजिल† करी अस्थान है।
कहँ कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्त नामहिँ जानि है॥४॥
सदा बसंत जहँ फूलो, कुंज सुहावहीँ।
अछै बृच्छ तर हंसा, सेज बिछावहीँ॥
चहुँ दिसि हंस की पाँती, हीरा जगमगै।
सोरह रवि को रूप, अंग मेँ चमकहीँ॥
अंग हंसा चमक सोभा, सूर सोरह पावहीँ।
धन सतगुरू को सार बीरा, पुर्ष दरस दिखावहीँ॥
हंस सुजन जन अंस भेँटे, हंस को पहिचानि है।
कहँ कबीर सो हंस पहुँचे, जो सत्त नामहिँ जानि है॥५॥

(१२)

[बेदी]

लगन लगी सत लोक, सुकृत मन भावहीँ।
सुफल मनोरथ होय, तो मंगल गावहीँ॥१॥
चलु सखि सुरति संजोय, अगम घर उठि चलो।
हंस सरूप सँवारि, पुरुष सोँ तुम मिलो॥२॥

---

*कँवल। †ठिकाना।

कनक पत्र पर अंक , अनूपम अति कियो ।
तुमहिँ सकल संदेस , लगन पिय लिख दियो ॥३॥
लिखि दियो सब्द अमोल , सोहंग सुहावता ।
पूरन परम-निधान , ताहि बल जम जिता ॥४॥
तत करनी कर तेल , हरदि हित लावहीं ।
कंकन नेह बँधाय , मधुर धुन गावहीं ॥५॥
अच्छत थार भराय , तो चौक पुरावहीं ।
हीरा हंस बिठाय , तो सब्द सुनावहीं ॥६॥
कंचन खंभ ऋँजोर , अधर चारो जुगा ।
बाजत अनहद तूर , सेत मंडप छजा ॥७॥
अगर अमी भरि कुम्भ , रतन चौरी रची ।
हंस पढ़ैं तहँ सब्द , मुक्ति बेदी रची ॥८॥
हस्त लिये सत केल , ज्ञान गढ़ बंधना ।
मोच्छ सरूपी मौर , सीस सुन्दर बना ॥९॥
सुरति पुरुष सोँ मेल , तो भाँवरि परि गई ।
अमर तिलक ताम्बूल , सुघर माला दई ॥१०॥
दीन्हो सुरति सुहाग , पदारथ चारि को ।
निस दिन ज्ञान बिचार , सब्द निर्वार को ॥११॥
यह मंगल सत लोक के , हंसा गावहीं ।
कहैं कबीर समुझाय , बहुरि नहिँ आवहीं ॥१२॥

॥ राग गारी ॥

सतगुरु साहिब पाहुन आये, का ले करौं मेहमानी जी ॥१॥
निरति के गँडुवा गँगा जल पानी, परसे सुमति सयानी जी २
प्रथम लालसा लुचई* आई, जुगल जलेबी आनी जी ॥३॥
भाव कि भाजी सील कि सेमा, बने कराल करेला जी ॥४॥
हिय कै हींग हृदय कै हरदी, तत्त के तेल बघारे जी ॥५॥
डारे धोइ विचार के जल से, करमन कै करुवाई जी ॥६॥
यह जेवनार रच्यो घट भीतर, सतगुरु न्योति बुलाये जी ॥७॥
जेवन बैठे साहिब मोरे, उठत प्रेम रस गारी जी ॥८॥
कहँ कबीर गारी की महिमा, उपमा बरनि न जाई जी ॥९॥

(२)

जो तूँ अपने पिय की प्यारी, पिया कारन सिंगार करो ॥ टेक ॥

जा के जुगुत की ककही, करम केस निरुवार करो ।
जा के तत के तेल, प्रेम कि डोरी से चोटी गुहो ॥ १ ॥
जा के अलख के काजर, बिरह कि बँदी लिलार दई ।
जा के नेह नथुनिया, गुंज कै लटकन झूलि रहे ॥ २ ॥
जा के सुमति के सूत, दया हमेल हिये माहिँ परी ।
जा के चित की चौकी, अकिल के कँगना झलकि रहे ॥ ३ ॥
जा के चोप की चुनरी, ज्ञान पछेली चमकि रही ।
जा के तिल के छल्ले, सब्द के बिछुवा बाजि रहे ॥ ४ ॥

---

*पूरी ।

तुम एतन धनि पहिरो , रूसल पिया के मनाइ लई ।
उठि के चलो सुहागिनि , निरखत बदन हुलास भरी ॥५॥
पिय तुम मो तन हेरो , मैं हौं दासी तुम्हार खड़ी ।
गारी गावै कबीरा , साधो सुनो बिचार धरी ॥ ६ ॥

(३)

[नरियर मोरन]

बनजारिन विनती करै , सुन साजना ।
नरियर लीन्हो हाथ , संत सुन साजना ॥ १ ॥
बिना बीज को बृच्छ है , सुन साजना ।
बिन धरती अंकूर , संत सुन साजना ॥ २ ॥
ता को मूल पताल है , सुन साजना ।
नरियर सीस अकास , संत सुन साजना ॥ ३ ॥
बिना सब्द जिनि मोरहू , सुन साजना ।
जीव एकोतर हानि , संत सुन साजना ॥ ४ ॥
गुरु के सब्द ले मोरहू , सुन साजना ।
फूटै जम को कपार , संत सुन साजना ॥ ५ ॥
सखियाँ पाँच सहेलरी , सुन साजना ।
नौ नारी बिस्तार , संत सुन साजना ॥ ६ ॥
कहैं कबीर बघेल* सोँ , सुन साजना ।
रानी इन्द्रमती सरदार , संत सुन साजना ॥ ७ ॥

---

* बघेलखंड के निवासी धर्म्मदास जी ।

॥ राग झूलना ॥

(१)

करेगा सोई करता ने हुकुम किया,
सब्द का संग समसेर बंका ।
ज्ञान का चौँर ले प्रेम का पंख ले,
खैँच के तेग छोड़ाव संका ॥ १ ॥
कड़ी कमान जब ऐँठि के खैँचिया,
तीन बेर टनकार सहज टंका ।
मगन मुसक्यात गगन मेँ कूदिया,
ढील कर बाग मैदान हंका ॥ २ ॥
पाँच पच्चीस औ तीन भागा फिरै,
बड़े सहुकार औ राव रंका ।
कहैँ कबीर कोइ संत जन जौहरी,
बड़े मैदान मोँ दियो डंका ॥ ३ ॥

(२)

खुदी को छाड़ि खुदाय को याद कर,
वो खुदाय क्या दूर है जी ॥ १ ॥
खुद बोलते को तहकीत* करि ले,
हर दम हजूर जरूर है जी ॥ २ ॥
ठौर ठौर क्या भकटत फिरो,
करो गौर तुम हीं मेँ नूर है जी ॥ ३ ॥
कबीर का कहना मानि ले अब,
परवाना सहित मँजूर है जी ॥ ४ ॥

---

*तहकीक ।

(३)

चलु रे जीव जहँ हंस को देस है,
  बसत कबीर आनंद सोई ।
काल पहुँचै नहीं सोग ब्यापै नहीं,
  रहैगा हंस तहँ संग होई ॥ १ ॥
यह परपंच है सकल जाहि को,
  ता मैं रहे का पार पावै ।
कठिन दरियाव जहँ जीव सब बाझिया,
  माया रूप धरि आपै खेलावै ॥ २ ॥
[तहँ] खेलावै सिकार जम त्रिगुन के फंद मैं,
  बाँधि के लेत सब जीव मारी ।
मोह के रूप तहँ नारि इक ठाढ़ि है,
  जहाँ तुम जाहु तहँ मारि डारी ॥ ३ ॥
तेहि देखि सब जीव जल के सरूप भे,
  तदपि परतीत कोइ नाहिँ पाई ।
कहैँ कबीर परतीत कर सब्द की,
  काम औ क्रोध कमान तोरी ॥ ४ ॥

॥ राग कहरा ॥

(१)

सुनो सयानी अकथ कहानी, गुरु अपने का सनेसा हो ॥१॥
जो पिय मारै औ झझकारै, बाहर पगु ना दीन्हा हो ॥२॥
निरत पिया को अंतर ता को, सब्द नेह ना छूटै हो ॥ ३ ॥

जैसे डोरी उड़ै अकासा, सब्द डोरि नाहिं टूटै हो ॥४॥
डोरी टूटे खसै भूमि पर, तब पिय बाद गँवावा हो ॥५॥
सिर पर गागर बात सखिन सों, चित से गगर न छूटै हो॥६॥
दास कबीर के निर्गुन कहरा, महरम होय सो बूझै हो ॥७॥

(२)

विमल विमल अनहद धुनि बाजै,
समुझि परै जब ध्यान धरै ॥ टेक ॥
कासी जाइ कर्म सब त्यागै,
जरा मरन से निडर रहै ।
बिरले समुझि परै वह गलिया,
बहुरि न प्रानी दैंह धरै ॥ १ ॥
किंगरी संख झाँझ डफ बाजै,
अरुझा मन तहँ ख्याल करै ।
निरंकार निरगुन अबिनासी,
तीन लोक उँजियार करै ॥ २ ॥
इँगला पिँगला सुखमन सोधो,
गगन मँदिल मैं जोति बरै ।
अष्ट कँवल द्वादस के भीतर,
वहँ मिलने की जुगत करै ॥ ३ ॥
जीवन मुक्ति मिले जेहि सतगुरु,
जन्म जन्म के पाप हरै ।
कहैं कबीर सुनो भाइ साधो,
धिरज बिना नर भटकि मरै ॥ ४ ॥

॥ दस मुकामी रेखता ॥

चला जब लोक को सोक सब त्यागिया ।
हंस को रूप सतगुरु बनाई ॥
भृंग ज्यों कीटि को पलटि भृंगै किया,
आप सम रंग दै लै उड़ाई ॥ १ ॥
छोड़ि नासूत मलकूत को पहुँचिया,
बिस्नु की ठाकुरी दीख जाई ।
इन्द्र कुबेर रंभा जहाँ नृत करैं,
देव तैंतीस कोटिक रहाई ॥ २ ॥
छोड़ि बैकुंठ को हंस आगे चला,
सून्य मैं जोति जगमग जगाई ।
जोति परकास मैं निरखि निःतत्व को,
आप निर्भय भया भय मिटाई ॥ ३ ॥
अलख निर्गुन जेही बेद अस्तुति करै,
तीनहूँ देव को है पिताई ।
भगवान तिन के परे सेत मूरत धरे,
भग की आनि* तिनको रहाई ॥ ४ ॥
चार मोकाम पर खंड सोरह कहे,
अंड को छोर ह्याँ तैं रहाई ।
अंड के परे अस्थान आचिंत को,
निरखिया हंस जब उहाँ जाई ॥ ५ ॥
सहस औ द्वादसै रूह है संग मैं,
करत किलोल अनहद बजाई ।

*क़दर ।

तासु के बदन की कैान महिमा कहौं,
भासती दैंह अति नूर छाई ॥ ६ ॥
महल कंचन बने मनी ता मैं जड़े,
बैठ तहँ कलस अखंड छाजे ।
अचिंत के परे अस्थान सोहंग का,
हंस छत्तीस तहवाँ बिराजे ॥ ७ ॥
नूर का महल औ नूर की भूमि है,
तहाँ आनन्द सोँ दुंद भाजे ।
करत किलोल वहु भाँति से संग इक,
हंस सोहंग के जो समाजे ॥ ८ ॥
हंस जव जात षट चक्र को बेधि के,
सात मोकाम मैं नजर फेरा ।
परे सोहंग के सुरति इच्छा कही,
सहस बावन जहाँ हंस हेरा ॥ ९ ॥
रूप की रासि* तैं रूप उन को बनो,
नाहिं उपमाहिं दूजी निबेरा ।
सुर्त से भैंटि के सब्द की टेक चढ़ि,
देखि मोकाम अंकूर केरा ॥ १० ॥
सून्य के बीच मैं बिमल बैठक तहाँ,
सहज अस्थान है गैब केरा ।
नवो मोकाम यह हंस जब पहुँचिया,
पलक बिलंब ह्वाँ कियो डेरा ॥ ११ ॥

*ढेर ।

तहाँ से डोरि मक* तार ज्यों लागिया,
ताहि चढ़ि हंस गौ दै दरेरा ।
भये आनन्द सोँ फन्द सब छोड़िया,
पहुँचिया जहाँ सतलोक मेरा ॥ १२ ॥
हंसनी हंस सब गाय बजाय के,
साजि के कलस वोहि लेन आये ।
जुगन जुग बीछुरे मिले तुम आइ के,
प्रेम करि अंग सोँ अंग लाये ॥ १३ ॥
पुरुष ने दरस जब दीन्हिया हंस को,
तपनि बहु जन्म की तब नसाये ।
पलटि के रूप जब एक सोँ कीन्हिया,
मनहुँ तब भानु षोड़स उगाये ॥ १४ ॥
पुहुप के दीप पियूष† भोजन करै,
सब्द की देँह जब हंस पाई ।
पुष्प के सेहरा हंस औ हंसिनी,
सच्चिदानन्द सिर छत्र छाई ॥ १५ ॥
दिपै बहु दामिनी दमक बहु भाँति की,
जहाँ घन सब्द की घुमड़ लाई ।
लगे जहँ बरसने गरज घन घोर के,
उठत तहँ सब्द धुनि अति सुहाई ॥ १६ ॥
सुनैं सोइ हंस तहँ जुत्थ के जुत्थ ह्वै,
एक ही नूर इक रंग रागे ।

---

*मकड़ी । †अमृत ।

करत बिहार मन भावनी मुक्ति भै,
कर्म औ भर्म सब दूरि भागे ॥ १७ ॥
रंक औ भूप कोइ परखि आवै नहीं,
करत किलोल बहु भाँति पागे ।
काम औ क्रोध मद लोभ अभिमान सब,
छाड़ि पाखंड सत सब्द लागे ॥ १८ ॥
पुरुष के बदन की कौन महिमा कहौं,
जगत मैं उभय* कछु नाहिं पाई ।
चन्द्र औ सूर गन जोति लागै नहीं,
एकहू नख की परकास भाई ॥ १९ ।
पान परवान जिन बंस का पाइया,
पहुँचिया पुरुष के लोक जाई ।
कहैं कबीर यहि भाँति सोँ पाइहौ,
सत्त की राह सो प्रगट गाई ॥ २० ॥

॥ राग जँतसार† ॥

(१)

सुरति मकरिया‡ गाड़हु हे सजनी—अहे सजनी ।
दूनों रे नयनवाँ जोतिया लावहु रे की ॥ १ ॥
मन धरु मन धरु मन धरु हे सजनी—अहे सजनी ।
अइसन समइया फिरि नाहिं पावहु रे की ॥ २ ॥
दिन दस रजनी हे सुख करु सजनी—अहे सजनी ।
इक दिन चाँद छपायल रे की ॥ ३ ॥

---

*दूसरा अर्थात सदृश । † जाँता या चक्की पर गाने की गीत । ‡चक्की का कीला ।

सँगहिँ अछत पिय भरम भुलइली—अहे सजनी ।
मोरे लेखे पिया परदेसहिँ रे की ॥ ४ ॥
नव दस नदिया अगम वहे सोतिया हो—अहे सजनी ।
विचहिँ पुरइनि* दह† लागल रे की ॥ ५ ॥
फुल इक फुलले अनुप फुल सजनी—अहे सजनी ।
तेहि फुल भँवरा लुभाइल रे की ॥ ६ ॥
सब सखि हिलि मिलि निज घर जाइब—अहे सजनी ।
समुँद लहरिया समाइब रे की ॥ ७ ॥
दास कबीर यह गवलैँ लगनियाँ हो—अहे सजनी ।
अब तो पिया घर जाइब रे की ॥ ८ ॥

(२)

अपने पिया की मैँ होइबौँ सोहागिनी—अहे सजनी ।
भइया तजि सइयाँ सँग लागब रे की ॥ १ ॥
सइयाँ के दुअरिया अनहद बाजा बाजै—अहे सजनी ।
नाचहिँ सुरति सोहागिनि रे की ॥ २ ॥
गंग जमुन के औघट घटिया हो—अहे सजनी ।
तेहि पर जोगिया मठ छावल रे की ॥ ३ ॥
देहौँ सतगुर सुर्ती के बिरवा हो—अहे सजनी ।
जोगिया दरस देखे जाइब रे की ॥ ४ ॥
दास कबीर यह गवलैँ लगनियाँ हो—अहे सजनी ।
सतगुर अलख लखावल रे की ॥ ५ ॥

---

*कोईँ । †तलाव ।

॥ राग बसंत ॥

खेलत सतगुरु ऋतु बसंत । मुक्ति पदारथ मिले कंत ॥टेक॥
धरती रथ चढ़ि देखो देस । घर घर निरखो नृप नरेस ॥१॥
जोजन चार पैतरे फेर । बाँधि मवासी गढ़ मैं घेर ॥२॥
अधर निअच्छर गहो ढाल । भागि चलै जब धरै काल॥३॥
सर* सुधारि घट कर कमान । चंद चिला† गहि मारो बान॥४॥
साधु संग रन करो जोर । तब घट छोड़ै चतुर चोर ॥५॥
ऐसी विधि से लड़ै सूर । काल मवासी होय दूर ॥६॥
अधर निअच्छर गहो डोर । जो निज माने बचन मोर॥७॥
धरती तुरँग‡ होइ असवार । कहै कबीर भव उतरो पार॥८॥

॥ राग होली ॥

(१)

सतगुरु दीन-दयाल पिरीतम पाइया ॥ टेक ॥
बंदीछोर मुक्ति के दाता, प्रेम सनेही नाम ।
साध संत के बसी अभिलाषा, सब बिधि पूरन काम ॥१॥
जैसे चात्रिक स्वाँती जल को, रटतु है आठो जाम ।
ऐसी सुरति लगी जिन सतगुरु, सो पाये सुख धाम ॥२॥
आनँद मंगल प्रेम चारि§ गुरु, अमर करत हैँ जीव ।
सुमिरन दे सतलोक पठाये, ऐसे समरथ पीव ॥ ३ ॥
चरन कमल सतगुरु की सेवा, मन चित गहु अनुराग ।
कहँ कबीर अस होरी खेलै, जा के पूरन भाग ॥ ४ ॥

---

* तीर । † चिल्ला=कमान की डोर । ‡ घोड़ा । §आचार्य ।

(२)

ऐसी होरी खेल, जा मैँ हुरमत लाज रहो री ॥ टेक ॥
सील सिँगार करो मोर सजनी, धीरज माँग भरो री ।
ज्ञान गुलाल लगावो सजनी, अगम घर सूझि परो री ॥१॥
उठत धमार काया गढ़ नगरी, अनहद बेनु बजो री ।
फगुवा खेलूँ अपने साहिब सँग, हिरदे साँच धरो री ॥२॥
खेती करो जग आइ के साधो, चेला सिष न बटोरी ।
नइया अपने पार उतरन को, सतगुरु दया करो री ॥३॥
मने मने की सिर पर मेटुकी, नाहक बोझ मरो री ।
मेटुकि उतारि मिलो तुम पिय सोँ, सत्त कबीर कहो री ॥४॥

(२)

माया भ्रम भारी सगरो जग जीति लियो ॥ टेक ॥
गज गामिनि कठोर है माया, संसय कीन्ह सिँगारा ।
लै के डारै मोह नदी मैँ, कोइ न उतरै पारा ॥ १ ॥
निज आँखिन मैँ अंजन दीन्हा, पंडित आँखि मैँ राई ।
जोगी जती तपी सन्यासी, सुर नर पकरि नचाई ॥ २ ॥
गोरख दत्त बसिष्ट व्यास मुनि, खेलन आये फागा ।
सिंगी ऋषि पारासर आये, छोड़ि छोड़ि बैरागा ॥ ३ ॥
सात दीप और नवो खंड मैँ, सब से फगुवा लीन्हा ।
ठाढ़ कबीर सोँ अरज करतु है, तुमहीं ना कछु दीन्हा ॥४॥

(३)

खेलो खेलो सोहागिनि होरी ।
चरन सरोज* पिया हित जानो, रज कै केसर घोरी ॥१॥

---

* कमल ।

सोहँग नारि जहँ रंग रचो है, बिच मैं सुखमन जोरी ।
सदा सजीवन प्रेम पिया को, गहि लीजे निज डोरी ॥२॥
लिये लकुट कर बरन बिचारो, प्रेम प्रीति रँग बोरी ।
रँग अनेक अनुभव गहि राचो, पिय के पाँव परो री ॥३॥
कहँ कबीर अस होरी खेलो, कोइ नहिँ झकझोरी ।
सतगुरु समरथ अजर अमर हैँ, तिन के चरन गहो री ॥४॥

॥ राग दादरा ॥

(१)

बलम सँग सोइ गइ दोइ जनी ॥ टेक ॥
इक ब्याही इक अरधी* कहावै, दूनोँ सुभग सुहाग भरी ॥१॥
ब्याही तो उँजियार दिखावै, अरधी लै अँधियार खड़ी ॥२॥
ब्याही तो सुख निँदिया सोवै, अरधी दुख सुख माथ धरी ॥३॥
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, दूनोँ पिया पियारि रहीँ ॥४॥

(२)

रमैया की दुलहिन ने लूटा बजार ॥ टेक ॥
सुरपुर लूटा नागपुर लूटा, तिन लोक मचि गइ हाहा कार ॥१॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार† ॥२॥
सिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर कै उदर बिदार ॥३॥
कनफूँका चिदाकासी लूटे, जोगेसुर लूटे करत बिचार ॥४॥
हम तो बचिगये साहिब दया से, सब्द डोर गहि उतरे पार ॥५॥
कहँ कबीर सुनो भाइ साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार ॥६॥

---

*धरूक, सुरैतिन । †पीछे ।

ककहरा

[क] काया कुंज करम की बाड़ी, करता बाग लगाया।
किनका ता मैं अजर समाना, जिन बेली फैलाया ॥
पाँच पचीस फूल तहँ फूले, मन अलि* ताहि लुभाया।
वोहि फूलन के बिषै लपटि रस, रमता राम भुलाया ॥
मन भँवरा यह काल है, बिषै लहरि लपटाय।
ताहि संग रमता बहै, फिरि फिरि भटका खाय ॥१॥
[ख] खालिक की तो खबर नहीं कछु, खाव ख्याल मैं भूला।
खाना दाना जोड़ा घोड़ा, देखि जवानी फूला ॥
खासा पलँग सेजबँद तकिया, तोसक फूल बिछाया।
नवल नारि लै ता पर पौढ़ा, काम लहर उमड़ाया ॥
लागी नारी प्यारि अति, छुटा धनी सोँ नेह।
काल आय जब ग्रासिहै, खाक मिलेगी देँह ॥ २ ॥
[ग] गुरू कीजिये निरखि परखि कै, ज्ञान रहनि का सूरा।
गर्ब गुमान माया मद त्यागे, दया छिमा सत पूरा ॥
गैल बतावै अमर लोक की, गावै सतगुरु बानी।
गज मस्तक अंकुस गहि बैठे, गुरुवा गुन गलतानी ॥
पाप पुन्य की आस नहिँ, करम भरम से न्यार।
कृतम पाखँड परिहरे, अस गुरु करो बिचार ॥३॥
[घ] घट गुरु ज्ञान बिना अँधियारा, मोह भरम तम छाया।
सार असार बिचारत नाहीं, अमी धोख बिष खाया ॥

---

*भँवरा।

घर का घिर्त रेत मैं डारै, छाछ ढूँढ़ता डोलै।
कंचन देके काँच बिसाहै*, हरू गरू† नाहिं तौलै॥
ज्ञान बिना नर बावरा, अंध कूर मतिहीन।
साँच गहै नाहिं परखि कै, झूठै के आधीन॥ ४॥
[ङ] ङंभ मनै मत मानियो, सत्त कहौं परमारथ जानी।
उपजै सुख तब हृदय तुम्हारे, जब परखो मम बानी॥
ऊँचा नीचा कोइ नहीं रे, करम कहावै छोटा।
जासु के अंदर करकै नखरा, सोई माल है खोटा॥
ऊपर जटा जनेऊ पहिने, माला तिलक सुहाय।
संसय सोक मोह भ्रम अंदर, सकले मैं रहु छाय॥५॥
[च] चित से चेतहु चतुर चिकनियाँ, चैन कहा तुम सोया।
चतुराई सब भाड़ परैगी, जन्म अचेते खोया॥
चौथा पन तेरा अब लागा, अजहुँ चेत गुरु ज्ञान।
नाहिं तो परैगो घोर अँधेरो, फिरि पाछे पछितान॥
ऐसे पाटन आइकै, सौदा करौ बनाय।
जो चूको तुम जन्म यह, तो दुख भुगतौ जाय॥ ६॥
[छ] छन मैं छल बल सब निकसत हैं, जब जम छैंकै आई।
छटपट करिहौ बिष ज्वाला तैं, तब कहु कौन सहाई॥
जम का मुगदर ऊपर बरसै, तब को करै उबारो।
तात मातु भ्राता सुत सज्जन, काम न आवै नारो॥
छूट्यो सर्ब सगाई, भया चोर का हाल।
संगी सब न्यारे भये, आप गये मुख काल॥ ७॥
[ज] जम के पाले पड़े जीव, तब कछू बात नाहिं आवै।
जोर कछू काबू नहीं, सिर धुनि धुनि पछितावै॥

*मोल ले। †हलका भारी।

जब ले पहुँचावैं चित्रगुप्त पहँ, लिखनी लिखै विचारि।
दयाहीन गुरुविमुखी ठहरै, अग्नि कुंड लै डारि॥
जन्म सहस अजगर को पावै, बिष ज्वाला अकुलाय।
ता पाछे कृमि विष्टा कीन्हा, भूत खानि को जाय॥८॥
[झ] झंखन झुरवन सबही छोड़ो, झमकि करो गुरु सेव।
झाँईं मन की दूर करो अब, परखि सब्द गुरु देव॥
झगरा झूठ झाल झल त्यागो, झटक भजो सतनाम।
झीन करो मन मेलो मंदिर, तब पावो बिस्राम॥
होइ अधीन गुरु चरन गहु, कपट भाव करि दूर।
पतिब्रता ज्यों पिव को चाहै, ताके न दूजा कूर॥९॥
[ञ] इस्क बिना नहिं मिलिहै साहिब, केतो भेष बनावै।
इस्क मासूक न छिपै छिपाये, केतो छिपै छिपावै॥
इत उत इहाँ उहाँ सब छोड़ो, निःचल गहु गुरु चरना।
या से सुक्ख होय दुख नासै, मेटै जीवन मरना॥
आदि नाम है जाहि पहँ, सोई गुरु है सार।
जे कृत्तम कहँ ध्यावही, ते भव होय न पार॥ १०॥
[ट] टीम टाम बाहर बहुतेरे, दिल दासी से बंधा।
करै आरती संख बाज धुनि, छुटै न घर कै धंधा॥
टिकुली सेंदुर टकुवा चरखा, दासी ने फरमाया।
कच्चे बच्चे ने माँगि मिठाई, मगन भया मन आया॥
जिन सेवक पूजा दियो, ताहि दियो आसीस।
जहाँ नहीं कछु तहँ भे ठाढ़े, भस्म करैं जगदीस॥११॥
[ठ] ठग बहुतेरे भेष बनावैं, गले लगावैं फाँसी।
स्वाँग बनाये कौन नफा है, जो न भजे अबिनासी॥

ठोकर सहै गुरू के द्वारे, ठौक ठौर तब पावै।
ठकठक जन्म मरन का मेटै, जम के हाथ न आवै॥
मृतक होय गुरु पद गहै, ठीस* करै सब दूर।
कायर तेँ नाहिँ भक्ति है, ठानि रहै कोइ सूर॥१२॥
[ड] डगमग तेँ तो काज सरै नाहिँ, अडिग नाम गुन गहिये।
डर मेटै तब बिषम काल का, अछै अमर पद लहिये॥
डरते रहिये गुरू साधु से, डम्भि काम नाहिँ आवै।
डिम्भी होय के भवसागर मेँ, डहन मरन दुख पावै॥
डेढ़ रोज का जीवना, डारो कुबुधि नसाय।
डेरा पावो सत्त लोक मेँ, सतगुरु सब्द समाय॥१३॥
[ढ] ढूँढत जिसे फिरो सो ढिंग है, तेरा तेँ उलटि निरेखो।
ढोल मारि के सबै चेतावोँ, सतगुरु सब्द बिबेखो॥
तुम हो कौन कहाँ तेँ आये, कहँ है निज घर तेरा।
केहि कारन तुम भरमत डोलो, तन तजि कहाँ बसेरा॥
को रच्छक है जीव का, गहो ताहि पहिचानि।
रच्छक के चीन्हे बिना, अंत होयगी हानि॥१४॥
[ण] निर्गुन गुनातीति अबिनासी, दया-सिंधु सुख-सागर।
निःचल निःठौर निरबासी, नाम अनादि उजागर॥
निरमल अमी क्रांति अद्भुत छबि, अकह अजावन† सोई।
नख सिख नाभि नयन मुख नासा, स्त्रवन चिकुर‡ सुभ होई॥
चिकुरन के उजियार तेँ, बिधु§ कोटिक सरमाय।
कहा क्रांति छबि वरनोँ, बरनत बरनि न जाय॥१५॥
[त] ताहि पुरुष की अंस जीव यह, धर्मराय ठगि राखा।
तारन तरन आप कहलाई, बेद सास्त्र अभिलाखा॥

---

*अकड़। †बिना जामन के। ‡बाल। §चन्द्रमा।

तत्त्व प्रकृति तिरगुन से बंधा , नीर पवन की वारी ।
धर्मराय यह रचना कीन्ही , तहाँ जीव बैठारी ॥
जीवहिं लाग ठगौरी , भूला अपना देस ।
सुमिरन करहो काल को, भुगतै कष्ट कलेस ॥ १६ ॥
[थ] थकित होय जिव भरमत डोलै, चौरासी के माहीं ।
नाना दुक्ख परै जम फाँसी , जरै मरै पछिताही ॥
थाह न पावै बिपति कष्ट की , बूड़ै संसय धारा ।
भवसागर की विषम लहर है , सूझै वार न पारा ॥
तन विलखै* अघ जोनि मैं, पड़ै जीव बिकरार ।
सतगुरु सब्द बिचार नहिं, कैसे उतरै पार ॥ १७ ॥
[द] दुंद बाद है और देंह मैं , परिचै तहाँ न पावै ।
नर तन लहि जो मोहिं गहै , तो जम के निकट न आवै ॥
दरस कराऔं सत्त पुरुष का , दैंह हिरम्बर पाइहौ ।
सुख सागर सुख बिलसो हंसा , बहुरि जोनि नहिं आइहौ ॥
अपना घर सुख छाड़ि के , अँगवै[1] दुख को भार ।
कहाँ भरम बसि परे जिव , लखै न सब्द हमार ॥१८॥
[ध] धर्मराय को सबै पुकारै , धर्मै चीन्ह न पावै ।
धर्मराय तिहुँ लोकहिं ग्रासै , जीवहिं बाँधि झुलावै ॥
धोखा दै सब को भरमावै , सुर नर मुनि नहिं बाचै ।
नर बपुरे की कौन बतावै , तन धरि धरि सब नाचै ॥
असुर होय सतावही , फिर रच्छक को भाव ।
रच्छक जानि के जपै जिव, पुनि वे भच्छ कराव ॥१९॥

---

*बिलकै, रोवै । [1]सहै ।

[न] निरभै निडर नाम लौ लावै, नकल चीन्हि परित्यागै।
नाद बिंद तेँ न्यार बतायो, सुरति सोहंगम जागै॥
निराधार निःतत्त्व निअच्छर, निःसंसय निःकामी।
निःस्वादी निर्लिप्त बियापित, निःचिंत अगुन सुख धामी॥
नाम-सनेही चेतहू, भाखौँ घर की डोरि।
निरखो गुरु गम सुरति सोँ, तब चलि तुन जम तोरि॥२०॥

[प] पाप पुन्य मेँ जिव अरुझाना, पार कौन बिधि पावै।
पाप पुन्य फल भुक्तै तन धरि, फिर फिर जम संतावै॥
प्रेम भक्ति परमातम पूजा, परमारथ चित धारै।
पावन जन्म परसि पद पैहै, पारस सब्द बिचारै॥
पीव पीव करि रटन लगावै, परिहरि कपट कुचाल।
प्रीतम बिरह बिजोग जेहिँ, पाँव परै तेहिँ काल॥२१॥

[फ] फरामोस* कर फिकर फेल बद, फहम करै दिल माहीँ।
परफुल्लित सतगुरु गुन गावै, जम तेहि देखि डेराही॥
फाजिल सो जो आपा मेटै, फना† होय गुरु सेवै।
फाँसी काटै कर्म भर्म की, सत्त सब्द चित देवै॥
फिरै फिरै नर भरम बस, तीरथ माहिँ नहाय।
कहा भये नर घोर के पीये, ओस तेँ प्यास न जाय॥२२॥

[व] ब्रह्म बिदित है सर्ब भूत मेँ, दूसर भाव न होय।
वर्त्तमान चित चेतै नाहीँ, भूत भविष्य बिलोय॥
वड़े पढ़े ते बिषम बुद्धि लिये, बोलनहार न जोहैं‡।
ब्रह्म दुखित करि पाहन पूजै, बरबस आपु बिगोहैं§॥

*भुला कर। † मृतक। ‡ खोजै। § बिगाड़ै।

बन्दि परे नर काल के, बुद्धि ठगाइनि जानि।
बन्दी छोरौं लैचलौं, जो मोहिं गहि पहिचानि। २३॥

[भ] भाड़ परै यह देस बिराना, भवसागर अवगाहा* ।
भक्त अभक्त सभन को बोरै, कोई न पावै थाहा॥
भच्छक आप लीला विस्तारा, कला अनंत दिखावै।
भच्छक को रच्छक करि जानै, रच्छक चीन्हि न पावै॥

भजै जाहि सो भच्छक, रच्छक रहा निनार।
भर्म चक्र मैं परे जीव सब, लखै न सब्द हमार॥ २४॥

[म] मन मयगर† मद मस्त दिवाना, जीवहिं उलटि चलावै।
अकरम करम करै मन आपहिं, पीछे जिव दुख पावै॥
मोह बस जीव मनहिं नहिं चीन्है, जानै यह सुखदाई।
मार परै तब मन ह्वै न्यारो, नरक परै जिव जाई॥

मन गज अगुवा काल को, परखो संत सुजान।
अंकुस सतगुरु ज्ञान है, मन मतंग भयमान‡ ॥२५॥

[य] जो जिव सतगुरु सब्द बिबेकै§, तौ मन होवै चेरा।
जुक्ति जतन से मन को जीतै, जियतै करै निबेरा॥
जहँ लगि जाल काल बिस्तारा, सो सब मन की बाजी।
मनै निरंजन धर्मराय है, मन पंडित मन काजी॥

गुरु प्रताप भौ जोर जिव, निर्बल भौ मन चोर।
तस्कर संधि न पावही, गढ़-पति जगै अँजोर॥२६॥

[र] रहनि रहै रजनी नहिं व्यापै, रतै मतै गुरु बानी।
राह बतावौं दया जानि जिव, जा तैं होय न हानी॥

---

* अथाह। † मस्त हाथी। ‡ भयानक। § विचारै।

रमता राम काम करि अपना, सुपना है संसारा।
रार रोर तजि रच्छक सेवो, जा तें होय उबारा॥
रैन दिवस उहवाँ नहीं, पुरुष प्रकास अँजोर।
राखो तेई ठाँव जिव, जहाँ न चाँपै चोर॥ २७॥
[ल] लगन लगी जेहि गुरु चरनन की, लच्छन प्रगट तेहिं ऐसा
लगन लगी तब मगन भये मन, लोक लाज कुल कैसा॥
लगा रहै गुरु सुरत परेखै, निज तन स्वार्थ न सूझै।
लागै ठोकर पीठ न देवै, सूरा सन्मुख जूझै॥
लहर लाज मन बुद्धि की, निकट न आवै ताहि।
लोटै गुरु चरनन तरे, गुरु सनेह चित जाहि॥२८॥
[व] वाके निकट काल नहिं आवै, जो सत सब्द समाना।
वार पार की संसय नाहीं, वाही मैं मन माना॥
वासिलबाकी का डर नाहीं, वारिस हाथ बिकाना।
वारिस को सौंपै अपने तईं, वाही हृदय समाना॥
वाकिफ हो सो गमि लहै, वाजिब सखुन अजूब।
वाही की करु बन्दगी, पाक जात महबूब॥२९॥
[श] शहर चोर घनघोर करेरे, सोवै सब घरबारी।
शोर करैं निर्भरमै सोवै, लागी बिषम खुमारी॥
साहिब से तो फेर दिल अपना, दुनियाँ बीच बँधाया।
साला साली ससुरा सरहज, समधी सजन सुहाया॥
सतगुरु सब्द चेतावहीं, समुझि गहै कोइ सूर।
सम बल लीजे हाथ करि, जाना है बड़ दूर॥ ३०॥
[ष] खलक सयाना मन बौराना, खोय जात निज कामा।
खबर नहीं घर खरच घटाना, चेतै रमता रामा॥

खोलि पलक चित चेतै अजहूँ, खाविंद सौं लौ लावै।
खाम खयाल करि दूरि दिवाना, हिरदे नाम समावै॥
खाल भरी है वायु तें, खाली होत न वार।
खैर परै जेहि काम तें, सो करु बेगि बिचार॥३१॥
[स] सहज सील संतोष धरन[†] धर, ज्ञान बिबेक बिचार।
दया छिमा सतसंगति साधो, सतगुरु सब्द अधार॥
सुमिरन सत्त नाम का निस दिन, सूर भाव गहि रहना।
समर[‡] करै औ जोर परै जो, मन के संग न बहना॥
सैन कहा समुझाइ कै, रहनी रहै सो सार।
कहे तरै तो जग तरै, कहनि रहनि बिनु छार॥३२॥
[ह] हरि आवै हरि नाम समावै, हरि मौं हरि को जानै।
हरि हरि कहे तरै नहिं कोई, हरि भज लोक पयानै॥
हरि बिनसै हरि अजर अमर है, हरी हरी नहिं सूझै।
हाजिर छाड़ि बुत्त[§] को पूजै, हसद[॥] करै नहिं बूझै॥
हम हमार सब छाड़ि कै, हक्क राह पहिचान।
हासिल हो मकसूद तब, हाफिज अमन अमान॥३३॥
[क्ष] छैल चिकनियाँ अभै घनेरे, छका फिरै दीवाना।
छाया माया इस्थिर नाहीं, फिरि आखिर पछिताना॥
छर अच्छर निःअच्छर बूझै, सूझि गुरू परिचावै।
छर परिहरि अच्छर लौ लावै, तब निःअच्छर पावै॥
अच्छर गहै बिबेक करि, पावै तेहि से भिन्न।
कहै कबीर निःअछरहिं, लहै पारखी चीन्ह॥३४॥

॥ इति॥

---

* कुशल। † धारना। ‡ युद्ध। § मूरत। ॥ द्रोह।

निवेदन

पहिला एडिशन

(सन् १९१२)

कबीर साहिब के इस अनमोल ग्रंथ के छापने के लिये बहुत दिन से हमारी अभिलाषा और मित्रोँ का तगादा था पर अब तक उसका पूरा मसाला इकट्ठा न होने के कारन हम न छाप सके। चार बरस हुए हमको बाबा जुगलानंद कबीर-पंथी भारत-पथिक की एक पुस्तक लखनऊ के (संवत १९५५ के) छापे की मिली थी पर वह इतनी अशुद्धता और छेपक से भरी हुई थी कि जब तक और लिपि हाथ न आवै जिससे त्रुटियोँ की शुद्धि की जावै, उससे पूरा मतलब नहीँ निकल सकता था। फिर भी हमको उससे बहुत मदद मिली जिसके लिये हम उक्त महाशय को अनेक धन्यवाद देते हैँ। संत संग्रह के प्रथम भाग मेँ भी कबीर साहिब की साखियाँ हैँ जो यद्यपि संख्या मेँ कम हैँ पर चुनी हुई और बड़ी शुद्धता के साथ छपी हैँ, और थोड़े दिन हुए हमारे मित्र बाबू सरजूप्रसाद मुआफ़ीदार तेरही ज़िला बाँदा और साधू साहिबदास जी वेस्ट कोस्ट डेमरारा निवासी ने दो मोटी पुस्तकेँ कबीर साहिब के उत्तम साखियेँ और पदोँ की कृपा करके हमको भेजीँ जिनसे साखियोँ के चुनने और बाबा जुगलानंद जी की पुस्तक की साखियोँ के सोधने मेँ बहुत मदद मिली॥

अनेक साखियाँ लखनऊ की छपी हुई पुस्तक और लिपियोँ मेँ भी दो दो तीन तीन बार भिन्न भिन्न अंगोँ मेँ दी हुई थीँ इनको छाँट कर निकाल देने मेँ बड़ा परिश्रम हुआ और फिर भी यह कहना कठिन है कि हमारी पुस्तक मेँ कोई साखी भूल से दो बार नहीँ छपी है। पर जहाँ तक बन सका इस पुस्तक मेँ उत्तमोत्तम और शुद्ध साखियाँ रक्खी गई

हैं, जो दोष रह गये हों उन्हे प्रेमी जन छिमा की दृष्टि से देखें और कृपा करके हमको जता दें जिसमें दूसरे छापे में वह ठीक कर दिये जायँ ॥

कबीर साहिब का जीवन-चरित्र विस्तार के साथ उनकी शब्दावली के पहले भाग में दिया जा चुका है इसलिये यहाँ फिर छापने की आवश्यकता नहीं है ॥

दूसरा एडिशन

(सन् १६१५)

जो साखियाँ पहिले छापे में कहीं कहीं दुबारा या अशुद्ध छपी थीं वह इस नये छापे मे ठीक कर दी गई हैं और टिप्पनी की भी यथा शक्ति जहाँ तहाँ शुद्धि कर दी गई है।

इलाहाबाद,
जनवरी, सन् १६१५

अधम—
एडिटर, संतबानी पुस्तक-माला।

सूचीपत्र अंगों का

॥ भाग १ ॥

॥ भाग २ ॥

नाम अंगों के | पृष्ठ

कबीर साहिब का साखी-संग्रह

[भाग १]

गुरुदेव का अंग

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
कीट न जानै भृङ्ग को, वह कर ले आप समान ॥१॥
जगत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय ।
जिन गुरु[1] आँखि न देखिया, सो गुरु[2] दिया लखाय ॥२॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
हरि समान को हितू है, हरिजन सम को जात ॥३॥
सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार ।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार ॥४॥
जेहि खोजत ब्रम्हा थके, सुर नर मुनि अरु देव ।
कहै कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव ॥५॥
कबीर गुरु गरुआ मिला, रल[3] गया आटे लोन ।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरैगा कौन ॥६॥
ज्ञान-प्रकासी गुरु मिला, सो जन बिसरि न जाय ।
जब साहिब किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥७॥
गुरु साहिब करि जानिये, रहिये सबद समाय ।
मिले तो दँडवत बंदगी, पल पल ध्यान लगाय ॥८॥

---

(१) गुरू के निज रूप से अभिप्राय है। (२) देहधारी रूप गुरू का
(३) मिल।

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिँ ।
कहै कबीर ता दास को, तीन लोक डर नाहिँ ॥९॥
गुरु गोविंद दोऊ खड़े, का के लागौँ पाँय ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ॥१०
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार ।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार ॥११॥
लाख कोस जो गुरु बसैँ, दीजै सुरत पठाय ।
सबद तुरी असवार ह्वै, पल पल आवै जाय ॥१२॥
जो गुरु बसैँ बनारसी, सिष्य समुंदर तीर ।
एक पलक बिसरै नहीँ, जो गुन होय सरीर ॥१३॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥१४॥
बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरि चमक्क ।
बेड़ा देखा झाँझरा, ऊतरि भया फरक्क ॥१५॥
पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस ।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस ॥१६
सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिँ ।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिँ ॥१७॥
मन दीया तिन सब दिया, मन की लार[1] सरीर ।
अब देवे को कछु नहीँ, योँ कह दास कबीर ॥१८॥
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार ।
कबहूँ कहै कि मैँ दिया, घनी सहैगा मार ॥१९॥
तन मन ता को दीजिये, जा के बिषया नाहिँ ।
आपा सबही डारि कै, राखै साहिब माहिँ ॥२०॥

---

(१) साथ ।

तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय ॥२१॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहै कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग ॥२२॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और ॥२३॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मस्कला[1] देइ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ ॥२४॥
सिष खाँडा गुरु मस्कला, चढ़ै नाम खरसान[2]।
सबद सहै सन्मुख रहै, तो निपजै सिष्य सुजान॥२५॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥२६॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ[3] है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै[4] चोट ॥२७॥
सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह ॥२८॥
गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै गुरु भजे, तब पावै करतार ॥२९॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु[5] चरन निवास ॥३०॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध ॥३१॥

(१) सिकली करने का औज़ार। (२) सान। (३) घड़ा। (४) लगाता है। (५) सत्य पुरुष।

गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि ।
ते नर नरकै जाइँगे, जन्म जन्म ह्वै स्वान ॥३२॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥३३॥
गुरु हैं बड़ गोबिंद तें, मन में देखु बिचार ।
हरि सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥३४॥
गुरु सीढ़ी तें ऊतरै, सबद बिहूना होय ।
ता को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय ॥३५॥
अहं अगिन निसि दिन जरै, गुरु से चाहै मान ।
ता को जम न्योता दियो, होउ हमार मिहमान ॥३६॥
गुरु से भेद जो लीजिये, सीस दीजिये दान ।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥३७॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान ।
तीन लोक की सम्पदा[1], सो गुरु दीन्हा दान ॥३८॥
जम गरजे बल बाघ के, कहै कबीर पुकार ।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार ॥३९॥
गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास ।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥४०॥
अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख ।
गुरू दया तें पावई, सुरत निरत करि देख ॥४१॥
पंडित पढ़ि गुनि पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान ।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त सबद परमान ॥४२॥
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पुजा गुरु पाँव ।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥४३॥

---

(१) दौलत ।

कहै कबीर तजि भरम को, नन्हा ह्वै के पीव ।
तेजि[1] अहं गुरु चरन गहु, जम से बाचै जीव ॥४४॥
तीन लोक नौ खंड में, गुरु तें बड़ा न कोइ ।
करता करै न करि सकै, गुरू करै सो होइ ॥४५॥
कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥४६॥
गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय ।
कहै कबीर सो संत है, आवा गवन नसाय ॥४७॥
थापन[2] पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर ।
कबीर हीरा बनिजिया[3], मानसरोवर तीर ॥४८॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि ।
सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥४९॥
निरुचय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर ।
निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥५०॥
कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय ।
अंतर भींजी आतमा, हरो भयो बनराय ॥५१॥
सतगुरु के सदके[4] किया, दिल अपने को साच ।
कलजुग हम से लरि परा, मुहकम[5] मेरा बाँच ॥५२॥
साचे गुरु की पच्छ में, मन को दे ठहराय ।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥५३॥
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान ।
दीपक जोति पतंग ज्यौं, परता आय निदान ॥५४॥

---

(१) तज या छोड़ कर । (२) स्थिति यानी ठहराव । (३) बनिज किया या लादा । (४) न्योछावर । (५) परवाना ।

भली भई जो गुरु मिले, जा तें पाया ज्ञान।
घटही माहिँ चबूतरा, घटही माहिँ दिवान ॥५५॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष सोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥५६॥
गुरू तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय।
क्यौं करिके मिलना भया, क्यौं बिछुड़े आवे जाय॥५७॥
गुरू हमारा गगन में, चेला है चित माहिँ।
सुरत सबद मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिँ ॥५८॥
वस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥५९॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही बस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥६०॥
जल परमानै माछरी, कुल परमावै बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि ॥६१॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान ॥६२॥
चेतन चौकी बैठ करि, सतगुरु दीन्ही धीर।
निरभय है निःसंक भजु, केवल नाम कबीर ॥६३॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़े में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥६४॥
दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना[1], बहुरि न आवै हट्ट[2] ॥६५॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी[3] किया सरीर।
सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६६॥

---

(१) ख़रीदारी। (२) बाज़ार। (३) पासा।

ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत ।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥६७॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन से रहिये लाग ।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आग ॥६८
सतगुरु हम से रीझि कै, एक कहा परसंग ।
बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग ॥६९॥
सतगुरु के उपदेस का, सुनियो एक बिचार ।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥७०॥
जम द्वारे पर दूत सब, करते खैंचा तान ।
तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खानि ॥७१॥
चार खानि में भरमता, कबहुं न लहता पार ।
सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥७२॥
जरा[1] मीच[2] ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय ।
चलु कबीर वा देस में, जहँ बैदा सतगुरु होय ॥७३॥
काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस ।
साहिब अंक[3] पसारिया, लै चला अपने देस ॥७४॥
सतगुरु साचा सूरमा, सबद जो बाहा[4] एक ।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥७५॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर ।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥७६॥
सतगुरु सबद कमान करि, बाहन लागा तीर ।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर ॥७७॥

---

(१) वृद्ध अवस्था । (२) मौत । (३) अँकवार यानी दोनों हाथ । (४) चलाया ।

सतगुरु बाहा बान भरि, धर कर सूधी मूठ।
अंग उघारे लागिया, गया धुवाँ सा फूट ॥७८॥
सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल सरीर।
बान धुवाँ सा फूटिया, क्यों जीवे दास कबीर ॥७९॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥८०॥
कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिं।
भीतर बिंधे सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिं ॥८१॥
जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि।
लगी चोट जो सबद की, गई कलेजे छानि ॥८२॥
सतगुरु मारा बान भरि, डोला नाहिं सरीर।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वोहि तीर ॥८३॥
सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान ॥८४॥
ज्ञान कमान औ लव गुना[1], तन तरकस मन तीर।
भलका[2] बहै तत सार का, मारा हदफ[3] कबीर ॥८५॥
कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान।
केते जोधा पचि गये, खींचै संत सुजान ॥८६॥
लागी गाँसी सुख भया, मरै न जीवै कोय।
कहै कबीर सो अमर भे, जीवत मिर्तक होय ॥८७॥
हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेला मार[4]।
कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हथियार ।८८॥

---

(१) कमान की डोर। (२) गाँसी। (३) निशाना। (४) चंचल यानी मन को मार के हटा दिया और उनमुनी दशा प्राप्त हुई।

गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥८९॥

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब[1]।
कहुँ आपा कहुं आपदा, तसबी कहूँ कितेब ॥९०॥

सतगुरु मारा प्रेम से, रही कटारी टूट।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ[2] ॥९१॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर।
अलख नाम में रमि रहा, चित्त न आवै और ॥९२॥

मान बड़ाई ऊरमी[3], ये जग का व्यवहार।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥९३॥

दिल ही में दीदार है, बाद बहै संसार।
सतगुरु सब्द का मस्कला, मोहिं दिखावनहार ॥९४॥

दीसे है सो बिनसिहै, नाम धरे सो जाय।
कबीर सोई तत्त गहु, जो सतगुरु दियो बताय ॥९५॥

कुदरत पाई खबर से, सतगुरु दियो बताय।
भँवरा बिलम्यो कमल से, अब कैसे उड़ि जाय ॥९६॥

सत्त नाम छोड़ूँ नहीं, सतगुरु सीख दिया।
अविनासी को परसि के, आतम अमर भया ॥९७॥

सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत सार ॥९८॥

सतगुरु मिलि निरभय भया, रही न दूजी आस।
जाय समाना सब्द में, सत्त नाम बिस्वास ॥९९॥

---

(१) ज़ेवाइश, साज़ सामान। (२) अनी अर्थात नोक कटारी की जो टूट कर हृदय में रह-गई वह इतना कष्ट नहीं देती है जितना मूठ का बाहर रह जाना, यानी प्रेम कटारी समूची क्यों न घुस गई। (३) तरंग (मन की)।

कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अर्थाय ।
सुरत कँवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥१००॥
कुमति कीँच चेला भरा, गुरू ज्ञान जल होय ।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय ॥१०१॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु संत सुजान ।
पंच सबद धुनकार धुन, बाजै गगन निसान ॥१०२॥
जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर ।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥१०३॥
साचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय ।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥१०४॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञान मस्कला देइ ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ ॥१०५॥
गुरू बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज ।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥१०६॥
चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर ।
सो धोखा बिच क्यों रहै, जेहि सतगुरु मिलै कबीर१०७
चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गंभीर ।
सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर १०८
सतगुरु सत्त कबीर है, संकट पड़ा हजीर[१] ।
हाथ जोरि बिनती करूँ, भवसागर के तीर ॥१०९॥
कोटिन चंदा ऊगवैं, सूरज कोटि हजार ।
सतगुरु मिलिया बाहरे, दीसत घोर अँधार ॥११०॥
सतगुरु मोहिं निवाजिया, दीन्हा अम्मर बोल ।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल ॥१११॥

---

(१) भारी ।

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास ।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस ॥११२॥

सतगुरु पारस के सिला, देखो सोच बिचार ।
आई परोसिन लै चली, दीयो दिया सँवार ॥११३॥

जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नाहिँ पतियाय ।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय ॥११४॥

पहिले बुरा कमाइ के, बाँधी बिष की पोट ।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट॥११५

सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखैं खरा अरु खोट ।
भवसागर तैं निकारि कै, राखैं अपनी ओट ॥११६॥

भवसागर जल बिष भरा, मन नाहिं बाँधै धीर ।
सबल सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर ॥११७॥

सतगुरु सबद जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद ।
समुँद बुंद एकै भया, किस का करूँ निषेद ॥११८॥

सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठै आय ।
पार उतारैं और को, अपनो पारस लाय ॥११९॥

बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिँ ।
भवसागर के त्रास मैं, सतगुरु पकरैं बाँहिँ ॥१२०॥

सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाड़ी भोल[1] ।
पास बस्त्र ढाँकै नहीं, क्या करै बपुरी चोल[2] ॥१२१॥

जग मूआ बिषधर[3] धरे, कहै कबीर बिचार ।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार ॥१२२॥

---

(१) मन में भूल पड़ी । (२) बिचारी चोली । (३) साँप, अर्थात मन और माया ।

॥ सोरठा ॥

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रम्हा बिष्नु महेस, और सकल जिव को गनै ॥१२३॥

॥ साखी ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१२४॥

॥ सोरठा ॥

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तबै जिव काज, निःचय कै परतीत करु ॥१२५॥

॥ साखी ॥

अच्छर आदी जगत मैं, जा कर सब बिस्तार।
सतगुरु दया से पाइये, सत्त नाम निज सार ॥१२६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहू।
मेटौ भव को अंक, आवागवन निवारहू ॥१२७॥
बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदी-छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भवजल मिटै ॥१२८
सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१२९॥

॥ साखी ॥

सतगुरु सरन न आवहीं, फिरि फिरि होय अकाज।
जीव खोय सब जाहिंगे, काल तिहूँ पुर राज ॥१३०॥

॥ सोरठा ॥

जो सत नाम समाय, सतगुरु की परतीत कर।
जम कै अमल मिटाय, हंस जाय सत लोक कहँ ॥१३१॥

तत[1] दरसी जो होय, सो सत सार बिचारई।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु कै चेला सोई ॥१३२॥
जग भवसागर माहिं, कहु कैसे बूड़त तरै।
गहु सतगुरु की बाहिं, जो जल थल रच्छा करै ॥१३३॥
निज मत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिलै।
जग तेँ रहै उदास, ता कहँ क्योँ नहिं खोजिये॥१३४

॥ साखी ॥

यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भवजल जीति॥१३५॥
सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय।
धन्य सिष्य धन भाग तेहिं, जो ऐसी सुधि पाय ॥१३६॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजै सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव ॥१३७॥

झूठे गुरू का अंग।

गुरू मिला ना सिष मिला, लालच खेला दाव।
दोऊ बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥१॥
जा का गुरु है आँधरा, चेला निपट निरंध[2]।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप परंत ॥२॥
जानंता[3] बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥३॥
कबीर पूरे गुरु बिना, पूरा सिष्य न होय।
गुरु लोभी सिष लालची, दूनी दाझन[4] होय ॥४॥

---

(१) तत्व अर्थात सार वस्तु। (२) जिसकी आँखैं बिल्कुल बंद हैं। (३) जानकार, भेदी। (४) तपन।

पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि के, घर घर माँगै भीख ॥५॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
सोई गुरु नित बंदिये, (जो) सबद बतावै दाव ॥६॥
कनफूका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर ॥७॥
गुरू किया है देँह का, सतगुरु चीन्हा नाहिँ।
भवसागर के जाल में, फिरि फिरि गोता खाहिँ॥८॥
जा गुरु तेँ भ्रम ना मिटै, भ्रांति[1] न जिव की जाय।
गुरू तो ऐसा चाहिये, देवै सबद लखाय ॥९॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥१०॥
झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सबद का, भटकै बारंबार ॥११॥
कबीर गुरु को गम नहीं, पाहन दिया बताय।
सिष सोधे बिन सेइया, पार न पहुँचे जाय ॥१२॥
बेड़े चढ़िया झाँझरे, भवसागर के माहिँ।
जो छाड़ै तो बाचिहै, नातर बूड़ै माहिँ ॥१३॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिँ।
कहै कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिँ ॥१४॥
नीर पियावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि[2]।
तृषावंत जो होइगा, पीवैगा झख मारि ॥१५॥
गुरुआ तो सस्ता भया, पैसा केर पचास।
राम नाम को बेचि के, करै सिष्य की आस ॥१६॥

(१) भटक। (२) पानी।

रासि[1] पराई राखता, घर का खाया खेत।
औरन को परमोधता, मुख में परि गई रेत ॥१७॥
गुरुआ तो घर घर फिरै, दीच्छा हमरी लेहु।
कै बूड़ौ कै ऊछलै, टका परद्नी[2] देहु ॥१८॥
जा का गुरु ग्रेही[3] अहै, चेला ग्रेही होय।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय ॥१९॥
गुरू नाम है ज्ञान का, सिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु सिष्य न कोइ ॥२०॥
गुरु पूरा सिष सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सत्त सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥२१॥
जा के हिरदे गुरु नहीं, सिष साखा की भूख।
ते नर ऐसा सूखसो, ज्यौं बन दाभ्का रूख ॥२२॥
सिष साखा बहुते किये, सतगुरु किया न मित्त।
चाले थे सतलोक को, बीचहि अटका चित्त ॥२३॥

गुरुमुख का अंग।

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग।
कहै कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥१॥
गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान।
और कबीर नहिं देखता, है वाही को ध्यान ॥२॥
गुरुमुख गुरु आज्ञा चलै, छोड़ि देइ सब काम।
कहै कबीर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३॥
उलटे सुलटे बचन कै, सिष्य न मानै दुक्ख।
कहै कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुक्ख ॥४॥

(१) खलियान। (२) प्रदान = बख़्शिश। (३) संसारी।

मनमुख का अंग।

सेवक-मुखी कहावई, सेवा मैं दृढ़ नाहिं।
कहै कबीर सो सेवका, लख चैारासी जाहिं ॥१॥
फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥२॥
सतगुरु सब्द उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥३॥
गुरू बिचारा क्या करै, जो सिष्ये माहीं चूक।
भावै ज्यौं परमोधिये, बाँस बजाई फूँक ॥४॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सैांपते, क्या लागैगा मोर ॥५॥
तेरा तुझ मैं कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझ को सैांपते, जी धड़कैगा तोर ॥६॥

॥ चैापाई ॥

गुरु से करै कपट चतुराई। सो हंसा भव भरमै आई ॥७॥
जो सिष गुरु की निंदा करई। सूकर स्वान गर्भ मैं परई ॥८॥

निगुरा का अंग।

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निरफल गया, बूझैा बेद पुरान ॥१॥
जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार।
नगर नायका सत करै, जरै कैान की लार[1] ॥२॥

---

(१) शहर की कसबी अगर सती होने का ढोंग रचै तो किस पुरुष के साथ जलै।

गर्भे जोगेसर गुरु मिला, लागा हरि की सेव[१]।
कहै कबीर बैकुंठ से, फेर दिया सुकदेव ॥३॥
जनक बिदेही गुरु किया, लागा हरि की सेव।
कहै कबीर बैकुंठ में, उलटि मिला सुकदेव ॥४॥
पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव।
निगुरा तो ऊभट[२] चलै, जब तब करै कुदाव[३] ॥५॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरु मुख बात।
होइ जगत में कूकरी, फिरै उघारे गात ॥६॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, नारि कूकरी होय।
गली गली भूँसत फिरै, टूक न डारै कोय ॥७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा बिरखभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥८॥
चौँसठ दीवा[४] जोइ के, चौदह चंदा[५] माहिँ।
तेहि घर किस का चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहिँ ॥९॥
निसि अँधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय हूँ, तहू सुद्दष्टिहि मंद ॥१०॥
गगन मँडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैगा गुरु पूर ॥११॥

---

(१) कहते हैं कि सुकदेव जी माता के गर्भ ही में कई बरस तक रह कर भगवत भजन करते रहे पर स्वर्ग में जगह पाने योग्य नहीँ समझे गये जब तक कि राजा जनक को गुरू धारन नहीँ किया। (२) कुराह। (३) कूद फाँद। (४) चौँसठ जोगिनी की कला। (५) चौदह विद्या का प्रकाश।

गुरु शिष्य खोज का अंग ।

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस ।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस ॥१॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से रहिये लाग ।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥२॥
ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय ।
पाँचो लरिका पटकि के, रहै नाम लौ लाय ॥३॥
हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ ।
वाहू का घर फूँक दूँ, जो चलै हमारे साथ ॥४॥
ऐसा कोई ना मिला, समुझै सैन सुजान ।
ढोल बाजता ना सुनै, सुरति-बिहूना कान ॥५॥
ऐसा कोई ना मिला, हम को दे पहिचान ।
अपना करि किरपा करै, ले उतार मैदान ॥६॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से कहौं दुख रोय ।
जा से कहिये भेद को, सो फिर बैरी होय ॥७॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय ।
कवन मँडल में पुरुष है, जाहि रटौं लौ लाय ॥८॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं ।
ऐसा कोई ना मिला, पकरि छुड़ावै बाहिं ॥९॥
जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं, तैसा मिला न कोय ।
ततबेता तिरगुन रहित, निरगुन से रत होय ॥१०॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय ।
घायल को घायल मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥११॥

प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, बिष से अमृत होय ॥१२॥
सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछू न लेय ॥१३॥
सर्पहिं दूध पियाइये, सोई बिष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही बिष खाय[1], ॥१४॥
नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोइ तखत तरे का ना मिला, जा से पूछौं भेद ॥१५॥
तखत तरे की सो कहै, तखत तरे का होय।
मंझ महल की को कहै, बाँका परदा सोय ॥१६॥
मंझ महल की गुरु कहै, देखा सब घर बार।
कूँची दीन्ही हाथ मैं, परदा दिया उघार ॥१७॥
बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साँइयाँ, आदि अंत का यार ॥१८॥
पुहुपन केरी बास ज्यौं, ब्यापि रहा सब ठाहिं।
बाहर कबहुँ न पाइये, पावै संतों माहिं ॥१९॥
बिरछा पूछै बीज को, बीज बृच्छ के माहिं।
जीव जो ढूँढ़ै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाहिं ॥२०॥
डाल जो ढूँढ़ै मूल को, मूल डाल के माहिं।
आप आप को सब चलै, कोइ मिलै मूल से नाहिं ॥२१॥
मूल कबीरा गहि चढ़े, फल खाये भरि पेट।
चौरासी की गम्म नहीं, ज्यौं जाने त्यौं लेट ॥२२॥
आदि हती सब आप मैं, सकल हती ता माहिं।
ज्यों तरवर के बीज मैं, डाल पात फल छाँहिं ॥२३॥

---

(१) अपने शिष्य के विकारों को खींच ले।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२४॥
हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय।
बुंद समानी समुँद मैं, सो कित हेरी जाय ॥२५॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुंद मैं, सो कित हेरा जाय ॥२६॥
बुंद समानी समुँद मैं, यह जानै सब कोय।
समुँद समाना बुंद मैं, बूझै बिरला कोय ॥२७॥
एक समाना सकल मैं, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ मैं, तहाँ दूसरा नाहिं ॥२८॥
कबीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेहि।
जेहि जेहि औषध गुरु मिलै, सो सो औषधि देहि ॥२९॥

सेवक और दास का अंग।

सेवक सेवा मैं रहै, सेवक कहिये सोय।
कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय ॥१॥
सेवक सेवा मैं रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय ॥२॥
सेवक स्वामी एक मति, जो मति मैं मति मिलि जाय।
चतुराई रीझैं नहीं, रीझै मन के भाय ॥३॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥४॥
कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होय ॥५॥

सेवक सेवा मैं रहै, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥६॥
निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबँध होय।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥७॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छाड़ै पास ॥८॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल।
पलक एक मैं प्रगट ह्वै, छिन मैं करै निहाल ॥९॥
दात धनी याचै[1] नहीं, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर ता सेवकहिं, काल करै नहिं घात ॥१०॥
सब कछु गुरु के पास है, पइये अपने भाग।
सेवक मन से प्यार है, निसु दिन चरनन लाग ॥११॥
सेवक कुत्ता गुरू का, मोतिया वा का नाँव।
डोरी लागी प्रेम की, जित खैंचै तित जाव ॥१२॥
दुर दुर करैं तो बाहिरे, तू तू करैं तो जाय।
ज्यों गुरु राखैं त्यों रहै, जो देवैं सो खाय ॥१३॥
दासातन हिरदे नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥१४॥
भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दै मोहिं।
और कोई याचौं नहीं, निसु दिन याचौं तोहिं ॥१५॥
धरती अम्बर[2] जायँगे, बिनसैंगे कैलास।
एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास ॥१६॥
एकम एका होन दे, बिनसन दे कैलास।
धरती अम्बर जान दे, मो मैं मेरे दास ॥१७॥

---

(१) माँगै। (२) आकाश।

यह मन ता को दीजिये, जो साचा सेवक होय ।
सिर ऊपर आरा सहै, लहू न दूजा जोय ॥१८॥
काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार ।
बलिहारी वा दास की, पैठि के निकसनहार ॥१९॥
काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट ।
बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥२०॥
कबिरा पाँचो बलधिया[1], ऊजर ऊजर जाहिँ ।
बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै वाहिँ ॥२१॥
कबीर गुरु के भावते, दूरहि तेँ दीसंत ।
तन छीना मन अनमना[2], जग तेँ रूठि फिरंत ॥२२॥
अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय ।
ज्यौँ जल टूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥२३॥
राता राता सब कहै, अनराता कहै न कोय ।
राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
जा घट मेँ साईँ बसै, सो क्यौँ छाना होय ।
जतन जतन करि दाबिये, तौ उँजियारा सोय ॥२५॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय ।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय ॥२६॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥२७॥

सूरमा का अंग ।

गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने चोट ।
कायर भाजै कछु नहीँ, सूरा भाजै खोट ॥१॥

---

(१) बैल । (२) वकल ।

गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने घाव ।
खेत पुकारै सूरमा, अब लड़ने का दाँव ॥२॥
गगन दमामा बाजिया, हनहनिया[१] के कान ।
सूरा धरै बधावना, कायर तजै परान ॥३॥
सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाड़ै खेत ॥४॥
सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह ।
जूझै सब बँद खोलि कै, छाड़ै तन का मोह ॥५॥
खेत न छाड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिँ ।
आसा जीवन मरन की, मन मैं आनै नाहिँ ॥६॥
अब तो जूझै ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर ।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजै सूर ॥७॥
घायल तो घूमत फिरै, राखा रहै न ओट ।
जतन किये नहिँ बाहुरै[२], लगी मरम की चोट ॥८॥
घायल की गति और है, औरन की गति और ।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर ॥९॥
सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस ।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥१०॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार ।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥११॥
चित चेतन ताजी[३] करै, लव की करै लगाम ।
सबद गुरू का ताजना[४], पहुँचै संत सुठाम ॥१२॥
कबीर तुरी पलानिये, चाबुक लीजे हाथ ।
दिवस थके साईं मिलै, पीछे पड़सी रात ॥१३॥

---

(१) लड़ने वाला । (२) मुड़ै । (३) घोड़ा । (४) ताज़ियाना=कोड़ा ।

हरि घोड़ा ब्रम्हा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान।
चंद सूर दोय पायड़ा[1], चढ़सी संत सुजान ॥१४॥
साध सती औ सूरमा, इनकी बात अगाध।
आसा छोड़ैं देँह की, तिन मैं अधिका साध ॥१५॥
साध सती औ सूरमा, इन पटतर कोइ नाहिँ।
अगम पंथ को पग धरैं, डिगैं तो ठाहर[2] नाहिँ ॥१६॥
साध सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरैं पीठ।
तीनौं निकसि जो बाहुरैं, ता को मुँह मति दीठ ॥१७॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिँ अनंत ॥१८॥
साध सती औ सूरमा, दई न मोड़ै मुँह।
ये तीनौं भागे बुरे, साहिब जा की सूँह[3] ॥१९॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥२०॥
धड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यौं ढेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥२१॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥२२॥
जूझैं गे तब कहैं गे, अब कछु कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥२३॥
सूरा के मैदान में, कायर फंदा[4] आय।
ना भाजे ना लड़ि सकै, मनहीं मन पछिताय ॥२४॥
कायर बहुत पमावहीं[5], बड़क[6] न बोलै सूर।
सारी खलक योँ जानहीं, केहि के मोहड़े नूर ॥२५॥

---

(१) रकाब। (२) ठिकाना। (३) सन्मुख। (४) फँस पड़ा। (५) डींग मारता है। (६) बढ़कर।

सूरा थोड़ा ही भला, सत करि रोपै पग्ग[1]।
घना मिला केहि काम का, सावन का सा बग्ग[2] ॥२६॥

रनहिं धसा जो ऊबरा, आगे गिरह निवास।
घरै बधावा बाजिया, और न दूजी आस ॥२७॥

साईं सँति[3] न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥२८॥

अप्प स्वारथी मेदिना[4], भक्ति स्वारथी दास।
कबीर नाम सुवारथी, छाड़ी तन की आस ॥२९॥

ज्यौं ज्यौं गुरु गुन[5] साँभलै[6], त्यौं त्यौं लागै तीर।
लागे से भागै नहीं, सोई साध सुधीर ॥३०॥

ऊँचा तरवर गगन को, फल निरमल अति दूर।
अनेक सयाने पचि गये, पंथहिं मूए झूर[7] ॥३१॥

दूर भया तो क्या भया, सतगुरु मेला सोय[8]।
सिर सौंपै उन चरन में, कारज सिद्धी होय ॥३२॥

जेता तारा रैन का, एता वैरी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कंगुरे[9], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥३३॥

चौपड़ माँड़ी चौहटे, अरध उरध बाजार।
सतगुरु सेती खेलता, कबहुँ न आवै हार ॥३४॥

---

(१) पैर। (२) बगीचा जो सावन के महीने यानी बरसात में घना हो जाता है और फिर जैसे का तैसा। (३) मुफ़्त। (४) पृथ्वी पानी को चाहती है। (५) धनुष की डोर या रोदा। (६) खिँचे। (७) रास्ते ही म ख़ाली अटक रहे। (८) जिसको पूरे सतगुरु मिले हैं। (९) अगले समय में शत्रु को सूली पर चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे और कंगूरे पर लगा देते थे।

जो हारौं तौ सेव गुरु, जो जीतौं तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता, जो सिर जाव तो जाव ॥३५॥

खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहिब जोग ॥३६॥

अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥३७॥

नेह निभाये ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥३८॥

भाव भालका[1] सुरति सर[2], धरि धीरज कर[3] तान।
मन की मूठ जहाँ मँड़ी, चोट तहाँ हीं जान ॥३९॥

मेरे संसय कछु नहीं, लागा गुरु से हेत।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े[4] माँड़ा खेत ॥४०॥

कायर भया न छूटि हौ, कछु सूरता समाय।
भरम भालका दूर करि, सुमिरन सील मँजाय ॥४१॥

कोने परा ना छूटि हौ, सुनु रे जीव अबूझ।
कबिरा मँड़ मैदान मैं, करि इंद्रिन से जूझ ॥४२॥

बाँका गढ़ बाँका मता, बाँको गढ़ की पौल[5]।
काढ़ि कबीरा नीकला, जम सिर घाली रौल[6] ॥४३॥

बाँकी तेग[7] कबीर की, अनी पड़ै दुइ टूक।
मारा मीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥४४॥

कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचो स्वान[8]।
ज्ञान कुहाड़ा[9] कर्म बन, काटि किया मैदान ॥४५॥

---

(१) गाँसी। (२) तीर। (३) हाथ। (४) मैदान मैं। (५) रास्ता। (६) खलबली। (७) तलवार। (८) पाँचो कुत्ते। (९) कुल्हाड़ा।

कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम[1]।
सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम[2] ॥४६॥
कबीर पाँचो मारिये, जा मारे सुख होय।
भला भली सब कोइ कहै, बुरा न कहसी कोय ॥४७॥
ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय।
कह कबीर सोइ ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥४८॥

सूरा सार सँभालिया, पहिरा सहज सँजोग।
ज्ञान गजंदा[3] चढ़ि चला, खेत पड़न का जोग[4] ॥४९॥
सीतलता संजोय लै, सूर चढ़े संग्राम।
अब की भाज न सरत है, सिर साहिब के काम ॥५०॥

सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै बीर।
माँड़ि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥५१॥
तीर तुपक[5] से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥५२॥
कबीर सोई सूरमा, मन से माँड़ै जूझ।
पाँचो इंद्री पकरि कै, दूरि करै सब दूझ ॥५३॥
कबीर सोई सूरमा, जा के पाँचो हाथ।
जा के पाँचो बस नहीं, तेहि गुरु संग न साथ ॥५४॥
कबीर रन मैं पैठि के, पीछे रहै न सूर।
साईं से सनमुख भया, रहसी सदा हजूर ॥५५॥
जाय पूछ वा घायलै, पीर दिवस निसि जागि।
बाहनहारा जानिहै, कै जानै जेहिं लागि ॥५६॥

---

(१) दुशमन—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार। (२) मुहिम या लड़ाई। (३) हाथी। (४) शुभ घड़ी। (५) बंदूक़।

कबीर हीरा बनिजिया, महँगे मोल अपार।
हाड़ गला माटी मिली, सिर साटे ब्योहार ॥५७॥
आगे भली न होयगी, कहाँ धरोगे पाँव।
सिर सौंपो सीधे लड़ो, काहे करो कुदाव ॥५८॥
सूर सिलाह[1] न पहिरई, जब रन बाजा तूर।
माथा काटै धड़ लड़ै, तब जानीजे सूर ॥५९॥
जोग से तो जौहर[2] भला, घड़ी एक का काम।
आठ पहर का जूझना, बिन खाँड़े संग्राम ॥६०॥
तीर तुपक बरछी बहै, बिगसि जायगा चाम।
सूरा के मैदान मैं, कायर का क्या काम ॥६१॥
सूरा के मैदान मैं, कायर का क्या काम।
सूरा से सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥६२॥
बिना पाँव का पंथ है, संझि सहर अस्थान।
बिकट बाट औघट घना, कोइ पहुँचै संत सुजान ॥६३॥
पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।
दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर ॥६४॥
रन धसिया ते ऊबरा, पाया गेह निवास।
घरे बधावा बाजिया, औ जीवन की आस ॥६५॥
जब लगि धड़ पर सीस है, सूर कहावै कोय।
माथा टूटै धड़ लड़ै, कमँद[3] कहावै सोय ॥६६॥
सूरा तो साचे मते, सहै जो सन्मुख धार।
कायर अनी चुभाइ कै, पाछे झँखै अपार ॥६७॥

---

(१) लड़ाई के हथियार; ढाल तरवार। (२) आत्म-घात, ख़ुद-कुशी।
(३) एक राक्षस जिस का सिर गदा की मार से धड़ के भीतर धस गया था लेकिन फिर भी वह बराबर लड़ता था, बिना सीस का जोधा।

भाजि कहाँ लौं जाइये, भय भारी घर दूर।
बहुरि कबीरा खेत रहु, दल आया भर पूर ॥६८॥
सार बहै लोहा झरै, टूटै जिरह[1] जँजीर।
अविनासी की फौज मैं, माँड़ा दास कबीर ॥६९॥
ज्ञान कमाना[2] लौ गुना[3], तन तरकस मन तीर।
झलका बहता सार का, मारै हद्दफ[4] कबीर ॥७०॥
कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान।
केते जोधा पचि गये, कोइ खैंचै संत सुजान ॥७१॥
घटी बढ़ी जानै नहीं, मन मैं राखै जीत।
गाड़र[5] लड़ै गजंद सा, देखो उलटी रीत ॥७२॥
धुजा फरक्कै सुन्न मैं, बाजै अनहद तूर।
तकिया है मैदान मैं, पहुँचैगा कोइ सूर ॥७३॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत बहुत रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, माँगै सीस कलाल ॥७४॥
कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहिं।
पटा लिखाया गुरू पै, खरा खजीना खाहि ॥७५॥
कायर सैरी[6] ताकवै, सूरा माँड़ै[7] पाँव।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥७६॥

पतिब्रता का अंग।

पतिबरता को सुख घना, जा के पति है एक।
मन मैली बिभिचारिनी, ता के खसम अनेक ॥१॥

---

(१) बकतर। (२) धनुष। (३) डोरी। (४) निशाना। (५) भेड़। (६) रास्ता भागने का। (७) जमावे।

पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिब्रता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥२॥
पतिबरता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास ना खाय ॥३॥
नैनाँ अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देवँ ॥४॥
कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस ॥५॥
पपिहा का पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ ना बोरी चंच[१] ॥६॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ ना होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥७॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोइ पुरबला भाग।
सोती जागी सुंदरी, साइँ दिया सुहाग ॥८॥
पतिबरता के एक तू, और न दूजा कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोई सुहागिन होय ॥९॥
इक चित होय न पिय मिलै, पतिब्रत ना आवै।
चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कैसे पावै ॥१०॥
सुंदर तो साइ भजै, तजै आन की आस।
ताहि ना कबहूँ परिहरै, पलक ना छाड़ै पास ॥११॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ से खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल ॥१२॥
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ माहिं ॥१३॥

---
(१) चोंच।

दाता के तो धन घना, सूरा के सिर बीस ।
पतिबरता के तन सही, पत राखै जगदीस ॥१४॥
पतिबरता मैली भली, गले काँच की पोत ।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससि की जोत॥१५॥
पतिबरता पति को भजै, पति पर धरि बिस्वास ।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥१६॥
पतिबरता बिभिचारिनी, एक मँदिर में बास ।
वह रँग-राती पीव के, यह घर घर फिरै उदास॥१७
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत ।
पतिब्रता पति को भजै, मुख से नाम न लेत ॥१८॥
सुरत समानी नाम में, नाम किया परकास ।
पतिबरता पति को मिली, पलक ना छाड़ै पास ॥१९॥
साईं मोर सुलच्छना, मैं पतिबरता नार ।
दो दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥२०॥
जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने का होय ।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय ॥२१॥
जो यह एकै जानिया, तौ जानौ सब जान ;
जो यह एक न जानिया, तौ सबही जान अजान ॥२२
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल ।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥२३॥
प्रीति अड़ी है तुज्झ से, बहु गुनियाला कंत ।
जो हँस बोलैं और से, नील रँगाओं दंत ॥२४॥
कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय ।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥२५॥

आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद को ठौर न होय ॥२६॥
मेरा साइँ एक तू, दूजा और न कोय।
दूजा साइँ तौ करौं, जो कुल दूजो होय ॥२७॥
पतिबरता तब जानिये, रतिउ[1] न उघरै नैन।
अंतरगत सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन ॥२८॥
भोरै भूली खसम को, कबहुँ न किया बिचार।
सतगुरु आन बताइया, पूरबला भरतार ॥२९॥
जो गावै सो गावना, जो जोड़ै सो जोड़।
पतिबरता साधू जना, यहि कलि में हैं थोड़ ॥३०॥
पतिबरता ऐसे रहै, जैसे चोली पान[2]।
तब सुख देखै पीव का, चित्त न आवै आन ॥३१॥
मैं अबला पिउ पिउ करौं, निरगुन मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरू बिनु, और न देखौं जीव ॥३२॥

सती का अंग।

अब तो ऐसी ह्वै परी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाड़ि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥१॥
ढोल दमामा बाजिया, सबद सुना सब कोय।
जो सर[3] देखि सती भगै, दो कुल हाँसी होय ॥२॥
सती जरन को नीकसी, चित्त धरि एक बिबेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥३॥

---

(१) रत्ती भर भी। (२) चोली की दोनों टुक्कियों पर पान बना देते हैं। (३) अगिन।

सती जरन को नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह ।
सबद सुनत जिय नीकसा, भूलि गई निज देह ॥४॥
सती बिचारी सत किया, काँटौं सेज बिछाय ।
लै सूती पिय आपना, चहुँ दिस अगिनि लगाय॥५॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़ ।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भाँड़ ॥६॥
हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यौं न जराय ।
मूए पीछे सत करै, जीवत क्यौं न कराय ॥७॥

बिभिचारिन का अंग ।

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय ।
जार सदा मन में बसै, खसम खुसी क्यौं होय ॥१॥
सेज बिछावै सुन्दरी, अंतर परदा होय ।
तन सौंपै मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥२॥
कबीर मन दीया नहीं, तन करि डारा जेर ।
अंतरजामी लखि गया, बात कहन का फेर ॥३॥
नवसत[1] साजे सुन्दरी, तन मन रही सँजोय ।
पिय के मन मानै नहीं, (तो) बिडँब[2] किये क्या होय॥४॥
मुख से नाम रटा करै, निसु दिन साधन संग ।
कहु धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ॥५॥
मन दीया कहिं औरही, तन साधन के संग ।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥६॥

---

(१) नौ और सात=सोलह (सिंगार) । (२) बाहरी सजाव ।

रात जगावै राँड़िया, गावै बिषया गीत।
मारै लौंदा लापसी, गुरू न लावै चीत ॥७॥
बिभिचारिन बिभिचार मैं, आठ पहर हुसियार।
कह कबीर पतिव्रत बिन, क्यौं रीझै भरतार ॥८॥
कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै बिभिचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, परम पुरुष भरतार ॥९॥
बिभिचारिन के बस नहीं, अपनो तन मन सोय।
कह कबीर पतिबर्त बिन, नारी गई बिगोय ॥१०॥
कबीर या जग आइ कै, कीया बहुतक मिंत[१]।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सोवै निःचिंत ॥११॥

भक्ति का अंग।

कबीर गुरु की भक्ति करु, तजि बिषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइहै, मानुष जन्म की मौज ॥१॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आइ पड़ै जो चोल[२]।
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल ॥२॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यौं खाँड़े की धार।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्यौहार ॥३॥
भक्ति दुहेली[३] गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथ से, सो लेसी सतनाम ॥४॥
भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार।
जो डोलै तो कटि परै, निःचल उतरै पार ॥५॥

---

(१) मित्र। (२) चाहे जैसे नीच ऊँच चोले या योनि मैं जीव आ पड़े। (३) कठिन।

कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास ॥६॥
हरष बड़ाई देख करि, भक्ति करै संसार ।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरै गँवार ॥७॥
भक्ति निसेनी[1] मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥८॥
भक्ति बिना नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय ।
सबद सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय ॥९॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नात तोड़ हरि को भजै, भक्त कहावै सोय ॥१०॥
भक्ति प्रान तें होत है, मन दै कीजै भाव ।
परमारथ परतीत में, यह तन जाव तो जाव ॥११॥
भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥१२॥
जहाँ भक्ति तहँ भेष नहिं, बर्नास्रम तहँ नाहिं ।
नाम भक्ति जो प्रेम से, सो दुर्लभ जग माहिं ॥१३॥
भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय ।
भक्ति नियारी भेष तें, यह जानै सब कोय ॥१४॥
भक्ति पदारथ जब मिलै, जब गुरु होय सहाय ।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥१५॥
सब से कहौं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख ।
भक्ति ठानि सबदै गहै, बहुरि न काछै भेख ॥१६॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग ।
बिपति पड़े यों छाड़सी, ज्यों कँचुली भुवंग ॥१७॥

---
(१) सीढ़ी ।

टोटे मैं भक्ती करै, ता का नाम सपूत।
माया धारी मसखरे, केते ही गये ऊत ॥१८॥
देखा देखी पकड़सी, गई छिनक मैं छूट।
कोइ बिरला जन बाहुरे, सतगुरु स्वामी मूठ ॥१९॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा, हिरदा नाहिँ जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥२०॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उदर भरन के कारने, जनम गँवायो सार ॥२१॥
जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझै नहीं, पेट भरन से काज ॥२२॥
खेत बिगारयो खरतुआ[1], सभा बिगारी कूर[2]।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यौं केसर मैं धूर ॥२३॥
तिमिर गया रबि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुगति गई इक लोभ तैं, भक्ति गई अभिमान ॥२४॥
भक्ति भाव भादौं नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२५॥
कामी क्रोधी लालची, इन तैं भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥२६॥
भक्ति दुवारा साकरा, राई दसवैं भाव[3]।
मन ऐरावत[4] ह्वै रहा, कैसे होय समाव ॥२७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार।
धूआँ का सा धौलहर[5], जात न लागै बार ॥२८॥

---

(१) एक निकम्मी घास जो आस पास के अनाज की डाभियों को जला देती है। (२) दुष्ट। (३) राई के दसवें भाग जैसा झीना दरवाज़ा भक्ति का है। (४) इंद्र का हाथी। (५) धरहरा।

निरपच्छी को भक्ति है, निरमोही को ज्ञान।
निरदुन्दी को मुक्ति है, निरलोभी निर्बान ॥२९॥
भक्ति सोई जो भाव से, इकसम चित को राखि।
साच सील से खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि[1] ॥३०॥
सत्त नाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय ॥३१॥
जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ॥३२॥
कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥३३॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामो निज देव ॥३४॥
भक्ति पियारी नाम की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन[2] जरि गया, बहुरि ले आवै माँगि ॥३५॥
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत का संत ॥३६॥
जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलैं, आवागवन नसाय ॥३७॥
भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय ॥३८॥

लव का अंग।

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिं समाय ॥१॥

---

(१) डाल कर। (२) शहर।

जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लव लागी कल ना परै, अब बोलत न हदीस ॥२॥

काया कमँडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही, तिरषा-वंत कबीर ॥३॥

मन उलटा दरिया मिला, लागा मलि मलि न्हान।
थाहत थाह न आवई, सो पूरा रहमान ॥४॥

गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट ॥५॥

जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिँ जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ कबीर लव लाय ॥६॥

लै पावौ तौ लै रहौ, लैन कहूँ नहिँ जाँव।
लै बूड़े सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव ॥७॥

लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि देँह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह ॥८॥

जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपनी दँह की को गिनै, तारै पुरुष करोर ॥९॥

लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जौ वार पार होइ जाय ॥१०॥

लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक ॥११॥

लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह ॥१२॥

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोँच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१३॥

चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कह कबीर छाड़ै नहीं, ऐसी बस्तु लगार[1] ॥१४॥
जो तू पिय की प्यारिनी, अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि कै, चरनौं चित दे री ॥१५॥
और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहौं, मन राता गुरु रंग ॥१६॥
ग्रंथ माहिं पाया अरथ, अरथे माहीं मूल।
लव लागी निरमल भया, मिटि गया संसय सूल ॥१७॥
सोवौं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं।
लोयन[2] राता सुधि हरो, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥१८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय॥१९॥

बिरह का अंग।

बिरहिनि देइ सँदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मच्छी क्यौं जिये, पानी मैं का जीव ॥१॥
बिरह तेज तन मैं तपै, अंग सबै अकुलाय।
घट सूना जिव पीव मैं, मौत ढूँढ़ि फिर जाय ॥२॥
बिरह जलंती देखि कर, साईं आये धाय।
प्रेम बूँद से छिरकि के, जलती लई बुझाय ॥३॥
अँखियन तो झाँईं परी, पंथ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार ॥४॥
नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास।
पपिहा ज्यौं पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस ॥५॥

---

(१) लगन या प्रीत। (२) आँख।

बिरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर।
सुरत-सनेही ना मिलै, तब लगि मिटै न पीर ॥६॥
बिरहिन ऊभी पंथ सिर, पंथिनि पूछै धाय[1]।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय ॥७॥
बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम ॥८॥
बिरह भुवंगम[2] तन डसा, मंत्र न लागै कोय।
नाम बियोगी ना जियै, जिये तो बाउर[3] होय ॥९॥
बिरह भुवंगम पैठि कै, किया कलेजे घाव।
बिरहिन अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१०॥
बिरहा पीव पठाइया, कहि साधू परमोधि[4]।
जा घट तालाबेलिया[5], ता को लावो सोधि ॥११॥
कबीर सुंदरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान।
बेगि मिलो तुम आइ के, नहीं तो तजिहौं प्रान ॥१२॥
कै बिरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मो पै सहा न जाय ॥१३॥
बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१४॥
येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव ॥१५॥
कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥१६॥

---

(१) बिरहिन रास्ते मे खड़ी होकर बटोही से पूछती है। (२) साँप। (३) बौड़हा। (४) शांति देना। (५) व्याकुलता।

हँसौं तो दुख ना बीसरै, रोऔं बल घटि जाय ।
मनहीं माहीं बिसुरना, ज्यौं घुन काठहिं खाय ॥१७॥
कीड़े काठ जो खाइया, खात किनहु नहिं दीठ ।
छाल उपारि[1] जो देखिया, भीतर जमिया चोठ[2] ॥१८॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिनि होय ॥१९
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥२०॥
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्है कोय ।
तम्बोली का पान ज्यौं, दिन दिन पीला होय ॥२१॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं[3] तुज्झ ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी बेदन मुज्झ ॥२२॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग ।
साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥२३॥
बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान ।
हाड़ मास सब खात है, जीवत करै मसान ॥२४॥
अंदेसो नहिं भागसी, संदेसो कहि आय ।
कै आवै पिय आपही, कै मोहिं पास बुलाय ॥२५॥
आय सकौं नहिं तोहिं पै, सकौं न तुज्झ बुलाय ।
जियरा योंं लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥२६॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया, जनि जाने दुखदाय ।
नाम सनेही कारने, रो रो रात बिताय ॥२७॥
जोई आँसू सजन जन, सोई लोक बहाहि ।
जो लोचन लोहू चुवै, तौ जानौं हेतु हियाहि ॥२८॥

---

(१) उखाड़ कर । (२) लकड़ी का चूरा या बुरादा । (३) चाहैं ।

हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीड़ सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग[१] ॥२९॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुँधुआय।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥३०॥
तन मन जोबन यों जला, बिरह अगिनि से लागि।
मिर्तक पीड़ा जानही, जानैगी क्या आगि ॥३१॥
फाड़ि पटोलो[२] धुज करौं, कामलड़ी[३] फहराय।
जेहिं जेहिं भेषे पिय मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ॥३२॥
परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पायौं नहीं, जा तें जीवन होय ॥३३॥
बिरह जलंती मैं फिरौं, मो बिरहिनि को दुक्ख।
छाँह न बैठौं डरपती, मत जलि उट्ठै रुक्ख[४] ॥३४॥
चूड़ी पटकौं पलँग से, चोली लाऔं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूनी गल लागि ॥३५॥
अंबर[५] कुज्जा[६] करि लिया, गरजि भरे सब ताल।
जिन तें प्रीतम बीछुरा, तिन का कौन हवाल ॥३६॥
कागा करँक[७] ढँढोलिया[८], मुट्ठी इक लिया हाड़।
जा पिंजर बिरहा बसै, माँस कहाँ तें काढ़ ॥३७॥
रक्त माँस सब भखि गया, नेक न कीन्हो कानि[९]।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड़ चबान ॥३८॥
बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बिजोग।
दुख सिरहाने पायतन[१०], कौन बना संजोग ॥३९॥

---

(१) उत्साह से। (२) दुपट्टा। (३) कमरी यानी छोटा कम्बल। (४) पेड़। (५) आकाश। (६) मिट्टी का भाँडा। (७) हड्डी की ठठरी। (८) ढूँढ़ा। (९) लिहाज़, मुरौवत। (१०) पैताने।

बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढँढोरै छार[1]।
मत कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजी बार ॥४०॥
तन मन जोबन जारि के, भस्म करी है देँह।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहुँ ढँढोरै खेह[1] ॥४१॥
अंक भरी भरि भेँटिये, मन नहिँ बाँधै धीर।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर ॥४२॥
जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवै नीँदड़ी, अंग न जामै मासु ॥४३॥
नाम बियोगी बिकल तन, कर छूओ मत कोय।
छूवत ही मरि जाइगो, तालाबेली[2] होय ॥४४॥
जो जन भींजे नाम रस, बिगसित कबहुँ न सुक्ख।
अनुभव भावन दरसही, ते नर सुक्ख न दुक्ख[3] ॥४५॥
कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥४६॥
दीपक पावक आनिया, तेल भी लाया संग।
तीनौँ मिलि करि जोइया[4], उड़ि उड़ि मिलै पतंग ॥४७॥
हिरदे भीतर दव[5] बलै, धुवाँ न परगट होय।
जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥४८॥
झाल उठी झोली जली, खप्पर फूटम फूट।
हंसा जोगी चलि गया, आसन रही भभूत ॥४९॥
आगे आगे दव बलै, पाछे हरियर होय[6]।
बलिहारी वा बृच्छ[7] की, जड़ काटे फल जोय ॥५०॥

---

(१) राख को ढँढोलती है। (२) तड़प, बेकली। (३) जो भक्त नाम रस मेँ पगे हैँ और जिन का अनुभव जागा है उनको बाहरी हर्ष नहीँ होता और दुख सुख के परे हो जाते हैँ। (४) संयोया। (५) आग। (६) झाड़ी को जला देने से थोड़े दिन मेँ वह ख़ूब हरी उगती है। (७) चाह।

कबीर सुपने रैन के, पड़ा कलेजे छेक।
जब सोवोँ तब दुइ जना, जब जागोँ तब एक ॥५१॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै[1] नहीं, धूवाँ ह्वै ह्वै जाय ॥५२॥
बिरहा मो से योँ कहै, गाढ़ा[2] पकड़ो मोहिँ।
चरन कमल की मौज मेँ, ले पहुँचाऔँ तोहिँ ॥५३॥
सबही तरु तर जाइ के, सब फल लीन्हो चीख।
फिरि फिरि मँगत कबीर है, दरसनही की भीख ॥५४॥
बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिँ आय।
नहिँ मारै छाड़ै नहीं, तलफ तलफ जिय जाय ॥५५
पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल बिरह सताय।
रैन दिवस मोहिँ कल नहीं, सिसक सिसक जिय जाय॥५६
जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
देँही से उद्यम करैँ, सुमिरन करैँ बिदेह ॥५७॥
साइँ सेवत जल गई, मास न रहिया देँह।
साइँ जब लगि सेइहोँ, यह तन होय न खेह ॥५८॥
निस दिन दाझै बिरहिनी, अंतरगत की लाय[3]।
दास कबीरा क्योँ बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥५९॥
पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥६०॥
चोट सतावै बिरह की, सब तन जरजर होय।
मारनहारा जानही, कै जेहि लागी सोय ॥६१॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुलतान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥६२॥

---

(१) चोट लगाना। (२) मज़बूत। (३) आग।

देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय ।
बिरहिनि पिय पावै नहीं, बेकल जिय घबराय ॥६३॥

गलौं तुम्हारे नाम पर, ज्यों आटे में नोन ।
ऐसा बिरहा मेल करि, नित दुख पावै कौन ॥६४॥

सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहैंगे बाँहि ।
अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि ॥६५॥

जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिं ।
ज्यों दरपन की सुंदरी, किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥६६॥

तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग ।
ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलंती आग ॥६७॥

चकई बिछुरी रैन की, आय मिली परभात ।
सतगुरु से जो बीछुरे, मिलैं दिवस नहिं रात ॥६८॥

बासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सुपने माहिं ।
सतगुरु से जो बीछुरे, तिन को धूप न छाँहि ॥६९॥

बिरहिनि उठि उठि भुइँ परै, दरसन कारन राम ।
मूए पीछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ॥७०॥

मूए पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥७१॥

यह तन जारि भसम करौं, धूवाँ होय सुरंग ।
कबहुक गुरु दाया करैं, बरसि बुझावैं अंग ॥७२॥

यह तन जारि के मसि[1] करौं, लिखौं गुरू का नाँव ।
करौं लेखनी[2] करम की, लिखि लिखि गुरू पठाँव ॥७३॥

(१) सियाही । (२) क़लम ।

बिरहा पूत लोहार का, धँवै[1] हमारी देह ।
कोइला ह्वै नहिं छूटिहै, जब लगि होय न खेह ॥७४॥
बिरहिनि थी तौ क्यों रही, जरी न पिउ के साथ ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ ॥७५॥
लकरी जरि कोइला भई, मो तन अजहूँ आगि ।
बिरह की ओदी लाकरी, सिलगि सिलगि उठि जागि॥७६
बिरह बिथा बैराग की, कही न काहू जाय ।
गूँगा सुपना देखिया, समझि समझि पछिताय७७
सब रग ताँत रबाब[2] तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त ॥७८॥
तूँ मति जानै बीसरूँ, प्रीति घटै मम चित्त ।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त॥७९॥
मो बिरहिनि का पिउ मुआ, दाग न दीया जाय ।
मासहिं गलि गलि भुइँ परा, करँक रही लपटाय ॥८०॥
भली भई जो पिउ मुआ, नित उठि करता रार ।
छूटी गल की फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥८१॥
जीव बिलंबा पीव से, अलख लख्यो नहिं जाय ।
साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय ॥८२॥
जीव बिलंबा पीव से, पिय जो लिया मिलाय ।
लेख समान[3] अलेख मैं, अब कछु कहा न जाय ॥८३॥
आगि लगी आकास मैं, झरि झरि परै अँगार ।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥८४॥
बिरह अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव ।
कै वा जानै बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥८५॥

(१) धौंकै । (२) एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। (३) समाया ।

बिरह कुल्हारी तन बहै[1], घाव न बाँधै रोह।
मरने का संसय नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥८६॥
कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहिं।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माहिं ॥८७॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई[2], भला करैगा सोय ॥८८॥
जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय ॥८९॥

प्रेम का अंग।

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं ॥१॥
सीस उतारै भुँइ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा योँ कहै, ऐसा होय तो आव ॥२॥
प्रेम न वाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥३॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥४॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान ॥५॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट[3] प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥६॥

---

(१) चलै। (२) उपजाई; पैदा की। (३) जो कभी घटता नहीं।

आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन मेँ हँसै, सो तो प्रेम न होय ॥७॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥८॥
प्रेम पियारे लाल सोँ, मन दे कीजै भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव ॥९॥
जब मैँ था तब गुरु नहीँ, अब गुरु हैँ हम नाहिँ।
प्रेम गली अति साँकरी, ता मेँ दो न समाहिँ ॥१०॥
जा घट प्रेम न संचरै[1], सो घट जानु मसान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥११॥
आया बगूला[2] प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास ॥१२॥
प्रेम बिकंता मैँ सुना, माथा साटे[3] हाट[4]।
बूझत बिलँब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट ॥१३॥
प्रेम बिना धीरज नहीँ, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीँ, मन मनसा का दाग ॥१४॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर।
घीँच[5] टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर ॥१५॥
अधिक सनेही माछरी, दूजा अलप सनेह।
जबहीँ जल तेँ बीछुरै, तबही त्यागै देँह ॥१६॥
सो जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुंदर पार ॥१७॥
यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥१८॥

---

(१) बसै। (२) बवंडर। (३) बदले। (४) बाज़ार। (५) गर्दन।

हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥१९॥
मेरा मन तो तुझ से, तेरा मन कहुँ और।
कह कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
ज्यौं मेरा मन तुज्झ से, यों तेरा जो होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥२१॥
प्रीति जो लागी घुलि गई, पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं ॥२२
जो जागत सो स्वप्न में, ज्यों घट भीतर स्वास।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास ॥२३॥
सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार।
दुर्जन कूम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार[1] ॥२४॥
प्रीति ताहि से कीजिये, जो आप समाना होय।
कबहुँक जो अवगुन परै, गुनहीं लहै समोय ॥२५॥
प्रेम बनिज नहिं करि सकै, चढ़ै न नाम की गैल।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ि फिरै ज्यों बैल ॥२६॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्योहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार।२७
प्रेम पाँवरी पहिरि कै, धीरज काजर देइ।
सील सिँदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ ॥२८॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥२९॥

---

(१) सज्जन और साधु जन सोने के समान हैं कि सौ वार भी टूटने पर जुट जाते हैं पर दुष्ट जन मट्टी के घड़े के सदृश हैं जिस में एकही धक्का लगने से दरार पड़ जाती है।

प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावे गृह में बास कर, भावे बन में जाय ॥३०॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेस।
बिना प्रेम पहुँचै नहीं, दुरलभ सतगुरु देस ॥३१॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥३२॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥३३॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३४॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक[१]।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥३५॥
नाम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल[२]।
कबीर पावन दुलभ है, माँगै सीस कलाल[३] ॥३६॥
कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर[४] पिया न जाय ॥३७॥
यह रस महँगा पिवै सो, छाड़ि जीव की बान।
माथा साटे[५] जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥३८॥
पिया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार ॥३९॥
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥४०॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिलि बूड़ते, जो यह नहिं होता टेक ॥४१॥

---

(१) इच्छा। (२) अच्छा, मीठा। (३) शराब बनाने वाला। (४) नहीं तो।
(५) बदले।

यही प्रेम निरबाहिये, रहनि किनारे बैठि।
सागर तेँ न्यारा रहा, गया लहरि मेँ पैठि ॥४२॥

अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावैँ घोरि ॥४३॥

अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहिँ आवै आन ॥४४॥

साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बुंद।
तृषा गई इक बुंद से, क्या ले करौँ समुंद ॥४५॥

मिलना जग मेँ कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय ॥४६॥

जोइ मिलै सो प्रीति मेँ, और मिलै सब कोय।
मन से मनसा ना मिलै, तो देँह मिले का होय ॥४७॥

जो दिल दिलही मेँ रहै, सो दिल कहूँ न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय ॥४८॥

जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय ॥४९॥

नैनोँ की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकोँ की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय ॥५०॥

जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिँ।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझि लेहु मन माहिँ ॥५१॥

पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥५२॥

पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़ ॥५३॥

यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद॥५४॥
प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत इकंत।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत॥५५॥
सीस काटि पासँग किया, जीव सेर भर लीन्ह।
जो भावै सो आइ ले, प्रेम आगे हम कीन्ह॥५६॥
प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सबद माहिँ तब मिलि रहै, नहिँ आवै नहिँ जाय॥५७॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सीस काटि करि गोय।
जब तू ऐसा करैगा, तब कछु होय तो होय॥५८॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत॥५९॥
प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय॥६०॥
गुनवंता औ द्रब्य की, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तेँ न्यारी होय॥६१॥
कबीर ता से प्रीति करु, जो निरबाहै ओर।
बनै तो बिबिधि न राखिये, देखत लागै खोर॥६२॥
कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास॥६३॥
जो है जा का भावता, जब तब मिलिहै आय।
तन मन ता को सौँपिये, जो कबहूँ छाड़ि न जाय॥६४॥
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास॥६५॥

तन दिखलावै आपना, कछू न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जो होय ॥६६॥
सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥६७॥
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी[1] किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६८॥
खेल जो मँडा खिलाड़ि से, आनँद बढ़ा अघाय।
अब पासा काहू परै, प्रेम बँधा जुग जाय ॥६९॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस ॥७०॥

सतसंग का अंग।

[सज्जन के लिये]

संगति से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख जोय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥१॥
संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले ही देत हैं, नाम सरीखा धन ॥२॥
कबीर संगत साध की, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥३॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥४॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥५॥

(१) गोट।

ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसु दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय ॥६॥
कबीर संगत साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥७॥
कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥८॥
मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ।
साध सँगति हरि भजन बिनु, कछू न आवै हाथ ॥९॥
साध सँगति अंतर पड़ै, यह मति कबहुं न होय।
कहै कबीर तिहुँ लोक में, सुखी न देखा कोय ॥१०॥
कबीर कलह रु कल्पना, सतसंगति से जाय।
दुख वा से भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥११॥
साधुन के सतसंग तें, थरहर काँपै देंह।
कबहूँ भाव कुभाव तें, मत मिटि जाय सनेह ॥१२॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ॥१३॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय ॥१४॥
जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि ॥१५॥
ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥१६॥
कबीर लहर समुद्र की, निस्फल कधी न जाय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥१७॥

जा घर गुरु की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥१८॥

कबीर ता से संग करु, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम ॥१९॥

कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय ॥२०॥

कबीर चंदन के ढिंगे, बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास ॥२१॥

कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥२२॥

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध ॥२३॥

घड़िहू की आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सतसंगति पल ही भली, जम का धका न खाय ॥२४॥

[दुर्जन के लिये]

संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥२५॥

हरिया जानै रूखड़ा, जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जान ही, केतहु बूड़ा मेह ॥२६॥

कबीर मूढ़क प्रानियाँ, नखसिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै, बान न लागै ताहि ॥२७॥

पसुवा से पाला परयो, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी, घालै दूना बीज ॥२८॥

साखी सब्द बहुत सुना, मिटा न मन का दाग ।
संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ॥२९॥
चंदन परसा बावना, बिष ना तजै भुवंग ।
यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३०॥
कबीर चंदन के निकट, नीम भी चंदन होय ।
बूड़े बाँस बड़ाइया, योँ जनि बूड़ो कोय ॥३१॥
चंदन जैसा साध है, सर्पहिं सम संसार ।
वा के अँग लपटा रहै, भाजै नाहिं बिकार ॥३२॥
भुवँगम बास न बेधई, चंदन दोष न लाय ।
सब अँग तो बिष से भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३३॥
सत्त नाम रटिबो करै, निसु दिन साधुन संग ।
कहो जो कौन बिचार तेँ, नाहीं लागत रंग ॥३४॥
मन दीया कहुँ औरही, तन साधुन के संग ।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥३५॥

कुसंग का अंग ।

जानि बूझि साची तजै, करै झूठ से नेह ।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहू मत देह ॥१॥
काँचा सेती मत मिलै, पाका सेती बान ।
काँचा सेती मिलत ही, होय भक्ति मैं हान ॥२॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल ।
काँची सरसोँ पेरि कै, खली भया ना तेल ॥३॥
कुल टूटा काँची परी, सरा न एकौ काम ।
चौरासी बासा भया, दूरि परा सतनाम ॥४॥

दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥५॥
मूरख के समुझावने, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥६॥
लहसुन से चंदन डरै, मत रे बिगारै बास।
निगुरा से सगुरा डरै, योँ डरपै जग से दास ॥७॥
संसारी साकट भला, कन्या क्वारी माय।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥८॥
साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार।
ऊपर कली[1] लपेटि कै, भीतर भरी अँगार ॥९॥
कबीर कुसँग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
कदली[2] सीप भुवंग मुख, एक बूँद त्रिभाय ॥१०॥
उज्जल बूँद अकास को, परि गई भूमि बिकार।
मूल बिना ठामा[3] नहीं, बिन संगति भो छार ॥११॥
हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेत।
ते नर कधी न नीपजैं, ज्यौं कालर[4] का खेत ॥१२॥
गिरिये पर्वत सिखर तें, परिये धरनि मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ो काली धार ॥१३॥
मारी मरै कुसंग की, ज्योँ केला ढिग बेरि।
वह हालै वह जीरई[5], साकट संग निबेरि ॥१४॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग जागी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटोँ लीन्हा घेरि ॥१५॥

(१) क़लई। (२) केला। (३) ठौर, ठिकाना। (४) रेहार यानी रेह का।
(५) मुरझाय।

कबीर कहते क्योँ बनै, अनबनता के संग।
दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥१६॥
ऊँचे कुल कहा जनमिया, जो करनी ऊँचि न होय।
कनक कलस मद से भरा, साधन निंदा सोय ॥१७॥

सूक्ष्म मार्ग का अंग।

उत तेँ कोई न बाहुरा, जा से बूझूँ धाय।
इत तेँ सबही जात हैं, भार लदाय लदाय ॥१॥
उत तेँ संतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैं तीर ॥२॥
गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा, जहाँ बुलावै यार ॥३॥
कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय ॥४॥
बास[1] सुरति लै आवई, संबद सुरति लै जाय।
परिचय स्रुति है इस्थिरे, सो गुरु दई बताय ॥५॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तेँ सनमुख भया, लागि कबीरा पाँय ॥६॥
जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माहिं ॥७॥
कौन देस कँह आइया, जानै कोई नाहिं।
वह मारग पावै नहीं, भूलि परै येहि माहिं ॥८॥
हम चाले अमरावती, टारे टूरे टाट।
आवन होय तो आइयो, सूली ऊपर बाट ॥९॥

---

(१) वासना।

सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥१०॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकूँ पाँय ॥११॥
नाँव न जानै गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलते चलते जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥१२॥
सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल मैं पहुँचा जाय ॥१३॥
अगम पंथ मन थिर रहै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन धन सब छाड़ि कै, तब पहुँचै वा देस ॥१४॥
सब को पूछत मैं फिरा, रहन कहै नहिं कोय।
प्रीति न जोरै गुरू से, रहन कहाँ से होय ॥१५॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदेसा और।
साहिब से परिचय नहीं, पहुँचैंगे केहि ठौर ॥१६॥
कबीर मारग कठिन है, कोई सकै न जाय।
गया जो सो बहुरै नहीं, कुसल कहै को आय ॥१७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल।
पाँव न टिकै पपीलि[1] का, पंडित लादे बैल ॥१८॥
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराय।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, तहईं पहुँचे जाय ॥१९॥
कबीर मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुरु की साखि[2] ॥२०॥
सुर नर थाके मुनि जना, उहाँ न कोई जाय।
मोटा[3] भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥२१॥

---

(१) चींटी। (२) भरोसा। (३) बड़ा।

सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिस्नु महेस।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥२२॥
कबीर गुरु हथियार करि, कूड़ा गली निवारु।
जो जो पंथे चालना, सो सो पंथ सँभारु ॥२३॥
अगम्म हूँ तैं अगम है, अपरम्पार अपार।
तहँ मन धीरज क्यौं धरै, पंथ खरा निरधार ॥२४॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥२५॥
जेहि पैंड़े पंडित गया, तिस ही गही बहीर[1]।
औघट घाटी नाम की, तहँ चढ़ि रहा कबीर ॥२६॥
घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥२७॥
बाट बिचारी क्या करै, पंथि न चलै सुधार।
राह आपनी छाड़ि कै, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२८॥
कहँ तैं तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष का नाम ॥२९॥
अमर लोक तैं आइया, सुख के सागर ठाम।
जाति हमारि अजाति है, अमर पुरुष का नाम ॥३०॥
कहवाँ तैं जिव आइया, कहवाँ जाय समाय।
कैान डोरि धरि संचरै[2], मोहिं कहो समुझाय ॥३१॥
सरगुन तैं जिव आइया, निरगुन जाय समाय।
सुरति डोर धरि संचरै, सतगुरु कहि समुझाय ॥३२॥
ना वहँ आवागवन था, नहिं धरती आकास।
कबीर जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥३३॥

---

(१) लाग, संसार। (२) घुसै, चढ़ै।

नाहीं आवागवन था, नहिं धरती आकास ।
हतो कबीरा दास जन, साहिब पास खवास ॥३४॥
पहुँचैंगे तब कहँगे, वही देस की सीच[1] ।
अबहीं कहा तड़ागिये[2], बेड़ी पायन बीच ॥३५॥
करता की गति अगम है, चलु गुरु के उनमान ।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान ॥३६॥
प्रान पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय ।
जीव छता[3] जामै मरै, सूछम लखै न सोय ॥३७॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३८॥

चितावनी का अंग ।

कबीर गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥१॥
आज काल्ह के बीच में, जंगल हूँगा बास ।
ऊपर ऊपर हर फिरै, ढोर[4] चरैंगे घास ॥२॥
हाड़ जरै ज्यौं लाकड़ी, केस जरै ज्यौं घास ।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास ॥३॥
झूँठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद ।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद॥४॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय ।
जरा[5] मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥५॥

---

(१) शीतल स्थान । (२) कूदना, डींग मारना । (३) आछत, मौजूद रहते । (४) चौपाये । (५) वृद्ध अवस्था ।

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति ।
देखत ही छिपि जायगी, ज्योँ तारा परभाति ॥६॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार ।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥७॥
रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय ।
हीरा जनम अमोल था, कैाड़ी बदले जाय ॥८॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत ।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥९॥
यहि औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्योँ पाली देह ।
सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पड़े मुख खेह ॥१०॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम भंडार ।
काल कंठ तें पकरिहै, रोकै दसो दुवार ॥११॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गइ खेत ॥१२॥
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह ।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल ॥१३॥
काल्ह करै सो आज करु, सबहि साज तेरे साथ ।
काल्ह काल्ह तू क्या करै, काल्ह काल के हाथ ॥१४॥
काल्ह करै सो आज करु, आज करै सो अब्ब ।
पल मैं परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१५॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्योँ तीतर को बाज ॥१६॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कह्यो न जाय ।
ना जानूँ क्या होयगा, पाव बिपल के मायँ ॥१७॥

कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥१८॥
जिन के नौबति बाजती, मंगल बँधते बार[2]।
एकै सतगुरु नाम बिनु, गये जनम सब हार ॥१९॥
पाँचो नौबति बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥२०॥
ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई अरु भेरि[3]।
अवसर चले बजाइ के, है कोइ लावै फेरि ॥२१॥
कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान।
सबहि उभा[4] मेँ लगि रहा, राव रंक सुलतान ॥२२॥
इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, क्योँ नहिँ सावध[5] होहि ॥२३॥
ऊजड़ खेड़े[6] ठीकरी, गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया, लंका का सरदार ॥२४॥
ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।
सुबरन कली ढलावते, गये पलक मेँ छोड़ ॥२५॥
कहा चुनावै मेढ़ियाँ[7], लंबी भीति उसारि[8]।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार[9] ॥२६॥
पाँच तत्त का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिरि फिरि रोकै ठाम ॥२७॥
कबीर गर्व न कीजिये, दैँही देखि सुरंग।
बिछुरे पै मेला नहीँ, ज्योँ केचुली भुजंग ॥२८॥

---

(१) शहर। (२) वन्दनवार। (३) बाजे का नाम। (४) चिंता। (५) सावधान, होशियार (६) गाँव। (७) मढ़ी, घर। (८) ओसारा। (९) जीव का घर जो शरीर है उसका नाप साढ़े तीन हाथ होता है या बहुत लम्बा हुआ तो पौने चार हाथ।

कबीर गर्व न कीजिये, अस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥२९॥
कबीर गर्व न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।
काल्ह परौं भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥३०॥
कबीर गर्व न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हय बर ऊपर छत्र तर, तौ भी देवैं गाड़ ॥३१॥
पक्की खेती देखि करि, गर्बै कहा किसानु।
अजहूँ झोला बहुत है, घर आवै तब जानु ॥३२॥
जेहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहिं नाम।
ते नर पसु संसार मैं, उपजि खपे बेकाम ॥३३॥
ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्योहार मैं, झूठे रंग न भूल ॥३४॥
कबीर धूल सकेलि[1] कै, पुड़ी[2] जो बाँधी येह।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह की खेह ॥३५॥
पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय।
एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय ॥३६॥
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिवस चार का पेखना, बिनसि जायगा काल ॥३७॥
सपने सोया मानवा, खोल देखि जो नैन।
जीव परा बहु लूट मैं, ना कछु लेन न देन ॥३८॥
मरोगे मरि जाहुगे, कोई न लेगा नाम।
ऊजड़ जाइ बसाहुगे, छोड़ि के बसता गाम ॥३९॥
घर रखवाला बाहिरा, चिड़िया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥४०॥

(१) समेट के। (२) पुड़िया।

कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल्ह ।
चेत सकै तो चेतियो, मीच रही है ख्याल ॥४१॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥४२॥
जिन गुरु की चोरी करी, गये नाम गुन भूल ।
ते बिधना बादुर[1] रचे, रहे उरधमुख झूल ॥४३॥
सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि[2] ।
काया हाँड़ी काठ की, ना यह चढ़ै बहोरि ॥४४॥
सत्त नाम जाना नहीं, हूआ बहुत अकाज ।
बूड़ेगा रे बापुरा, बड़े बड़ों की लाज ॥४५॥
सत्त नाम जाना नहीं, चूके अब की घात ।
माटी मलत कुम्हार ज्यों, घनी सहै सिर लात ॥४६॥
कबीर या संसार में, घना मनुष मतिहीन ।
सत्त नाम जाना नहीं, आये टापा[3] दीन्ह ॥४७॥
आया अनआया हुआ, जो राता संसार ।
पड़ा भुलावे गाफिला, गये कुबुद्धी हार ॥४८॥
कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥४९॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धृग जीवन संसार ।
धूवाँ का सा धौलहर[4], जात न लागै बार ॥५०॥
जगतहिं मैं हम राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन छीजै कुल बिनसिहै, चढ़ै न नाम जहाज ॥५१॥
यह तन काँचा कुंभ[5] है, लिये फिरै था साथ ।
टपका[6] लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥५२॥

---

(१) चमगादड़ । (२) सराप । (३) अँधेरी । (४) धरहरा । (५) घड़ा मिट्टी का । (६) ठोकर ।

पानी का सा बुदबुदा, देखत गया बिलाय।
ऐसे जिउड़ा जायगा, दिन दस ठोली[1] लाय ॥५३॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥५४॥

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय।
उज्जल होइ न छूटसी, सुख नींदड़ी न सोय ॥५५॥

मोर तोर की जेवरी[2], बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यौं बँधै, जा के नाम अधार ॥५६॥

जिन जाना निज गेह[3] को, सो क्यौं जोड़ै मित्त[4]।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥५७॥

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर ॥५८॥

जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥५९॥

बनिजारा का बैल ज्यौं, टाँडा[5] उतर्यो आय।
एकन को दूना भया, इक चला मूल गँवाय ॥६०॥

कबीर यह तन जातु है, सकै तो राखु बहोर।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोर ॥६१॥

आस पास जोधा खड़े, सबै बजावैं गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥६२॥

हाँकों[6] परबत फाटते, समुँदर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्ब कराय ॥६३॥

---

(१) ठठोली, हँसी। (२) रस्सी। (३) घर। (४) मित्र। (५) लदनी।
(६) आवाज़ से।

या दुनिया में आइ कै, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ लै, उठी जात है पैंठ ॥६४॥

यह दुनिया दुइ रोज की, मत कर या से हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥६५॥

तन सराय मन पाहरू[1], मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, (सब) देखा ठोंक बजाय॥६६

मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि।
कहै कबीर कब लगि रहै, रुई लपेटी आगि ॥६७॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥६८॥

मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन।
तन माटी मिलि जायगा, ज्यों आटे में नोन ॥६९॥

जनम मरन दुख याद कर, कूड़े काम निवार।
जिन जिन पंथों चालना, सोई पंथ सम्हार ॥७०॥

कबीर खेत किसान का, मिरगों खाया झाड़।
खेत बिचारा क्या करै, जो धनी करै नहिं बाड़[2]॥७१॥

बासर[3] सुख ना रैन सुख, ना सुख सपने माहिं।
जे नर बिछुड़े नाम से, तिन को धूप न छाहिं॥७२॥

कबीर सोता क्या करै, क्यों नहिं देखै जाग।
जा के सँग से बीछुड़ा, वाही के सँग लाग ॥७३॥

कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार[4]।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार ॥७४॥

---

(१) पहरेदार। (२) टट्टी जो बचाव के लिये खेत के चारो ओर लगाते हैं; रक्षा। (३) दिन। (४) दयाल।

कबीर सोता क्या करै, सोते होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥७५॥
अपने पहरे जागिये, ना पड़ि रहिये सोय।
ना जानौं छिन एक मैं, किस का पहरा होय ॥७६॥
चकवी बिछुरी रैन की, आनि मिलै परभात।
जे नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥७७॥
दीन गँवायो दुनी सँग, दुनी न चाली साथ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥७८॥
कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय।
नाम अकुल[1] को भेंटिया, सब कुल गया बिलाय ॥७९॥
दुनिया के धोखे मुवा, चाला कुल की कानि।
तब क्या कुल की लाज है, जब लै धरैं मसान ॥८०॥
कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥८१॥
उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिं।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिं ॥८२॥
मलमल खासा पहिरते, खाते नागर पान।
ते भी होते मानवी, करते बहुत गुमान ॥८३॥
गोफन[2] माहीं पौढ़ते, परिमल[3] अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥८४॥
मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥८५॥
कबीर बेड़ा[4] जरजरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए[5] तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥८६॥

(१) कुल से रहित। (२) गुफा। (३) सुगंधि। (४) नाव। (५) हलके हलके।

डागल ऊपर दौड़ना, सुख नींदड़ी न सोय।
पुन्नौं पाया दिवसड़ा, ओछी ठौर न खोय ॥८७॥

मैं भँवरा तोहिं बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥८८॥

बाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया, तजि बाड़ी की आस ॥८९॥

दुनियाँ सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
एकाएकी गुरू से, कै साधन कौ संग ॥९०॥

भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥९१॥

भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय ॥९२॥

डर करनी डर परम गुरू, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥९३॥

खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकबाद।
बाँझ हिलावै पालना, ता मैं कौन सवाद ॥९४॥

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ, साधू उबरे भागि ॥९५॥

यहि बेरिया तो फिरि नहीं, मन में देखु बिचार।
आया लाभ के कारने, जनम जुवा मत हार ॥९६॥

बैल गढ़ंता नर गढ़ा, चूका सींग अरु पोंछ[१]।
एकहि गुरु के नाम बिनु, धिक दाढ़ी धिक मोंछ ॥९७॥

---

(१) बैल का जन्म होना चाहिये था पर विधना सींग और पोंछ लगाना भूल गया जिस से मनुष्य की सूरत बन गई फिर जो भगवंत भजन न किया तो ऐसी दाढ़ी और मोंछ को धिक्कार है।

यह मन फूला बिषय बन, तहाँ न लाओ चीत ।
सागर क्योँ ना उड़ि चलो, सुनो बैन मन मीत ॥९८॥
कहै कबीर पुकारि के, चेतै नाहीं कोय ।
अब की बेरिया चेतिहै, सो साहिब.का होय ॥९९॥
मनुष जनम नर पाइ कै, चूकै अब की घात ।
जाय परै भव चक्र मेँ, सहै घनेरी लात ॥१००॥
लोग भरोसे कैान के, बैठि रहे अरगाय[1] ।
ऐसे जियरा जम लुटै, भैँड़हिँ लुटै कसाय[2] ॥१०१॥
ऐसी गति संसार की, ज्योँ गाडर की ठाट[3] ।
एक पड़ा जेहि गाड़[4] मेँ, सबै जायँ तेहि बाट ॥१०२॥
भ्रम का बाँधा ये जगत, यहि बिधि आवै जाय ।
मानुष जनमहिँ पाइ नर, काहे को जहड़ाय[5] ॥१०३॥
धोखे धोखे जुग गया, जनमहिँ गया सिराय[6] ।
थिति[7] नहिँ पकड़ी आपनी, यह दुख कहाँ समाय॥१०४॥
केतो कहैाँ बुझाइ कै, पर हथ जीव बिकाय ।
मैँ खैँचौँ सतलोक को, सीधा जमपुर जाय ॥१०५॥
तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिँ होय ॥१०६॥
ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसा जीव रु देँह ।
चलती बेरियाँ रे नरा, डारि चला ज्योँ खेह ॥१०७॥
एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[8] ।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥१०८॥

---

(१) अलग होके, बेपरवाह होके। (२) जैसे बकरे को कसाई मारता है ऐसे ही निर्दईपन से जम तुम्हारा वध करैगा। (३) भैँड़ का झुंड। (४) गड़हा। (५) ठगाय। (६) बीत। (७) स्थिरता। (८) हिर्स।

जात सवन कहँ देखिया, कहहिँ कबीर पुकार ।
चेता[1] होहु तो चेति ल्यो, दिवस परत है धार[2] ॥१०९॥
कहै कबीर पुकारि के, ये कलऊ बेवहार ।
एक नाम जाने बिना, बूड़ि मुआ संसार ॥११०॥
मूए हो मरि जाहुगे, मुए की बाजी ढोल ।
सुपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल॥१११॥
नाम मछंदर ना बचे, गोरखदत्त रु ब्यास ।
कहै कबीर पुकारि के, परे काल की फाँस ॥११२॥
झूठ झूठ कह डारहू, मिथ्या यह संसार ।
तेहिँ कारन मैं कहत हौँ, जा तेँ होइ उबार ॥११३॥
झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत ।
सत्त नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत॥११४॥
बहुतै तन को साजिया, जनमो भरि दुख पाय ।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गुहराय ॥११५॥
खाते पीते जुग गया, अजहुँ न चेतो आय ।
कहै कबीर पुकारि कै, जीव अचेते जाय ॥११६॥
परदे परदे चलि गया, समुझि परी नहिं बानि ।
जो जानै सो बाचिहै, होत सकल की हानि॥११७॥
पाँच तत्त का पूतरा, मानुष धरिया नाम ।
एक तत्त के बीछुरे, बिकल भया सब ठाम॥११८॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी[3] को कहै, तन की नारी[4] जाहिँ॥११९॥
भँवर बिलंबे[5] बाग में, बहु फूलन की आस ।
जीव बिलंबे बिषय में, अंतहुँ चले निरास ॥१२०॥

(१) समझदार । (२) धाड़=डाका । (३) स्त्री । (४) नाड़ी । (५) आशक्त हुए ।

काल खड़ा सिर ऊपरे, जागु बिराने मिंत[1]।
जा का घर है गैल मैं, क्योँ सोवै निःचिंत ॥१२१॥

काया काठी काल घुन, जतन जतन घुनि खाय।
काया माहीँ काल है, मर्म न कोऊ पाय ॥१२२॥

चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट[2] भीतर आइकै, साबित गया न कोय ॥१२३॥

काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता मैं जीव पिसात ॥१२४॥

आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय।
कीला से लागा रहै, ता को बिघन न होय[3]॥१२५॥

चक्की चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि।
रूढ़ा[4] सबद कबीर का, डारा पाट उखारि ॥१२६॥

साहू से भा चोरवा, चोरन से भयो जुज्झ।
तब जानैगो जीयरा, मार पड़ैगी तुज्झ ॥१२७॥

सेमर सुवना सेइया, दुइ ढैँढ़ी की आस।
ढैँढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ॥१२८॥

मूए हो मरि जाहुगे, बिन सर थोथे भाल।
परेहु कराइल[5] बृच्छ तर, आजु मरहु की काल्ह ॥१२९॥

नाम न जानै गाँव का, भूला मारग जाय।
काल्ह गड़ैगा काँटवा, अगमन[6] कस न कराय॥१३०॥

---

(१) मित्र। (२) चक्की के दो पल्ले। (३) मुँह से सभी कहते हैँ कि काल की चक्की चल रही है पर सच्चे मन से कोई नहीँ मानता नहीँ तो कीला जिसकी सत्ता से वह घूमती है अर्थात भगवंत को ऐसा दृढ़ कर पकड़ै कि आवागवन से रहित हो जाय। (४) बलवान। (५) करील या टैँटी की झाड़ जो काँटेदार होती है और पत्ती नहीँ होती। (६) आगे से चेतना।

आज काल्ह दिन एक में, इस्थिर नाहिँ सरीर।
कह कबीर कस राखिहौ, काँचे बासन नीर ॥१३१॥
सुनहु संत सतगुरु बचन, मत लीजै सिर भार।
हौं हजूर ठाढ़ो कहत, अब तैं सम्हरि सम्हार॥१३२॥
पूरब ऊगै पच्छिम अथवै[1], भखै पवन का फूल।
राहु गरासै ताहु को, मानुष काहैं भूल ॥१३३॥
जीव मर्म जानै नहीं, अंध भया सब जाय।
बादी[2] द्वारे दाद[3] नहिँ, जनम जनम पछिताय॥१३४॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, ईंधन होइ गये सब्ब ॥१३५॥
टक्क टक्क गया जोवता, पल पल गया बिहाय।
जीव जँजाले परि रहा, जमहिँ दमाम बजाय[4] ॥१३६॥
मैं इकला ये दुइ जना[5], साथी नाहीं काय[6]।
जो जम आगे ऊबरौं, (तौ) जरा पहूँचै आय ॥१३७॥
जरा कुत्ती जोबन ससा, काल अहेरी लार।
अबकी छिन मैं पकरिहै, गरबै कहा गँवार[7] ॥१३८॥
काल हमारे संग रहै, कस जीवन की आस।
दिन दस नाम सम्हारि ले, जब लगि पिंजर साँस ॥१३९॥
आठ पहर योंही गया, माया मोह जँजाल।
सत्तनाम हिरदे नहीं, जीति लिया जम काल ॥१४०॥

---

(१) डूबै (सूरज)। (२) मुद्दई यानी काल। (३) न्याव। (४) आसरा ताकते २ समय बीत गया, जीव जंजाल में फँस रहा और उधर से जमराज ने नगाड़ा कूच का बजा दिया। (५) जरा (अर्थात् जरजर अवस्था बुढ़ापे की) और मरन। (६) कोई। (७) जवानी रूपी खरगोस के पीछे वृद्धाई रूपी कुतिया उसके तोड़ डालने को लगी है और साथ ही उसके काल शिकारी है सो तेरे इस मानुष जन्म को भी छिन में नष्ट कर देगा तू किस घमंड में भूला है।

कबीर पाँच पखेरुआ, राखे पोष[1] लगाय ।
एक जो आयो पारधी[2], ले गयो सबै उड़ाय ॥१४१॥
मंदिर माहीं झलकती, दीवा की सी जोति ।
हंस बटाऊ[3] चलि गया, काढ़ो घर की छोति[4] ॥१४२॥
वारी वारी आपने, चले पियारे मित्त ।
तेरी वारी जीयरा, नियरे आवै नित्त ॥१४३॥
माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकारि ।
फूली फूली चुनि लिये, काल्हि हमारी बारि[5] ॥१४४॥
परदे रहती पद्मिनी, करती कुल की कानि ।
छड़ी जो पहुँची काल की, ढेर भई मैदान ॥१४५॥
मछरी दह[6] छोड़ै नहीं, धीमर[7] तेरो काल ।
जेहिं जेहिं डाबर[8] घर करौ, तहँ तहँ मेलै जाल ॥१४६॥
पानी में की माछरी, क्योँ तैं पकर्यो तीर ।
कड़िया खटकी ज़ाल की, आइ पहूँचा कीर[9] ॥१४७॥
हे मतिहीनी माछरी, राख न सकी सरीर ।
सो सरवर सेया नहीं, (जहँ) जाल काल नहिं कीर॥१४८॥
हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय ।
करि समुद्र से रूसना, छीलर[10] चित्त दियाय॥१४९॥
काँची काया मन अथिर, थिर थिर काज करंत ।
ज्योँ ज्योँ नर निधड़क फिरत, त्योँ त्योँ काल हसंत ॥१५०॥

---

(१) पालन पोषन । (२) शिकारी । (३) बटोही । (४) प्राण के निकलते ही घर की छूत निकालने को उसे धोते हैं । (५) पारी । (६) कुंड, गहरा पानी । (७) कहार या मल्लाह जो मछली पकड़ता हैं । (८) पानी का गढ़ा । (९) कीर नाम किरात अर्थात् भिल्ल जाति का है जो शिकार करके खाते हैं । हे मछली जिसका तालाब के बीच मेँ स्थान था तू क्योँ किनारे आई जिससे जाल मेँ फँस गई । (१०) छिछला पानी ।

टाला टूली दिन गया, ब्याज बढ़ंता जाय।
ना गुरु भज्यो न खत कट्यो[1], काल पहूँचा आय ॥१५१॥
कबीर पँड़ा[2] दूर है, बीचि पड़ी है रात।
ना जानौं क्या होयगा, ऊगे तेँ परभात[3] ॥१५२॥
हम जानैं थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्योँ का त्यौँ ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥१५३॥
चहुँ दिसि पक्का कोट था, मंदिर नगर मँझार।
खिड़की खिड़की पाहरू, गज बंधा दरबार ॥१५४॥
चहुँ दिसि सूरा बहु खड़े, हाथ लिये हथियार।
रहि गये सबही देखते, काल ले गया मार ॥१५५॥
संसय काल सरीर में, विषम[4] काल है दूर।
जा को कोई ना लखै, जारि करै सब धूर ॥१५६॥
दव[5] की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥१५७॥
मेरा बीर[6] लुहारिया, तू मत जारै मोहिँ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिँ ॥१५८॥
जरनेहारा भी मुआ, मुआ जरावनहार।
हैहै करते भी मुए, का से करौँ पुकार ॥१५९॥
भाई बीर बटाउआ, भरि भरि नैनन रोय।
जा का था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१६०॥
निःचय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय।
कह कबीर मैं का कहौं, देखत ना पतियाय ॥१६१॥

---

(१) कर्म की रेखा नहीं कटी या लेखा नहीँ चुका। (२) रास्ता। (३) सबेरा। (४) कठिन। (५) अगिन। (६) भाई।

मरती विरिया पुन[1] करै, जीवत बहुत कठोर ।
कह कबीर क्योँ पाइये, काढ़े खाँडे चोर[2] ॥१६२॥

कबीर बैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई बाहिँ ।
बैद न बेदन[3] जानही, कफ्फ करेजे माहिँ ॥१६३॥

कबीर यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि[4] ।
आप आप को काटिहै, कहै कबीर बिचारि ॥१६४॥

कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाड़ै ओट ।
घन अहरन बिच लोह ज्योँ, घनी सहै सिर चोट ॥१६५॥

महलन माहीँ पौढ़ते, परिमल अंग लगाय ।
ते सुपने दीसैँ नहीँ, देखत गये बिलाय ॥१६६॥

जंगल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय ।
ते भी होते मानवा, करते रँग रलियाय ॥१६७॥

तेरा संगी कोइ नहीँ, सबै स्वारथी लोय ।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥१६८॥

जा को रहना उत्त घर, सो क्योँ लोड़ै[5] इत्त ।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥१६९॥

ज्योँ कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर ।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तौ दौर ॥१७०॥

कोठे ऊपर दौरना, सुख नीँदरी न सोय ।
पुन्ये पाया देहरा, ओछो ठौर न खोय ॥१७१॥

मैँ मैँ मेरी जनि करै, मेरी मूल बिनासि ।
मेरी पग का पैकड़ा[6], मेरी गल की फाँसि ॥१७२॥

---

(१) पुन्य दान । (२) जब चोर तलवार निकाले खड़ा है उसको कैसे पकड़ सकोगे । (३) दुक्ख, दरद । (४) कुल्हाड़ी । (५) चाहै या चाह करै । (६) बेड़ी ।

कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[१] खेवनहार।
हलके हलके तिर गये, बूड़े जिन सिर भार ॥१७३॥
कबीर नाव तो झाँझरी, भरो बिराने भार।
खेवट से परिचय नहीँ, क्योँकर उतरै पार ॥१७४॥
कायथ[२] कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वास सरीर मेँ, तब लगि नाम सँभार ॥१७५॥
कबीर रसरी पाँव मेँ, कहा सोवै सुख चैन।
स्वास नगाड़ा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥१७६॥
राज दुआरे बंधिया, मूड़ी धुनै गजंद[३]।
मनुष जनम कब पाइहौँ, भजिहौँ परमानंद ॥१७७॥
मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारंबार।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१७८॥
काल चिचावत[४] है खड़ा, जागु पियारे मिंत।
नाम सनेही जगि रहा, क्योँ तू सोय निचिंत ॥१७९॥
जरा आय जोरा किया, पिय आपन पहिचान।
अंत कछू पल्ले परै, ऊठत है खरिहान ॥१८०॥
बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर[५]।
बिगरा काज सँवारि लै, फिरि छूटन नहिँ ठौर ॥१८१॥
घड़ी जो बाजै राज दर, सुनता है सब कोय।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहाँ तैँ होय ॥१८२॥
कै कूसल अनजान के, अथवा नाम जपंत।
जनम मरन होवै नहीँ, तौ बूझौ कुसलंत ॥१८३॥
पात झरंता यौँ कहै, सुनु तरवर बनराय।
अब के बिछुरे ना मिलैँ, दूर परैँगे जाय ॥१८४॥

(१) कुटिल। (२) चित्रगुप्त। (३) हाथी। (४) चिल्लाता है। (५) सफ़ेद।

जो ऊगे सो अत्थवै[1], फूलै सो कुम्हिलाय।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामै[2] सो मरि जाय ॥१८५॥

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१८६॥

तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्न दोउ जाल।
सकल जीव सावज[3] भये, एक अहेरी काल ॥१८७॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार ॥१८८॥

यह जिव आया दूर तें, जाना है बहु दूर।
बिच के बासे[4] बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥१८९॥

कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक।
कान पकरि के लै चला, ज्यौं अजयाहिं खटीक[5] ॥१९०॥

बालपना भोले गयो, और जुबा महमंत।
बृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥१९१॥

साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, ता तें लागी बार ॥१९२॥

घाट जगाती धरमराय, सब का झारा लेहि।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देहि ॥१९३॥

जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन ॥१९४॥

खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट[6] न होय ॥१९५॥

---

(१) अस्त होय, डूबै। (२) जन्मै, उगै। (३) शिकार। (४) पड़ाव, टिकने की जगह। (५) जैसे बकरी को खटिक ले जाता है। (६) कर्म का बोझ।

उदारता का अंग।

कबीर गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय ॥१॥
बसंत ऋतु जाचक भया, हरषि दिया द्रुम[1] पात।
ता तें नव पल्लव[2] भया, दिया दूर नहिं जात ॥२॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन कौ काम ॥३॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥४॥
कहै कबीरा देय तू, जब लगि तेरी देह।
देह खेह होइ जायगी, तब कौन कहैगा देह ॥५॥
गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥६॥
देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥७॥
दान दिये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर ॥८॥
सतही में सत बाँटई, रोटी में तें टूक।
कहै कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥९॥

सहन का अंग।

काँच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥१॥

---

(१) पेड़। (२) पत्तियाँ।

काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम।
कह कबीर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम[1] ॥२॥
कसत कसौटी जो टिकै, ता को सबद सुनाय।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ॥३॥

बिश्वास का अंग।

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंतैं क्या होय।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥१॥
साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाना लेय।
आगे पाछे हरि खड़े, जब माँगै तब देय ॥२॥
चिंता न कर अचिंत रहु, देनहार समरत्थ।
पसू पखेरू जीव जंत, तिन के गाँठि न हत्थ ॥३॥
अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोख[2]।
यौं करता सब की करै, पालै तीनिउ लोक ॥४॥
पौ फाटी पगरा[3] भया, जागे जीवा जून।
सब काहू को देत है, चौंच समाना चून ॥५॥
सत्त नाम से मन मिला, जम से परा दुराय।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥६॥
कर्म करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर फोड़ै कोय ॥७॥
साईं इतना दीजिये, जा में कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥८॥
जा के मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झक झोलही, तऊ न है चित भंग ॥९॥

(१) सोना। (२) परवरिश। (३) सवेरा।

खोज पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलैंगे आय ।
अजया[1] गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपल खाय ॥१०॥
पाँडर[2] पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास ।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा बिस्वास ॥११॥
पद गावै लौलीन ह्वै, कटै न संसय फाँस ।
सबै पछोरै थोथरा, एक बिना बिस्वास ॥१२॥
गाया जिन पाया नहीं, अनगाये तें दूर ।
जिन गाया बिस्वास गहि, ता के सदा हजूर ॥१३॥
गावनही में रोवना, रोवनही में राग ।
एक बनहिं में घर करै, एक घरहिं बैराग ॥१४॥
जो सच्चा बिस्वास है, तो दुख क्यों ना जाय ।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय ॥१५॥
बिस्वासी ह्वै गुरु भजै, लोहा कंचन होय ।
नाम भजै अनुराग तें, हरष सोक नहिं दोय ॥१६॥

दुबिधा का अंग ।

दुबिधा जा के मन बसै, दयावंत जिउ नाहिं ।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देउ जनि बाहिं ॥१॥
हिरदे माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय ।
मुख तौ तबही देखई, दुबिधा देइ बहाय ॥२॥
पढ़ा गुना सीखा सभी, मिटी न संसय सूल ।
कह कबीर का से कहूँ, यह सब दुख का मूल ॥३॥

---

(१) बकरी । (२) चमेली के पेड़ की एक जाति ।

चींटी चावल लै चली, बिच मेँ मिलि गइ दार[1] ।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक लै दूजी डार ॥४॥

आगा पीछा दिल करै, सहजै मिलै न आय ।
सो बासी जम लोक का, बाँधा जमपुर जाय ॥५॥

सत्त नाम कड़ुवा लगै, मीठा लागै दाम ।
दुविधा मेँ दोऊ गये, माया मिली न राम ॥६॥

तकत तकावत रहि गया, सका न बेझो[2] मारि ।
सबै तीर खाली परा, चला कमाना डारि ॥७॥

नगर चैन तब जानिये, (जब) एकै राजा होय ।
याहि दुराजी[3] राज मेँ, सुखी न देखा कोय ॥८॥

संसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध ।
जो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध ॥९॥

मध्य का अंग ।

पाया कहैँ ते बावरे, खोया कहैँ ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीँ, ज्योँ का त्योँ भरपूर ॥१॥

भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन ।
भजन तजन के मध्य मेँ, सो कबीर मन मान ॥२॥

लेउँ तो महा पतिग्रह, देऊँ तो भोगंत ।
लेन देन के मध्य मेँ, सो कबीर निज संत ॥३॥

हिंदू कहूँ तो मैँ नहीँ, मुसल्मान भी नाहिँ ।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिँ ॥४॥

---

(१) दाल। (२) निशाना। (३) माया और ब्रह्म।

गैबी आया गैब तें, इहाँ लगाया ऐब ।
उलटि समाना गैब में, तब कहँ रहिया ऐब ॥५॥
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप ।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥६॥

सहज का अंग ।

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥१॥
सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै बिषया तजै, सहज कहावै सोय ॥२॥
सहजै सहजै सब भया, मन इंद्री का नास ।
निःकामी से मन मिला, कटी करम की फाँसि ॥३॥
सहजै सहजै सब गया, सुत बित काम निकाम ।
एकमेक ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा नाम ॥४॥
जो कछु आवै सहज में, सोई मीठा जान ।
कड़ुआ लागै नीम सा, जा में ऐंचा तान ॥५॥
सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि ।
कहै कबीर वह रक्त सम, जा में ऐंचा तानि ॥६॥
काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार ।
सहजै सहजै होयगा, जो रचिया करतार ॥७॥
जो कलपै सो दूर है, अनकलपे है सोय ।
सतगुरु मेटी कलपना, सहजै होय सो होय ॥८॥

अनुभव ज्ञान का अंग ।

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात ।
सो गूँगा गुड़ खाइ कै, कहै कौन मुख स्वाद ॥१॥
ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान ।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान ॥२॥
नर नारी के स्वाद को, खसी[1] नहीं पहिचान ।
तत[2] ज्ञानी के सुक्ख को, अज्ञानी नहिं जान ॥३॥
आतम अनुभव सुक्ख की, का कोइ बूझै बात ।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात ॥४॥
आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष बिषाद ।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो, तजि करि बाद बिवाद ॥५॥
कागद लिखै सो कागदी, को ब्योहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव ॥६॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात ।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात ॥७॥
भरो होय सो रीतई, रीतो[3] होय भराय ।
रीतो भरो न पाइये, अनुभव सोई कहाय ॥८॥

बाचक ज्ञान का अंग ।

ज्यों अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान ॥१॥
अँधरन को हाथी सही, हैं साचे सगरे ।
हाथन की टोई कहैं, आँखिन के अँधरे ॥२॥

---

(१) हिजड़ा । (२) तत्व । (३) ख़ाली ।

ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥३॥
ज्ञानी तो निर्भय भया, मानै नाहीं संक।
इन्द्रिन के रे बसि परा, भुगतै नर्क निसंक ॥४॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता।
ता तेँ संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥५॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप।
बाहर खोजैं बापुरे, भीतर बस्तु अनूप ॥६॥
भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथैं अनेक।
जो पै भीतर लखि परै, भीतर बाहर एक ॥७॥
समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिँ।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय माहिँ ॥८॥

करनी और कथनी का अंग।

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, तो बिष से अमृत होय ॥१॥
करनी गर्ब-निवारनी, मुक्ति स्वारथी सोय।
कथनी तजि करनी करै, तौ मुक्ताहल होय ॥२॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
बिरह बान जिन के लगा, तिन के बिकल सरीर ॥३॥
कथनी बदनी छाड़ि के, करनी से चित लाय।
नरहिँ नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय ॥४॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्योँ भूँसत फिरै, सुनी सुनाई बात ॥५॥

करनी बिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न सोय।
बातों के पकवान से, धापा नाहीं कोय ॥६॥
लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट।
कहै कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥७॥
पढ़ि औरन समझावई, मन नहिँ बाँधै धीर।
रोटी का संसय पड़ा, यौं कहि दास कबीर ॥८॥
पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं, और बँधावत धीर ॥९॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी ॥१०॥
कथनी करि फूला फिरै, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ़ गँवार ॥११॥
कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरै भौजल पार ॥१२॥
पद जोरै साखी कहै, साधन परि गइ रोस।
काढ़ा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥१३॥
करनी को रज[1] मानही, कथनी मेरु[2] समान।
कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ़ अजान ॥१४॥
जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिँ।
मनुष नहीं वे स्वान गति, बाँधे जमपुर जाहिँ ॥१५॥
जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल।
तेहि सतगुरु नियरे रहै, पल में करै निहाल ॥१६॥
कबीर करनी क्या करै, जो गुरु नाहिँ सहाय।
जेहि जेहि डारी पग धरै, सो सो निव निव जाय ॥१७॥

(१) धूल, ज़र्रा। (२) पहाड़।

करनी करनी सब कहै, करनी माहिँ बिवेक ।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिँ परखै एक ॥१८॥
कथनी कथा तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय ।
कलावंत[1] का कोट ज्योँ, देखत ही ढहि जाय ॥१९॥
कथनी काँची हो गई, करनी करी न सार ।
स्रोता बकता मरि गये, मूरख अनँत अपार ॥२०॥
कूकस[2] कूटै कनि[3] बिना, बिन करनी का ज्ञान ।
ज्योँ बंदूक गोली बिना, भड़कि न मारै आन ॥२१॥
क़थनी को धीजूँ[4] नहीँ, करनी मेरा जीव ।
कथनी करनी दोउ थकी, (तब) महल पधारे पीव ॥२२॥
कथते हैँ करते नहीँ, मुख के बड़े लबार ।
मुँहड़ा काला होयगा, साहिब के दरबार ॥२३॥
कथते हैँ करते सही, साच सरोतर सोय ।
साहिब के दरबार में, आठ पहर सुख होय ॥२४॥
कबीर करनी आपनी, कबहुँ न निस्फल जाय ।
सात समुँद आड़ा पड़ै, मिलै अगाऊ आय ॥२५॥
जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुख की बाट ।
बोलत ही पहिचानिये, चोर साहु को घाट ॥२६॥
चोर चुराई तूँबड़ी, गाड़े पानी माहिँ ।
वह गाड़े तेँ ऊछलै, (योँ) करनी छानी[5] नाहिँ ॥२७
कथनी को तो भानि कै, करनी देइ बहाय ।
दास कबीरा योँ कहै, ऐसा होय तो आय ॥२८॥
साखी कहै गहै नहीँ, चाल चली नहिँ जाय ।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीँ ठहराय ॥२९॥

---
(१) बाज़ीगर। (२) भूसी। (३) ग़ल्ला, मींगी। (४) चाहूँ। (५) छिपी, ढकी।

जैसी करनी जासु की, तैसी भुगतै सोय।
बिन सतगुरु की भक्ति के, जन्म जन्म दुख होय ॥३०॥
मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥३१॥

सार गहनी का अंग।

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥१॥
पहिले फटकै छाँटि कै, थोथा सब उड़ि जाय।
उत्तम भाँड़े पाइया, जो फटके ठहराय ॥२॥
सतसंगति है सूप ज्यों, त्यागै फटकि असार।
कह कबीर गुरु नाम लै, परसै नाहिं बिकार ॥३॥
औगुन को तो ना गहै, गुनहीं को लै बीन।
घट घट महकै[1] मधुप[2] ज्यों, परमातम लै चीन्ह ॥४॥
हंसा पय को काढ़ि लै, छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥५॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप ब्यवहार।
हंस रूप कोइ साध है, तत का छाननहार ॥६॥
पारा कंचन काढ़ि लै, जो रे मिलावै आन।
कहै कबीरा सार मत, परगट किया बखान ॥७॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, जो रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, सार-गराही[3] लच्छ ॥८॥

---

(१) सूँघै। (२) भँवरा। (३) सार-ग्राही।

असार गहनी का अंग।

कबीर कीट सुगंधि तजि, नरक गहै दिन रात।
असार-ग्राही मानवा, गहै असारहि बात ॥१॥
मच्छी मल को गहत है, निर्मल बस्तुहिं छाड़ि।
कहै कबीर असार मति, माँड़ि रहा मन माँड़ि ॥२॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार ॥३॥
पापी पुन्न न भावई, पापहिं बहुत सुहाय।
माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुर्गंध तहँ जाय ॥४॥
रसहिं छाड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख।
गहै असारहिं सार तजि, हिरदे नाहिं बिबेक ॥५॥
दूध त्यागि रक्तै गहै, लगी पयोधर[1] जौंक।
कहै कबीर असार मति, लच्छन राखै कोक[2] ॥६॥
निर्मल छाड़ै मल गहै, जनम असारै खोय।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बिगोय ॥७॥
बूटी बाटी पान करि, कहै दुःख जो जाय।
कह कबीर सुख ना लहै, यही असार सुभाय ॥८॥

पारख का अंग।

जब गुन को गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय।
जब गुन को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाय ॥१॥
हरि हीरा जन जौहरी, लै लै माँडो हाट।
जब रे मिलैगा पारखी, तब हीरा का साट ॥२॥

---

(१) थन। (२) सरहंस जिसका अहार मछली है।

कबीर देखि के परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी ताय ॥३॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट।
कसि करि बाँधौ गाठरी, उठि करि चालौ बाट ॥४॥
एकहि बार परखिये, ना वा बारम्बार।
बालू तौहू किरकिरी, जौ छानै सौ बार ॥५॥
पिउ मोतियन की माल है, पोई काँचे धाग।
जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि ॥६॥
हीरा परखै जौहरी, सब्दहिं परखै साध।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध ॥७॥
हीरा पाया परखि कै, घन में दीया आनि।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचानि ॥८॥
जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाय ॥९॥
हंसा देस सुदेस का, परे कुदेसा आय।
जा का चारा मोतिया, घोंघे क्यौं पतियाय ॥१०॥
हंसा बगुला एकसा, मानसरोवर माहिं।
बगा ढँढोरै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥११॥
गावनिया के मुख बसौं, स्रोता के मैं कान।
ज्ञानी के हिरदे बसौं, भेदी का निज प्रान ॥१२॥
किर्तनिया से कोस बिस, सन्यासी से तीस।
गिरही के हिरदे बसौं, बैरागी के सीस ॥१३॥

अपारख का अंग।

चंदन गया बिदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास ॥१॥
एक अचंभा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरो, कौड़ी बदले जाय ॥२॥
हीरा साहिब नाम है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥३॥
वाद बके दम जात है, सुरति निरति लै बोल।
नित प्रति हीरा सबद का, गाहक आगे खोल ॥४॥
नाम रतन धन पाइ कै, गाँठि बाँध ना खोल।
नाहिं पटन[1] नहिं पारखी, नहिं गाहक नहिं मोल ॥५॥
जहँ गाहक तहँ मैं नहीं, मैं तहँ गाहक नाहिं।
परिचय बिन फूला फिरै, पकर सबद की बाहिं ॥६॥
कबीर खाँड़हिं छाड़ि कै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में, फिर पाछे पछिताय ॥७॥
कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी[2] चाम चटाय ॥८॥

---

(१) बाज़ार। (२) खड़ी।

कबीर साहिब का साखी संग्रह

[भाग २]

नाम का अंग।

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥१॥

आदि नाम बीरा[1] अहै, जीव सकल ल्यौ बूझि।
अमरावै सतलोक लै, जम नहिं पावै सूझि ॥२॥

आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो बंस ॥३॥

आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार[2]।
कह कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥४॥

कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय ॥५॥

राम राम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥६॥

ओंकार निश्चय भया, सो करता मत जान।
साचा सबद कबीर का, परदे में पहिचान ॥७॥

जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥८॥

---

(१) पान परवाना ; हुकमनामा। (२) शाखा।

नाम रतन धन मुज्झ मेँ, खान खुली घट माहिँ ।
सैँतमैँत ही देत हौँ, गाहक कोई नाहिँ ॥९॥
सभी रसायन हम करी, नाहिँ नाम सम कोय ।
रंचक घट मेँ संचरै, सब तन कंचन होय ॥१०॥
जबहिँ नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास ।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास ॥११॥
कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय ।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डेराय ॥१२॥
पूँजी मेरी नाम है, जा तेँ सदा निहाल ।
कबीर गरजै पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥१३॥
कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड ।
जम डरपै सब भय करैँ, गाजि रहा ब्रह्मंड ॥१४॥
नाम रतन सोइ पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहिँ होय ।
ज्ञान बिना नहिँ पावई, कोटि करै जो कोय ॥१५॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय ।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥१६॥
एक नाम को जानि कै, मेटु करम का अंक ।
तबहीँ सो सुचि[1] पाइहै, जब जिव होय निसंक ॥१७॥
एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय ।
तीरथ ब्रत जप तप नहीँ, सतगुरु चरन समाय ॥१८॥
जैसे फनपति[2] मंत्र सुनि, राखै फनहिँ सिकोरि ।
तैसे बौरा नाम तेँ, काल रहै मुख मोरि ॥१९॥
सब को नाम सुनावहूँ, जो आवैगो पास ।
सबद हमारो सत्य है, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२०॥

(१) पवित्रता । (२) साँप ।

होय विवेकी सबद का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचई, मानहु कहा हमार ॥२१॥
सुरति समावै नाम मैं, जग से रहै उदास।
कह कबीर गुरु चरन मैं, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२२॥
अस अवसर नहिँ पाइहो, धरो नाम कड़िहार[1]।
भवसागर तरि जाव तब, पलक न लागै बार ॥२३॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीँ घर करै, तैाहू मरै पियास ॥२४॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यौँ चौपर की सार[2] ॥२५॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥२६॥
कोटि करम कटि पलक मैँ, जो रंचक आवै नाँव।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीँ नाम बिनु ठाँव ॥२७॥
कबीर सतगुरु नाम मैं, सुरति रहै सरसार[3]।
तौ मुख तैँ मोती झरै, हीरा अनँत अपार ॥२८॥
सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ[4] रहै, ता की बेदन जाय ॥२९॥
कबीर सतगुरु नाम मैँ, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर ॥३०॥
सुपनहु मैं बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैँतरी[5], मेरे तन को चाम ॥३१॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिँ कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय ॥३२॥

---
(१) निकालने वाला। (२) गोट। (३) मस्त। (४) पहरेज़ी खाना। (५) जूती।

जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥३३॥
हय गय औरौ सघन घन, छत्र धुजा फहराय।
ता सुख तैं भिच्छा भली, नाम भजन दिन जाय ॥३४॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देँह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥३५॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल बेद का भेद।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारो बेद ॥३६॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब जा पारस भैंटिहै, तब जिव होसी सीव ॥३७॥
पारस रूपो नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥३८॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥३९॥
कबीर सतगुरु नाम से, कोटि बिघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा[1], केता काठ जराय ॥४०॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥४१॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल वेधि कै, तब अमरापुर जाय ॥४२॥
नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥४३॥
पावक रूपो नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय ॥४४॥

(१) आग।

नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास ॥४५॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्तनाम की लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे, प्रान जाहिं जब छूटि ॥४६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है।
यह निज मुक्ति सँदेस, सुनो संत सत भाव से ॥४७॥
क्यौं छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से ॥४८॥
काटहु जम के फंद, जेहिं फंदे जग फंदिया।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़ग सतगुरु दियो ॥४९॥
तजै काग की देँह, हंस दसा की सुरति पर।
मुक्ति सँदेसा येह, सत्त नाम परमान अस ॥५०॥
सत्त नाम विस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥५१॥

सुमिरन का अंग।

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईँ माहिं समाय ॥१॥
राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कह कबीर बड़ौं बड़ा, जो सुमिरै निःकाम ॥२॥
नर नारी सब नरक है, जब लगि देँह सकाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम ॥३॥
दुख मैँ सुमिरन सब करै, सुख मैँ करै न कोय।
जो सुख मैँ सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥४॥

सुख मेँ सुमिरन ना किया, दुख मेँ कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फिरियाद ॥५॥
सुमिरन की सुधि योँ करौ, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम ॥६॥
सुमिरन की सुधि योँ करौ, ज्यौँ गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति मेँ, कहै कबीर बिचार ॥७॥
सुमिरन की सुधि योँ करौ, ज्योँ सुरभी[१] सुत माहिँ।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिँ ॥८॥
सुमिरन की सुधि योँ करौ, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल ॥९॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग[२]।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग ॥१०॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक मेँ, जरत न मोड़ै अंग ॥११॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसरै आप को, होय जाय तेहि रंग ॥१२॥
सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुरे, सन कबीर कहि दीन ॥१३॥
सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तेँ कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल ॥१४॥
माला फेरत मन खुसी, ता तेँ कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय ॥१५॥
माला फेरत जुग गया, फिरा न मनका फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥१६॥

(१) गऊ। (२) मृग।

अजपा सुमिरन घट बिषे, दीन्हा सिरजनहार ।
ताही से मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार ॥१७॥
कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख ।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख ॥१८॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर ।
माला स्वास उस्वास की, जा मैं गाँठ न मेर ॥१९॥
माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत हो मोय ।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय ॥२०॥
क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहुँ ओर ।
जेहि फेरे साईं मिलै, सो भया काठ कठोर ॥२१॥
माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिं खोय ।
गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय ॥२२॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम ।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम ॥२३॥
सहजेही धुन होत है, हर दम घट के माहिं ।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिं ॥२४॥
माला तो कर मैं फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥२५॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय ।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥२६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
सुरत समानी सबद मैं, ताहि काल नहिं खाय ॥२७॥
जा की पूँजी स्वास है, छिन आवै छिन जाय ।
ता को ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥२८॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, कहौं बजाये ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥२९॥
ऐसे महँगे मोल का, एक स्वास जो जाय।
चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय ॥३०॥
कबीर छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
या को टुकड़ा डारि करि, सुमिरन करो निसंक ॥३१॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस ॥३२॥
सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिँ छाड़िये, सत्तनाम की टेक ॥३३॥
नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत।
छेरी के गल गलथना, जा मैं दूध न मूत ॥३४॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान ॥३५॥
पाँच सखी पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥३६॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥३७॥
सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वास उस्वास जो सुमिरता, इक दिन मिलसी आय ॥३८॥
माला स्वास उस्वास की, फेरै कोइ निज दास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै करम की फाँस ॥३९॥
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम से यों कह्यो, सुमिरन करो समाय ॥४०॥

कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल ॥४१॥
निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार ॥४२॥
थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत न लगै बिनावनी, सहजै अति सुख होय ॥४३॥
साईं योँ मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त ॥४४॥
जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिँ।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिँ ॥४५॥
सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निःकामी सुमिरन करै, पावै अबिचल नाम ॥४६॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैँ, तुम मोहिँ चितवत नाहिँ।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीँ माहिँ ॥४७॥
कबिरा हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिँगे छूटि।
घर के प्यारे आदमी, चलते लैँगे लूटि ॥४८॥
कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटै बाती बुझै, तब सोवो दिन राति ॥४९॥
जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल छाड़ि कै, जहाँ नाम तहँ जाय ॥५०॥
कबीर चित चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय[1]।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय ॥५१॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कौने काम ॥५२॥

(१) आग।

सत्त नाम को सुमिरना, हँस करि भावै खीज[1] ।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्यों बीज ॥५३॥

स्वास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय ।
और स्वास योंही गये, करि करि बहुत उपाय ॥५४॥

कहा भरोसा देह का, बिनसि जाय छिन माहिं ।
स्वास स्वास सुमिरन करो, और जतन कछु नाहिं ॥५५॥

जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय ।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥५६॥

बिना साच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय ।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥५७॥

कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर ।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ो साच कबीर ॥५८॥

हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल[2] ।
छवि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल ॥५९॥

सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय ।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, तहू न निरफल जाय ॥६०॥

देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम ।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥६१॥

नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥६२॥

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय ।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥६३॥

---

(१) चाहे हँसते हुए चाहे खिजलाहट के साथ । (२) लगा हुआ ।

शब्द का अंग ।

कबीर सबद सरीर मैं, बिन गुन[1] बाजै ताँत ।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तैं छूटी भ्रांति ॥१॥
जो जन खोजी सबद का, धन्य संत है सोय ।
कह कबीर सबदै गहे, कबहुँ न जाय बिगोय ॥२॥
सबद सबद बहु अंतरा, सबद सार का सीर ।
सबद सबद का खोजना, सबद सबद का पीर ॥३॥
सबद सबद बहु अंतरा, सार सबद चित देय ।
जा सबदै साहिब मिलै, सोई सबद गहि लेय ॥४॥
सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह ।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह ॥५॥
एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास ।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस ॥६॥
सबद सबद सब कोइ कहै, सबद के हाथ न पाँव ।
एक सबद औषधि करै, एक सबद करै घाव ॥७॥
सीखै सुनै बिचारि लै, ताहि सबद सुख देय ।
बिना समझ सबदै गहै, कछू न लाहा लेय ॥८॥
सबद हमारा आदि का, पल पल करिये याद ।
अंत फलैगी माहिँ की, बाहर की सब बाद ॥९॥
सबदहि मारे मरि गये, सबदहि तजिया राज ।
जिन जिन सबद पिछानिया, सरिया तिन का काज ॥१०॥
सबद गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार ।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥११॥

---

(१) रस्सी ।

सबद हमारा हम सबद के, सबदहि लेय परक्ख।
जो तूँ चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क ॥१२॥
सबद हमारा हम सबद के, सबद ब्रह्म का कूप।
जो चाहै दीदार को, परख सबद का रूप ॥१३॥
एक सबद गुरुदेव का, जा का अनँत बिचार।
पंडित थाके मुनि जना, बेद न पावै पार ॥१४॥
सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय॥१५॥
यही बड़ाई सबद की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना सबद नहिं ऊबरै, केता करै उपाय ॥१६॥
सही टेक है तासु की, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥१७॥
काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहिं नजरि न आइ।
कह कबीर गुरु सबद गहि, जम से जीव बचाइ ॥१८॥
ऐसा मारा सबद का, मुआ न दीसै कोय।
कह कबीर सो ऊबरै, धड़ पर सीस न होय ॥१९॥
सबद बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सबदहिं मोल न तोल ॥२०॥
सबद दुराया ना दुरै, कहौं जो ढोल बजाय।
जो जन होवै जौहरी, लेहै सीस चढ़ाय ॥२१॥
सबद पाय स्रुति राखही, सो पहुँचै दरबार।
कह कबीर तहँ देखई, बैठे पुरुष हमार ॥२२॥
औरै दारू सब करी, पै सुभाव की नाहिं।
सो दारू सतगुरु करी, रहै सबद के माहिं ॥२३॥

सब्द उपदेस जो मैं कहूँ, जो कोइ मानै संत ।
कहै कबीर बिचारि के, ताहि मिलाऔं कंत ॥२४॥
मता हमारा मंत्र है, हम सा होय सो लेय ।
सबद हमारा कल्प-तरु, जो चाहै सो देय ॥२५॥
रैन समानी भानु में, भानु अकासे माहिं ।
अकास समाना सबद में, सबद परे कछु नाहिं ॥२६॥
सबद कहाँ से उठत है, कहँ को जाइ समाय ।
हाथ पाँव वा के नहीं, कैसे पकरा जाय ॥२७॥
सहस कँवल तें उठत है, सुन्नहिं जाय समाय ।
हाथ पाँव वा के नहीं, सुति तें पकरा जाय ॥२८॥
सबद कहाँ तें आइया, कहाँ सबद का भाव ।
कहाँ सबद का सीस है, कहाँ सबद का पाँव ॥२९॥
सबद ब्रह्मंड तें आइया, मध्य सबद का भाव ।
ज्ञान सबद का सीस है, अज्ञान सबद का पाँव ॥३०॥
सीतल सबद उचारिये, अहं आनिये नाहिं ।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुझ माहिं ॥३१॥
सबद भेद तब जानिये, रहै सब्द के माहिं ।
सबदै सबद प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिं ॥३२॥
सोई सबद निज सार है, जो गुरु दिया बताय ।
बलिहारी वा गुरू की, सिष्य बिगोय[1] न जाय ॥३३॥
वह मोती मत जानियो, पुहै पोत के साथ ।
यह तौ मोती सबद का, बेधि रहा सब गात ॥३४॥
बलिहारी वहि दूध की, जा मैं निकसत घीव ।
आधी साखि कबीर की, चार बेद को जीव ॥३५॥

---

(१) भरम या धोखे में न पड़ जाय ।

सबद अहै गाहक नहीं, बस्तु सो गरुआ मोल।
बिना दाम को मानवा, फिरता डाँवाँडोल ॥३६॥
रैनि तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय।
सार सबद के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय ॥३७॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार सबद जाने बिना, कागा हंस न होय ॥३८॥
सत्त सबद निज जानि कै, जिन कीन्हा परतीति।
काग कुमति तजि हंस ह्वै, चले सो भव जल जीति ॥३९॥
सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त सबद निज सार है, यह तो झूठी देँहि ॥४०॥
सार सबद जाने बिना, जिव परलै मेँ जाय।
काया माया थिर नहीं, सबद लेहु अरथाय ॥४१॥
कर्म फंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान।
जेहि सबद तेँ मुक्ति ह्वै, सो न परै पहिचान ॥४२॥
सतजुग त्रेता द्वापरा, यहि कलिजुग अनुमान।
सार सबद इक साच है, और झूठ सब ज्ञान ॥४३॥
पृथ्वी अप[1] हूँ तेज नहिँ, नहीं वायु आकास।
अललपच्छ तहँ ह्वै रहै, सत्त सबद परकास ॥४४॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सबद प्रमान, अनहद बानी ऊचरै।
और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै ॥४५॥
ज्ञानी सुनहु सँदेस, सबद बिबेकी पेखिया।
कह्यौ मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥४६॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन ह्वै।
नहिँ आवै नहिँ जाय, सुन्न सबद थिति पावही ॥४७॥

---

(१) जल।

ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही से पाइये।
सत्त सबद निज सार, और सबै बिस्तार है ॥४८॥
जग में बहु परिपंच, ता में जीव भुलान सब।
नहिँ पावै कोइ संच, सार सबद जाने बिना ॥४९॥
गहै सबद निज मूल, सिंधहिँ बुंद समान है।
सूच्छम में अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्यौं ॥५०॥

॥ साखी ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद हूँ मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ता को क़ाल न खाय ॥५१॥

बिनती का अंग।

बिनवत हौँ कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
साध सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥१॥
जो अब के सतगुरु मिलैँ, सब दुख आखौँ[१] रोय।
चरनौँ ऊपर सीस धरि, कहौँ जो कहना होय ॥२॥
मेरे सतगुरु मिलैँगे, पूछैँगे कुसलात।
आदि अंत की सब कहौँ, उर अंतर की बात ॥३॥
सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैँ भवजल माहिँ।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिँ पकरौ बाहिँ ॥४॥
क्या मुख लै बिनती करौँ, लाज आवत है मोहिँ।
तुम देखत औगुन करौँ, कैसे भावौँ तोहिँ ॥५॥
सतगुरु तोहि बिसारि कै, का के सरनै जायँ।
सिव बिरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहिँ समायँ ॥६॥
मैँ अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करौ सम्हार ॥७॥

(१) कहूँ।

अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥८॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार ॥९॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त।
साहिब गरुआ लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित्त ॥१०॥
साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं ॥११॥
साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं ॥१२॥
औसर बीता अलप तन, पीव रहा परदेस।
कलँक उतारौ साइयाँ, भानौ भरम अँदेस ॥१३॥
कर जोरे बिनती करौं, भवसागर आपार।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार ॥१४॥
अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार।
जो तुम छोड़ौ हाथ तेँ, कौन उतारै पार ॥१५॥
भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह[1]।
तुम दयाल दाया करो, तब पाऔं कछु थाह ॥१६॥
साहिब तुमहिं दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥१७॥
साईं तेरा कछु नहीं, मेरा होय अकाज।
बिरद[2] तुम्हारे नाम की, सरन परे की लाज ॥१८॥
मेरा मन जो तोहिं से, यों जो तेरा होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै नहिं कोय[3] ॥१९॥

(१) अथाह। (२) महिमा (३) जब दोनों टुकड़े लोहे के गरम हों तब बेमालूम जोड़ लग सकता है।

मेरा मन जो तोहिँ से, तेरा मन कहिँ और।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
मुझ में औगुन तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ।
जो मैं बिसरौं तुज्झ को, तू मत बिसरै मुज्झ ॥२१॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन मैं ढंग।
ना जानौं उस पीव से, क्यौंकर रहसी रंग ॥२२॥
जिन को साईं रँगि दिया, कबहुँ न होहिं कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी[1], चढ़ै सवाया रंग ॥२३॥
मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तुज़्झ।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मुज्झ ॥२४॥
औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावैं ठौर ॥२५॥
तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकरो बाहिँ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माहिँ ॥२६॥
कबीर करत है बीनती, सुनो संत चित लाय।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहिँ बताय ॥२७॥
सतगुरु बड़े दयाल हैं, संतन के आधार।
भवसागरहि अथाह से, खेइ उतारैं पार ॥२८॥
भक्ति दान मोहिँ दीजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये, निसु दिन तेरी सेव ॥२९॥

उपदेश का अंग।

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल ॥१॥

---

(१) उग्र।

दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से[1], लोह भसम ह्वै जाय ॥२॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥३॥
या दुनिया में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥४॥
खाय पकाय लुटाइ ले, है मनुवाँ मिहमान।
लेना होय सो लेइ ले, यही गोय[2] मैदान ॥५॥
लेना होय सो लेइ ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग जुग चली, आवा गवन बँधान ॥६॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥७॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय ॥८॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूँसन दे झख मारि ॥९॥
बाजन देहू जंतरी, कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेड़ ॥१०॥
कबीर काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि डरिये नहीं, कूकर भुँसै हजार ॥११॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहै कबीर नहिँ उलटिये, वही एक की एक ॥१२॥

॥ सोरठा ॥

गारी मोटा[3] ज्ञान, जो रंचक उर में जरै।
कोटि सँवारै काम, बैरि उलटि पाँयन परै ॥१३॥

---

(१) भाथी या धौंकनी जो बिना जीव की होती है उसकी हवा से लोहा गल जाता है। (२) गेंद। (३) बड़ा।

गारी ही से ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच ॥१४॥
हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु से मिलै, जीता जम की लार ॥१५॥
जेता घट तेता मता, घट घट ग्रौर सुभाव।
जा घट हार न जीत है, ता घट ज्ञान समाव ॥१६॥
जैसा अन जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥१७॥
माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख।
माँगन तेँ मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१८॥
उदर समाता माँगि लै, ता को नाहीँ दोष।
कह कबीर अधिका गहै, ता की गती न मोष ॥१९॥
उदर समाता अन्न लै, तनहिँ समाता चीर।
अधिकहिँ संग्रह ना करै, ता का नाम फकीर ॥२०॥
कथा कीरतन कलि बिषे, भौसागर की नाव।
कह कबीर जग तरन को, नाहीँ और उपाव ॥२१॥
कथा कीरतन छोड़ करि, करै जो और उपाय।
कह कबीर ता साध के, पास कोई मत जाय ॥२२॥
कथा कीरतन करन की, जा के निसु दिन रीति।
कह कबीर वा दास से, निस्चय कीजै प्रीति ॥२३॥
कथा कीरतन रात दिन, जा के उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥२४॥
कथा करो करतार की, निसु दिन साँझ सकार।
काम कथा को परिहरो, कहै कबीर बिचार ॥२५॥

काम कथा सुनिये नहीं, सुन करि उपजै काम।
कहै कबीर बिचार करि, बिसर जात है नाम ॥२६॥
कबीर संगी साधु का, दल आया भरपूर।
इन्द्रिन को तब बाँधिया, या तन कीया धूर ॥२७॥
कहते को कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को, फिर जवाब मत देइ ॥२८॥
जो कोइ समझै सैन में, ता से कहिये बैन।
सैन बैन समझै नहीं, ता से कछु नहिं कहन ॥२९॥
बहते को बहि जान दे, मत पकड़ावै ठौर।
समझाया समझै नहीं, दे दुइ धक्के और ॥३०॥
बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, बचन कहो दुइ और ॥३१॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तो पावै दीदार।
औसर मानुष जन्म का, बहुरि न बारम्बार ॥३२॥
मन राजा नायक भया, टाँडा लादा जाय।
हैहै हैहै है रही, पूँजी गई बिलाय ॥३३॥
जीवत कोइ समझै नहीं, मुआ न कहै सँदेस।
तन मन से परिचय नहीं, ता को क्या उपदेस ॥३४॥
जेहि जेवरि तेँ जग बँधा, तूँ जनि बँधै कबीर।
जासी आटा लोन ज्यौं, सोन समान सरीर ॥३५॥
जिन गुरु जैसा जानिया, तिन को तैसा लाभ।
ओसे प्यास न भागसी, जब लगि धसै न आब[1] ॥३६॥
जिभ्या को दे बंधने, बहु बोलना निवारि।
सो पारख से संग करु, गुरुमुख सबद बिचारि ॥३७॥

---

(१) पानी।

जा की जिभ्या बंद नहिं, हिरदे नाहीं साच ।
ता के संग ना लागिये, घालै बटिया काच[1] ॥३८॥
सकल दुरमती दूर करि, आछो जनम बनाव ।
काग गमन गति छाड़ि दे, हंस गमन गति आव ॥३९॥
कर बंदगी बिबेक की, भेष धरे सब कोय ।
वह बँदगी बहि जान दे, जहँ सबद बिबेक न होय ॥४०॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार ।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥४१॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर ।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥४२॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥४३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥४४॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुप करि दीजे ताल[2] ।
पारख आगे खोलिये, कुंजी बचन रसाल ॥४५॥
साध संत तेई जना, जिन माना बचन हमार ।
आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥४६॥
पानी प्यावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि ।
जो जन तिरषावंत है, पीवैगा झख मारि ॥४७॥
जो तू चाहै मुज्झ को, छाड़ि सकल की आस ।
मुझ ही ऐसा ह्वै रहै, सब सुख तेरे पास ॥४८॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं सबद समाय ।
कोटिक गुन सूवा पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥४९॥

---

(१) कच्चे रास्ते में यानी कुराह में गिरा देगा । (२) ताला ।

अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय ।
चतुराई नहिं छूटसी, सुरत सबद में पोय ॥५०॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल ।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ॥५१॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईंट ।
कबीर अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥५२॥
नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥५३॥
कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान ।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान ॥५४॥
करता था तो क्यौं रहा, अब करि क्यौं पछिताय ।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय ॥५५॥

सामर्थ का अंग ।

साहिब से सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं ।
राई तें पर्बत करै, पर्वत राई नाइँ[1] ॥१॥
बहन बहंता थल करै, थल कर बहन बहोय ।
साहिब हाथ बड़ाइया, जस भावै तस होय ॥२॥
साहिब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥३॥
ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर ।
जो कछु किया साहिब किया, ता तें भया कबीर ॥४॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं ।
कहैं कहीं जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं ॥५॥

(१) तुल्य ।

कीया कछू न होत है, अनकीया ही होय।
कीया जो कछु होय तो, करता औरै कोय ॥६॥
जिस नहिं कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब होय।
दरगह तेरी साइयाँ, मेटि न सक्कै कोय ॥७॥
इत कूआ उत बावड़ी, इत उत थाह अथाह।
दुहूँ दिसा फनि[1] फन कढ़े; समरथ पार लगाहि ॥८॥
घट समुद्र लखि ना परै, उट्ठै लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारै पार ॥९॥
अबरन को क्या बरनिये, मो पै बरनि न जाय।
अबरन बरन तेँ बाहिरा, करि करि थका उपाय ॥१०॥
मो में इतनी सक्ति कहँ, गाऊँ गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥११॥
साईं तुझ से बाहिरा, कौड़ी नाहिँ बिकाय।
जा के सिर पर तू धनी, लाखौँ मोल कराय ॥१२॥
साईं मेरा बानिया, सहज करै ब्योपार।
बिन डाँड़ी बिन पालरे, तौलै सब संसार ॥१३॥
धन धन साहिब तूँ बड़ा, तेरी अनुपम रीत।
सकल भूप सिर साइयाँ, ह्वै कर रहा अतीत ॥१४॥
बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहिँ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिँ ॥१५॥

निज करता के निर्णय का अंग।

अछै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वा की डार।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥१॥

---

(१) साँप।

नाद बिंदु तेँ अगम अगोचर, पाँच तत्त तेँ न्यार।
तीन गुनन तेँ भिन्न है, पुरुष अलक्ख अपार ॥२॥
तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पस्यो संसार।
कह कबीर निज नाम बिनु, कैसे उतरै पार ॥३॥
हरा होय सूखै सही, योँ तिरगुन बिस्तार।
प्रथमहिँ ता को सुमिरिये, जा का सकल पसार ॥४॥
सबद सुरति के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान।
लखनेहारा लखि लिया, जा को है गुरु ज्ञान ॥५॥
हम तो लखा तिहुँ लोक मेँ, तुम क्यौँ कहौ अलेख।
सार सबद जाना नहीँ, धोखे पहिरा भेख ॥६॥
राम कृस्न अवतार हैँ, इन की नाहीँ माँड।
जिन साहिब स्रिष्टी किया, (सो) किनहुँ न जाया राँड ॥७॥
संपुट माहिँ समाइया, सो साहिब नहिँ होय।
सकल माँड में रमि रहा, मेरा साहिब सोय ॥८॥
साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहिब जो कहूँ, साहिब खरा रिसाय ॥९॥
जा के मुँह माथा नहीँ, नाहीँ रूप अरूप।
पुहुप बास तेँ पातरा, ऐसा तत्व अनूप ॥१०॥
देँही माहिँ बिदेह है, साहिब सुरत सरूप।
अनँत लोक मेँ रमि रहा, जा के रंग न रूप ॥११॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार।
पाँच तत्त्व के भीतरे, जा का यह संसार ॥१२॥
चार भुजा के भजन मेँ, भूलि परे सब संत।
कबीर सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनंत ॥१३॥

निबल सबल जो जानि कै, नाम धरा जगदीस ।
कहै कबीर जनमै मरै, ताहि धरूँ नहिँ सीस ॥१४॥
जनम मरन से रहित है, मेरा साहिब सोय ।
बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय ॥१५॥
समुँद पाटि लंका गयो, सीता को भरतार ।
ताहि अगस्त अचै[1] गयो, इन मेँ को करतार ॥१६॥
गिरवर धार्‌यो कृस्न जी, द्रोनागिरि हनुमंत ।
सेस नाग सब सृष्टि सहारी, इन मेँ को भगवंत ॥१७॥
राम कृस्न को जिन किया, सो तो करता न्यार ।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार ॥१८॥

घट मठ (सर्ब घट ब्यापी) का अंग ।

कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिँ ।
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिँ ॥१॥
तेरा साईँ तुज्झ में, ज्यौँ पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्योँ, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास ॥२॥
जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तो घटही माहिँ ।
परदा दीया भरम का, ता तेँ सूझै नाहिँ ॥३॥
समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय ।
तेरा साहिब तुज्झ मेँ, अंत कहूँ मत जाय ॥४॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ॥५॥
जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख ।
सब घट ब्यापक ह्वै रहा, सोई आप अलेख ॥६॥

---

(१) कथा है कि अगस्त मुनि ने समुद्र का पानी सब पी लिया था ।

भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बँधि गइ बेल ।
तेरा साइँ तुज्झ मैं, ज्यौं तिल माहीं तेल ॥७॥
ज्यौं तिल माहीं तेल है, ज्योँ चकमक मैं आगि ।
तेरा साइँ तुज्झ मैं, जागि सकै तो जागि ॥८॥
ज्योँ नैनन मैं पूतरी, योँ खालिक घट माहिँ ।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिँ ॥९॥
पुहुप मध्य ज्योँ बास है, ब्यापि रहा सब माहिँ ।
संतौं माहीं पाइये, और कहूँ कछु नाहिँ ॥१०॥
पावक रूपी साइयाँ, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक लागै नहीं, ता तेँ बुझि बुझि जाय ॥११॥

समदृष्टी का अंग ।

समदृष्टी सतगुरु किया, भर्म किया सब दूर ।
भया उँजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर ॥१॥
समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अबिचल ज्ञान ।
जहँ देखौं तहँ एकही, दूजा नाहीं आन ॥२॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार ।
जहँ देखौं तहँ एकही, साहिब का दीदार ॥३॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय ।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय ॥४॥

भेदी का अंग ।

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय ।
सेरी पावै सबद की, निर्भय आवै जाय ॥१॥

भेदी जानै सबै गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जा के लागा बान ॥२॥
भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अंतर धोई आत्मा, धोया निर्गुन चीर ॥३॥
भेद ज्ञान तौ लौं भला, जौ लौं मेल न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ बिकल्प नहिं कोय ॥४॥

परिचय का अंग।

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय ॥१॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ॥२॥
जिन पावन भुइँ बहु फिरे, घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ॥३॥
उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहिब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत ॥४॥
जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचा तान।
उलटि समाना आप में, हूआ ब्रह्म समान ॥५॥
हम बासी वा देस के, जहँ सत्त पुरुष की आन।
दुख सुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥६॥
हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल, तेज पुंज परकास ॥७॥
संसय करौं न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥८॥

बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस।
बिना देंह का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥९॥
नोन गला पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन।
सुरत सबद मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥१०॥
हिलि मिलि खेलौं सबद से, अंतर रही न रेख।
समझे का मति एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥११॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन।
निज मन धसा स्वरूप में, सतगुरु दीन्ही सैन ॥१२॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥१३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥१४॥
उनमुनि लागी सुन्न में, निसु दिन रहि गलतान।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरबान ॥१५॥
उनमुनि चढ़ी अकास को, गई धरनि से छूटि।
हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूटि ॥१६॥
उनमुनि से मन लागिया, गगनहिं पहुँचा जाय।
चाँद बिहूना चाँदना, अलख निरंजनराय ॥१७॥
मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१८॥
सुरति समानी निरति मेँ, अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलेख मेँ, आपा माहीं आप ॥१९॥
सुरति समानी निरति मेँ, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परिचय भया, तब खुला सिंधु दुवार ॥२०॥

गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप।
निसु बासर सुख-निधि लहैं, अन्तर प्रगटे आप ॥२१॥
कौतुक देखा दैंह बिनु, रबि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माहिं है, बेपरवाही दास ॥२२॥
पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरनि आकास।
तहाँ कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ॥२३॥
अगवानी तो आइया, ज्ञान बिचार बिबेक।
पीछे गुरु भी आयँगे, सारे साज समेत ॥२४॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे की सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥२५॥
सुरज समाना चाँद मैं, दोऊ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, पूर्ब जनम का लेख ॥२६॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥२७॥
आया था संसार में, देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप ॥२८॥
पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद।
रतन निराला पाइया, जगत टटोला बाद ॥२९॥
कबीर देखा एक अँग, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥३०॥
नँव बिहूना देहरा, दैंह बिहूना देव।
तहाँ कबीर बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३१॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥३२॥

आकासै औंधा कुआँ, पातालै पनिहार।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥३३॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥३४॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोरि ॥३५॥
दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरं देव।
चार बेद की गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव ॥३६॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिँ।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिँ ॥३७॥
मानसरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय।
मुकताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥३८॥
सुन्न मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल ॥३९॥
पूरे से परिचय भया, दुख सुख मेला दूरि।
जम से बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥४०॥
सुरति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय।
सुख पाया साहिब मिला, आनँद उर न समाय ॥४१॥
जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिँ जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, (तहँ) रहा कबीर समाय ॥४२॥
कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन।
पति सँग जागी सुन्दरी, कौतुक देखा नैन ॥४३॥
अगम अगोचर गम नहीं, जहाँ झिलमिलै जोत।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिँ छोत ॥४४॥

कबीर मन मधुकर भया, कीया नर तरु बास।
कँवल जो फूला नीर बिन, कोइ निरखै निज दास ॥४५॥
सीप नहीं सायर नहीं, स्वाँति बुंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजे, सुन्न सिखर घट माहिं ॥४६॥
घट में औघट पाइया, औघट माहीं घाट।
कह कबीर परिचय भया, गुरू दिखाई बाट ॥४७॥
जहँ मोतियन की झालरी, हीरन का परकास।
चाँद सूर की गम नहीं, दरसन पावै दास ॥४८॥
कछु करनी कछु कर्म गति, कछु पूरबला लेख।
देखो भाग कबीर का, दोसत[1] किया अलेख ॥४९॥
पानी हीं तें हिम भया, हिम हीं गया बिलाय।
कबीर जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय ॥५०॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं ते सन्मुख भया, लगा कबीरा पाँय ॥५१॥
पंछी उड़ाना गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चौंच बिन, भूल गया यह देस ॥५२॥
सुचि[2] पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, साहिब मिला हजूर ॥५३॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कतहुँ न लाग।
ज्वाला तें फिरि जल भया, बुझी जलन्ती आग ॥५४॥
तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान।
तपन मिटी सीतल भया, सुन्न किया असनान ॥५५॥
कबीर दिल दरिया मिला, फल पाया समरत्थ।
सायर माहिं ढँढोलता, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥५६॥

---

(१) मित्र। (२) पवित्रता।

जा कारन मैं जाय था, सो तो पाया ठौर।
सोही फिर आपन भया, जा को कहता और ॥५७॥
कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥५८॥
गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास।
तहाँ कबीरा बन्दगी, करि कोइ निज दास ॥५९॥
जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥६०॥
नहीं हाट नहिं बाट था, नहिं धरती नहिं नीर।
असंख जुग परलय गया, तब की कहै कबीर ॥६१॥
पाँच तत्त गुन तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहाँ कबीरा घर किया, तहँ दत्त[1] न गोरख राम ॥६२॥
सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ॥६३॥
हम बासी उस देस के, जहाँ ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल ॥६४॥
हम बासी उस देस के, (जहँ) जाति बरन कुल नाहिं।
सबद मिलावा ह्वै रहा, दैंह मिलावा नाहिं ॥६५॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी मिला, यों हरिजन हरि माहिं ॥६६॥
कबीर कमल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहँ होय।
मन भँवरा जहँ लुबधिया, जानैगा जन कोय ॥६७॥
सून्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख बिलसही, कोइ बिरला जाने भेव ॥६८॥

---

(१) दत्तात्रेय।

मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं ॥६९॥
गुन इंद्री सहजै गये, सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥७०॥

मौन का अंग।

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलुका कहूँ तो झीठ[1]।
मैं क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ ॥१॥
दीठा है तो कस कहूँ, कहूँ तो को पतियाय।
साईं जस तैसा रहो, हरखि हरखि गुन गाय ॥२॥
ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय।
बेद कुराना ना लिखी, कहूँ तो को पतियाय ॥३॥
जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग सरवन काहि ॥४॥
जो पकरै सो चलै नहिं, चलै सो पकरै नाहिं।
कह कबीर यह साखि को, अरथ समझ मन माहिं ॥५॥
गगन दुवारे मन गया, करै अमी रस पान।
रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान ॥६॥
जानि बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्बल होय।
कह कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिं कोय ॥७॥
बाद बिबादे त्रिष घना, बोले बहुत उपाध।
मौनि गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥८॥

---

(१) झूठ।

सजीवन का अंग।

जरा मीच ब्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयाँ होय ॥१॥
भवसागर तें यों रहो, ज्यों जल कँवल निरोल।
मनुवा व्हाँ लै राखिये, जहाँ नहीं जम काल ॥२॥
कबीर जोगी बन बसा, खनि खाया कँदमूल।
ना जानौं केहि जड़ी से, अमर भया अस्थूल ॥३॥
कबीर तो पिउ पै चला, माया मोह से तोरि।
गगन मँडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥४॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान।
चित चरनों से चिपटिया, का करै काल का बान ॥५॥

जीवत मृतक का अंग।

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरू, मत दुख पावै दास ॥१॥
कबीर काया समुँद है, अंत न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय ॥२॥
मैं मरजीवा[१] समुँद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा में बस्तु अनेक ॥३॥
डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास ॥४॥
हरि हीरा क्यों पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया से काढ़सी, कोइ मरजीवा दास ॥५॥

---

(१) समुद्र में डुबकी मार कर मोती निकालने वाला।

सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अंतर नाम रतन ॥६॥
मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल ॥७॥
मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिँ।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिँ ॥८॥
गुरु दरिया सूभर[1] भरा, जा में मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा की खाल ॥९॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय ॥१०
ऊँचा तरवर[2] गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय ॥११॥
जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहै बजाय ॥१२॥
कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरैं, कहैं कबीर कबीर ॥१३॥
मन को मिरतक देखि के, मत मानै बिस्वास।
साध जहाँ लौं भय करैं, जब लग पिंजर स्वास ॥१४॥
मैं जानौं मन मरि गया, मरि के हूआ भूत।
मूए पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥१६॥
बैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जा के नाम अधार ॥१७॥

---

(१) प्रकाशमान। (२) पेड़।

जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर रु अम्मर होय ॥१८॥

मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूट।
गगन मँडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१९॥

मोहिं मरने का चाव है, मरौं तो गुरू दुवार।
मत गुरु बूझै बात री, कोइ दास मुआ दरबार ॥२०॥

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानंद ॥२१॥

भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये साकित बापुरे, जो हाटो हाट बिकाय ॥२२॥

मरना भला बिदेस का, जहँ अपना नाहिं कोय।
जीव जंत भोजन करैं, सहज महोच्छव होय ॥२३॥

कबीर मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, ज्यों गऊ बछा की लार ॥२४॥

सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥२५॥

जिन पाँवन भुइँ बहु फिरा, देखा देस बिदेस।
तिन पाँवन थिति पकरिया, आँगन भया बिदेस ॥२६॥

पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय ॥२७॥

आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय ॥२८॥

घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय ॥२९॥

कबीर चेरा संत का, दासनहू का दास।
अब तो ऐसा होइ रहु, ज्यों पाँव तले की घास॥३०॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम॥३१॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यों पैंड़े की खेह॥३२॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग॥३३॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय॥३४॥
हरि भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निरमल होय॥३५॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल तें रहित है, ते साधू कोइ और॥३६॥

साध का अंग।

साध बड़े परमारथी, घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय॥१॥
सद कृपाल दुख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जो होय॥२॥
दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहिं व्याप।
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप॥३॥
सदा रहै संतोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त बिचार॥४॥

सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात ।
निरबिकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात ॥५॥
निरबैरी निःकामता, स्वामी सेती नेह ।
बिषया से न्यारा रहै, साधन का मति येह ॥६॥
मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान ।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥७॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मति, अति उदार चित होय ।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥८॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥९॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत ।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥१०॥
निस्चय भल अरु दृढ़ मता, ये सब लच्छन जान ।
साध सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥११॥
ऐसा साधू खोजि कै, रहिये चरनौं लाग ।
मिटै जनम की कलपना, जा के पूरन भाग ॥१२॥
सिंहौं के लेहँड़े नहीं, हंसौं की नहिं पाँत ।
लालौं की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात[1] ॥१३॥
सब बन तो चंदन नहीं, सूरा का दल नाहिं ।
सब समुद्र मोती नहीं, यौं साधू जग माहिं ॥१४॥
स्वाँगी सब संसार है, साधू समझ अपार ।
अललपच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१५॥
सिंह साध का एक मति, जीवत ही को खाय ।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥१६॥

---

(१) गरोह, भीड़ भाड़ ।

रबि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़ै घमंड।
साध बचन पलटै नहीं, (जो) पलटि जाय ब्रह्मंड ॥१७॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगाय तो गिरि पड़ै, निःचल उतरै पार ॥१८॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों लम्बी पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१९॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिं।
डिंभ चाल करनी करै, साध कहो मत ताहि ॥२०॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥२१॥
आवत साध न हरषिया, जात न दीया रोय।
कह कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥२२॥
छाजन भोजन प्रीति से, दीजै साध बुलाय।
जीवत जस है जक्त में, अंत परम पद पाय ॥२३॥
साध हमारी आत्मा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे यों रहौं, ज्यों पय मद्धे घीव ॥२४॥
ज्यों पय मद्धे घीव है, त्यों रमिया सब ठौर।
बक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़ैं ते और ॥२५॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालौ[1] अंग।
कह कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥२६॥
बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधन धरा सरीर ॥२७॥
साधू आवत देखि कर, हँसी हमारी देँह।
माथे का ग्रह ऊतरा, नैनों बँधा सनेह ॥२८॥

---

(१) धोओ।

साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥२९॥
साधु साधु सब एक हैं, जस पोस्ता का खेत।
कोई बिबेकी लाल है, कोई सेत का सेत ॥३०॥
निराकार की आरसी, साधौं हीं की देहि।
लखा जो चाहै अलख को, (तो) इनहीं में लखि लेहि ॥३१॥
कोई आवै भाव लै, कोइ अभाव लै आव।
साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनैं अभाव ॥३२॥
कबीर दरसन साध का, करत न कीजै कानि।
(ज्यों) उद्यम से लछमी मिलै, आलस में नित हानि ॥३३॥
कबीर दरसन साध का, साहिब आवैं याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥३४॥
खाली साध न भेंटिये, सुन लीजे सब कोय।
कहैं कबीरा भेंट धरु, जो तेरे घर होय ॥३५॥
मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास।
गगन मँडल खाली पड़ा, साहिब संतों पास ॥३६॥
नहिँ सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिँ सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥३७॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, ज्यों रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥३८॥
साधू आवत देखि कै, मन में करै मरोर।
सो तो होसी चूहरा[1], बसै गाँव की छोर ॥३९॥
साधन के मैं संग हौं, अनत कहूँ नहिँ जावँ।
जो मोहिँ अरपै प्रीति से, साधन मुख ह्वै खावँ ॥४०॥

(१) भंगी।

साध मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा वाचा कर्मना, साधू साहिब एक ॥४१॥
सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कह कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध ॥४२॥
जाति न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥४३॥
साध मिलैं यह सब टलैं, काल जाल जम चोट।
सीस नवावत ढहि पड़ै, अघ पापन की पोट ॥४४॥
साध चलत रो दीजिये, कीजे अति सनमान।
कहै कबीरा भैंट धरू, अपने बित अनुमान ॥४५॥
दरसन कीजै साध का, दिन में कइ इक बार।
आसोजा[1] का मैंह ज्यौं, बहुत करै उपकार ॥४६॥
कई बार नहिं करि सकै, तो दोय बखत करि लेय।
कबीर साधू दरस तैं, काल दगा नहिं देय ॥४७॥
दोय बखत नहिं करि सकै, तो दिन में करु इक बार।
कबीर साधू दरस तैं, उतरै भौजल पार ॥४८॥
एक दिना नहिं करि सकै, तो दूजे दिन करि लेहि।
कबीर साधू दरस तैं, पावै उत्तम देहि ॥४९॥
दूजे दिन नहिं करि सकै, तीजे दिन करि जाय।
कबीर साधू दरस तैं, मोच्छ मुक्ति फल पाय ॥५०॥
तीजे चौथे नहिं करै, तो बार बार[2] करि जाय।
या में बिलंब न कीजिये, कह कबीर समुझाय ॥५१॥
बार बार नहिं करि सकै, तो पाख पाख[3] करि लेय।
कह कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल करि लेय ॥५२॥

---

(१) क्वार। (२) सातवें दिन, हफ़्तेवार। (३) पंद्रहवें दिन।

पाख पाख नहिँ करि सकै, तो मास मास करि जाय।
या में देर न लाइये, कह कबीर समुझाय ॥५३॥
मास मास नहिँ करि सकै, तो छठे मास अलबत्त।
या में ढील न कीजिये, कह कबीर अविगत्त ॥५४॥
छठे मास नहिँ करि सकै, बरस दिना करि लेय।
कह कबीर सो भक्त जन, जमहिँ चुनौती देय[1] ॥५५॥
बरस बरस नहिँ करि सकै, ता को लागै दोष।
कहै कबीरा जीव सो, कबहुँ न पावै मोष ॥५६॥
संत न छोड़ैँ संतई, कोटिक मिलैँ असंत।
मलय भुवंगम बेधिया, सीतलता न तजंत ॥५७॥
साधू जन सब में रमैँ, दुक्ख न काहू देहिँ।
अपने मति गाढ़े रहैँ, साधुन का मति येहि ॥५८॥
साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिँ।
पान फूल छेड़ै नहीँ, बसै बगीचा माहिँ ॥५९॥
साधू भँवरा जग कली, निसि दिन रहै उदास।
पल इक तहाँ बिलम्बही, सीतल सबद निवास ॥६०॥
साध हजारी कापड़ा, ता में मल न समाय।
साकट काली कामरी, भावै तहाँ बिछाय ॥६१॥
साकट बाम्हन मत मिलौ, साध मिलौ चंडाल।
जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥६२॥
कमल पत्र हैँ साधु जन, बसैँ जगत के माहिँ।
बालक केरी धाय ज्योँ, अपना जानत नाहिँ ॥६३॥[2]

---

(१) जम को धिरावै। (२) जैसे कँवल का पत्ता पानी के बढ़ने पर भी उस में डूब नहीँ जाता और जैसे धाय दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती है तो उसके साथ पुत्र के समान ममता नहीँ हो जाती ऐसे ही साध जन का जगत से व्यवहार रहता है।

साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल ।
वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल ॥६४॥
साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥६५॥
हरि दरिया सूभर भरा, साधौं का घट सीप ।
ता में मोती नीपजै, चढ़ै देसावर दीप ॥६६॥
साधू ऐसा चाहिये, जा के ज्ञान बिबेक ।
बाहर मिलते से मिलै, अंतर सब से एक ॥६७॥
अगम पंथ को मन गया, सुरत भई अगुवान ।
तहाँ कबीरा मँड़ि रहा, बेहद के मैदान ॥६८॥
बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय ।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥६९॥
बँधा भी पानी निर्मला, जो टुक गहिरा होय ।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन सोय ॥७०॥
कौन साधु का खेल है, कौन सुरत का दाव ।
कौन अमी का कूप है, कौन बज्र का घाव ॥७१॥
छिमा साधु का खेल है, सुमति सुरत का दाव ।
सतगुरु अमृत कूप हैं, सबद बज्र का घाव ॥७२॥
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिँ ।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिँ ॥७३॥
कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय ।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप सरीरा जाय ॥७४॥
भलो भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज ।
बेपरवाही ह्वै रहा, बैठा नाम जहाज ॥७५॥
साधु समुंदर जानिये, माहीं रतन भराय ।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढ़ि जाय ॥७६॥

परमेसुर तैं संत बड़, ता का कहा उनमान ।
हरि माया आगे धरे, संत रहैं निर्बान ॥७७॥
संत मिला जानि बीछरो, बिछरौ यह मम प्रान ।
नाम-सनेही ना मिलै, तो प्रान देहि मत आन ॥७८॥
कबीर कुल सोई भला, जा कुल उपजै दास ।
जेहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥७९॥
चंदन की कुटकी[1] भली, नहिं बबूल लखराँव ।
साधन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव ॥८०॥
हैबर गैबर[2] सुघर घर, छत्रपती की नारि ।
तासु पटतरे ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥८१॥
साधन की कुतिया भली, बुरी सकट की माय ।
वह बैठी हरि जस सुनै, वह निंदा करने जाय ॥८२॥
हरि दरबारी साध हैं, इन सम और न होय ।
बेगि मिलावैं नाम से, इन्हैं मिलै जो कोय ॥८३॥
साधन केरी दया से, उपजै बहुत अनंद ।
कोटि बिघन पल में टरै, मिटै सकल दुख द्वंद ॥८४॥
धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया साधू पूत ।
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत[3] ॥८५॥
बेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस ।
गीताहू की गम नहीं, तहँ संत किया परबेस ॥८६॥
तीरथ जाये एक फल, साध मिले फल चारि[4] ।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर बिचारि ॥८७॥
साधु सीप साहिब समुँद, निपजत[5] मोती माहिँ[6] ।
वस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल[7] मैं नाहिँ ॥८८॥

(१) टुकड़ा । (२) अनगिनत घोड़े हाथी । (३) वृथा । (४) अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष । (५) पैदा होता है । (६) अंतर में । (७) नाला और गड्ढा ।

साधू खोजा[१] राम के, धँसैं जो महलन माहिं।
औरन को परदा लगै, इन को परदा नाहिं ॥८९॥
हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरि बिखे[२], सो हरि हरिजन माहिं ॥९०॥
साध बड़े संसार में, हरि तें अधिका सोय।
बिन इच्छा पूरन करैं, साहिब हरि नहिं दोय ॥९१॥
साधू आवत देखि के, चरनन लागूँ धाय।
ना जानूँ यहि भेष में, हरि ही जो मिलि जाय ॥९२॥
कबीर दर्सन साधु के, बड़ भागे दर्साय।
जो होवे सूली सजा[३], काँटेई टरि जाय ॥९३॥
साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सबद बिचार।
जग में होते साध नहिं, जरि मरता संसार ॥९४॥
साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिं।
सो घर मरघट सारिखा[४], भूत बसै ता माहिं ॥९५॥
निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव।
जो चाहै आकार तूँ, साधू परतछ देव ॥९६॥
जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं बिलाप।
सो सुख सहजै पाइये, संतन सेवत आप ॥९७॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लगि संत न सेवई, तब लगि सरै न काम ॥९८॥
आसा बासा संत का, ब्रह्मा लखै न बेद।
षट दर्सन[५] खटपट करै, बिरला पावै भेद ॥९९॥

---

(१) हिजड़े जो बादशाही महल में काम करते थे और बड़ी क़दर से रक्खे जाते थे। (२) में। (३) दंड। (४) सरीखा, समान। (५) छवों शास्त्र।

भेष का अंग ।

तत्व तिलक तिहुँ लोक में, सत्त नाम निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अमित अपार ॥१॥
तत्व तिलक की खानि है, महिमा है निज नाम ।
अछै नाम वा तिलक को, रहै अछय बिस्राम ॥२॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान ।
करनी कंठी कंठ में, परसा पद निर्बान ॥३॥
मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत ।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥४॥
तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय ।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥५॥
हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और ।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥६॥
भर्म न भागा जीव का, बहुतक धरिया भेख ।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहि गइ रेख ॥७॥

बेहद का अंग ।

बेहद अगाधी पीव है, ये सब हद के जीव ।
जे नर राते हद्द से, कधी न पावैं पीव ॥१॥
हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर ।
हद बेहद की गम लखै, ता से पीव हजूर ॥२॥
हद्द बँधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर ।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, (जहँ) बाजै अनहद तूर ॥३॥
हद्द छाड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान ।
मुनि जन जान न पावहीं, तहाँ लिया बिसराम ॥४॥

हद्द छाड़ि बेहद गया, रहा निरन्तर होय।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥५॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं।
बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिं ॥६॥
हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध।
हद्द बेहद दोऊ तजै, तिन का मता अगाध ॥७॥
हद बेहद दोऊ तजी, अबरन किया मिलान।
कह कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥८॥
जहाँ सोक ब्यापै नहीं, चल हँसा वा देस।
कह कबीर गुरुगम गहौ, छाड़ि सकल भ्रम भेस ॥९॥

असाधु का अंग।

कबीर भेष अतीत का, करै अधिक अपराध।
बाहर देखे साध गति, माहीं बड़ा असाध ॥१॥
जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान।
पहिले थाह दिखाइ करि, औंड़े[1] देसी आन ॥२॥
उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यों माँड़े ध्यान।
धूरे[2] बैठि चपेटही, यों लै बूड़ै ज्ञान ॥३॥
चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगै, परै काल के फंस ॥४॥
साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥५॥
माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी[3] के साथ ॥६॥

---

(१) गहिरे। (२) एक तरह की मोटी घास। (३) दुनियाँ।

दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यौं नहिं मूड़िये, जा में भरिया खोट ॥७॥

मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय ॥८॥

केसन[1] कहा बिगारिया, जो मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यौं नहिं मूड़िये, जा में बिषय बिकार ॥९॥

मन मेवासी मूँड़िये, केसहिं मूँड़े काहिं।
जो कछु किया सो मन किया, केस किया कछु नाहिं ॥१०॥

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े पर छाड़सी, ज्यौं कैंचुरी भुजंग ॥११॥

ज्ञान सँपूरन ना बिधा, हिरदा नाहिं छिदाय।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥१२॥

बाँबी कूटैं बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय ॥१३॥

आप साधु करि देखिये, देखु असाधु न कोय।
जा के हिरदे गुरु नहीं, हानि उसी की होय ॥१४॥

खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद।
बाँझ झुलावै पालना, ता में कौन सवाद ॥१५॥

जो बिभूति साधुन तजी, तेहि बिभूति लपटाय।
जौन बवन करि डारिया, स्वान स्वादि करि खाय[2] ॥१६॥

स्वाँग पहिरि सोहदा भया, दुनिया खाई खूँदि।
जा सेरी[3] साधू गया, सो तो राखी मूँदि ॥१७॥

भूला भसम रमाइ के, मिटी न मन की चाहि।
जौ सिक्का नाहिं साच का, तौ लगि जोगी नाहिं ॥१८॥

---

(१) बाल। (२) जिस माया को सच्चे साधु ने त्याग किया उसमें असाधु लपटता है जैसे कुत्ता कै की हुई चीज़ को मज़े के साथ खाता है। (३) रास्ता।

बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल।
बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल[1] ॥१९॥
कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेख।
करम भरम सब दूरि करि, सबही माहिँ अलेख ॥२०॥
पहिले बूड़ी पिरथवी, झूठे कुल की लार।
अलख बिसार्यो भेष में, बूड़े काली धार ॥२१॥
चतुराई हरि ना मिलै, ये बातों की बात।
निस्प्रेही निरधार[2] का, गाहक दीनानाथ ॥२२॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काचे राचे बृथा, साचे राचे नाम ॥२३॥
साकट का मुख बिम्ब[3] है, निकसत बचन भुवंग।
ता की औषधि मौन है, बिष नहिँ ब्यापै अंग ॥२४॥
साकट कहा न कहि चलै, स्वान कहा नहिँ खाय।
जो कौआ मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नसाय ॥२५॥
साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय।
तत्व सरीरा झरि परै, पाप रहै लपटाय ॥२६॥
हम जाना तुम मगन हौ, रहे प्रेम रस पागि।
रंचक पवन के लागते, उठे नाग से जागि ॥२७॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिँ।
कबीर स्वारथ ले गया, लख चौरासी माहिँ ॥२८॥
सोवत साधु जगाइये, करै नाम का जाप।
ये तीनौं सोवत भले, साकट सिंह रु साँप ॥२९॥
आँखौं देखा घी भला, मुख मेला नहिँ तेल।
साधू से झगड़ा भला, ना साकट से मेल ॥३०॥

---

(१) फाड़। (२) संसार की ओर से बेपरवाह और निरास। (३) बाँबी।

घर में साकट इस्तरी, आप कहावै दास।
वो तो ह्वैगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥३१॥
साकट नारी छाड़िये, गनिका कीजै नारि।
दासी ह्वै हरिजनन की, कुल नहिं आवै गारि ॥३२॥

गृहस्थ की रहनी का अंग।

जो मानुष गृहधर्म युत, राखै सील बिचार।
गुरुमुख बानी साधु सँग, मन बच सेवा सार ॥१॥
सेवक भाव सदा रहै, बहम[1] न आनै चित्त।
निरनै लखै जथार्थ बिधि, साधुन को करै मित्त ॥२॥
सत्त सील दाया सहित, बरतै जग ब्यौहार।
गुरु साधू का आस्रित, दीन बचन उच्चार ॥३॥
बहु संग्रह बिषयान को, चित्त न आवै ताहि।
मधुकर इव[2] सब जगत जिव, घटि बढ़ि लखि बरताहि ॥४॥
गिरही सेवै साधु को, साधू सुमिरै नाम।
या में धोखा कछु नहीं, सरै दोऊ को काम ॥५॥

बैरागी की रहनी का अंग।

सिख[3] साखा संसार गति, सेवक परतछ काल।
बैरागी छावै मढ़ी, ता को मूल न डाल ॥१॥
पास न जा के कापड़ा, कधी सुरंग न होय।
कबीर त्यागै ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥२॥
घर में रहु तौ भक्ति करु, नातर करु बैराग।
बैरागी बंधन करै, ता का बड़ा अभाग ॥३॥

(१) भ्रम। (२) सदृश। (३) शिष्य।

धारन तो दोऊ भली, गिरही कै बैराग।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥४॥
बैरागी बिरकत भला, ग्रेही चित्त उदार।
दोउ बातौं खाली पड़ै, ता को वार न पार ॥५॥

अष्ट दोष वा बिकारी अंग।

१-काम का अंग

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संतन का गुरु नाम ॥१॥
सहकामी दीपक दसा, सोखै तेल निवास।
कबीर हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास ॥२॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अंतर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥३॥
कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥४॥
भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जनम गँवाया बाद ॥५॥
कामी लज्जा ना करै, मन माहीं अहलाद।
नींद न माँगै साथरा[१], भूख न माँगै स्वाद ॥६॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसय सूल।
और गुनन सब बखिसहौं, कामी डार न मूल ॥७॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥८॥

---

(१) बिछौना।

जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनोँ कबहूँ ना मिलैँ, रबि रजनी इक ठाम ॥९॥
नारि पुरुष सबही सुनो, यह सतगुरु की साखि।
बिष फल फले अनेक हैँ, मत कोइ देखो चाखि ॥१०॥
जिन खाया सोई मुआ, गन गँधर्ब बड़ भूप।
सतगुरु कहँ कबीर से, जग मैँ जुगति अनूप ॥११॥
कामी तो निर्भय भया, करै न काहू सक।
इंद्री केरे बस परा, भुगतै नरक निसंक ॥१२॥
कबीर कामी पुरुष का, संसय कबहुं न जाय।
साहिब से अलगा रहै, वा के हिरदे लाय[1] ॥१३॥
कामी अमी न भावई, बिष को लेवै सोधि।
कुबुधि न भाजै जीव की, भावै ज्योँ परमोधि ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, समझै नहीँ गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥१५॥
कामी कर्म की कँचली, पहिरि हुआ नर नाग।
सिर फोरै सूझै नहीँ, कोइ पूरबला भाग ॥१६॥
काम कहर असवार है, सब को मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरा, जा के नाम सहाय ॥१७॥
केता बहता बहि गया, केता बहि बहि जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मति गोता खाय ॥१८॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट मैँ खान।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनोँ एक समान ॥१९॥
काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥२०॥

---

(१) आग।

२-क्रोध का अंग

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आग।
भीतर रहे सो जरि मुए, साधू उबरे भाग ॥१॥
क्रोध अगिन घर घर बढ़ी, जरै सकल संसार।
दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार ॥२॥
कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥३॥
जक्त माहिँ धोखा घना, अहं क्रोध औ काल।
पार पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥४॥
दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि।
सीतल संगति साध की, तहाँ उबरिये भागि ॥५॥
गारि अँगारा क्रोध झल, निंदा धूआँ होय।
इन तीनोँ को परिहरै, साध कहावै सोय ॥६॥
कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन का तीर।
भरि भरि मारै कान मेँ, सालै सकल सरीर ॥७॥
कुटिल बचन सब से बुरा, जारि करै तन छार।
साध बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥८॥
निन्दक तेँ कूकर भला, हठ करि माड़ै रारि[1]।
कूकर तेँ क्रोधी बुरा, गुरुहिँ दिवावै गारि[2] ॥९॥

३-लोभ का अंग

जब मन लागा लोभ से, गया बिषय मेँ मोय।
कहै कबीर बिचारि कै, कस भक्ती घन होय ॥१॥

(१) झगड़ा। (२) गाली।

कबीर त्रिस्ना पापिनी, ता से प्रीति न जोरि।
पैंड पैंड पाछे परै, लागै मोटी खोरि॥२॥
त्रिस्ना सींची ना बुझै, दिन दिन बढ़ती जाय।
जवासा का रूख ज्यौं, घन मेहा कुम्हिलाय॥३॥
कबीर औंधी खोपरी, कबहूँ धापै नाहिं।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माहिं॥४॥
आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनौं जबही गये, जबहिं कहा कछु देह॥५॥
सूम थैली अरु स्वान भग, दोनौं एक समान।
घालत मैं सुख ऊपजै, काढ़त निकसे प्रान॥६॥
जग मैं भक्त कहावई, चुकट[1] चून नहिं देय।
सिष जोरू का ह्वै रहा, नाम गुरू का लेय॥७॥
बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय।
कबीर संचय सूम धन, अंत चोर लै जाय॥८॥
पूत पियारे पिता के, सँग रे लागा धाय।
लोभ मिठाई हाथ लै, आपन गया भुलाय॥९॥

४—मोह का अंग

मोह फंद सब फंदिया, कोइ न सकै निरवार।
कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्त्व बिचार॥१॥
प्रथम फँदे सब देवता, (सुख) बिलसैं स्वर्ग निवास।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्युलोक की आस॥२॥
दूजे ऋषि मुनिवर फँदे, ता से रुचि उपजाय।
स्वर्गलोक सुख मानहीं, (फिरि) घरनि परत हैं आय॥३॥

(१) चुटकी भर भी।

मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि।
काहू सुरति जो ना करी, फिरि फिरि ले अवतार ॥४॥
कुरुच्छेत्र सब मेदनी, खेती करै किसान।
मोह मिरग सब चरि गया, आस न रहि खलिहान ॥५॥
काहू जुगति न जानिया, केहि बिधि बचै सु खेत।
नहिँ बँदगी नहिँ दीनता, नहिँ साधू सँग हेत ॥६॥
जब घट मोह समाइया, सबै भया अँधियार।
निर्मोह ज्ञान बिचारि कै, कोइ साधू उतरै पार ॥७॥
जहँ लगि सब संसार है, मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥८॥
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि लौं, तुम से रहै निनार[1]।
मिरगहिँ बाँधि बिडारहू, कहै कबीर बिचार ॥९॥
सलिल मोह की धार मैं, बहि गये गहिर गँभीर।
सुच्छम मछरी सुरत है, चढ़िहै उलटे नीर ॥१०॥

५—मान और हँगता का अंग

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह ॥१॥
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिँ जाय।
मान बड़े-मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥२॥
काला मुँह कर मान का, आदर लावो आगि।
मान बड़ाई छाड़ि के, रहो नाम लौ लागि ॥३॥
मान बड़ाई कूकरी, धरमराय दरबार।
दीन लकुटिया बाहरा, सब जग खाया फाड़ ॥४॥

(१) न्यारा।

मान बड़ाई कूकरी, संतन खेदी जानि ।
पांडव जग पूरन भया, सुपच बिराजे आनि ॥५॥
मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहिचान ।
मीत किये मुख चाटही, बैर किये तन हानि ॥६॥
मान बड़ाई ऊरमी, यह जग का व्योहार ।
दीन गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥७॥
बड़ी बड़ाई ऊँट की, लादे जहँ लगि साँस ।
मुहकम सलिता[1] लादि के, ऊपर चढ़ै फरास ॥८॥
हरिजन को ऊँचा नवै[2], ऊँट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊँचा ताके सोय ॥९॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥१०॥
कबीर अपने जीव तें, ये दो बातैं धोय ।
मान बड़ाई कारने, आछत मूल न खोय ॥११॥
भक्त रु भगवँत एक है, बूझत नहीं अजान ।
सीस नवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥१२॥
प्रभुता को सब कोउ भजे, प्रभु को भजे न कोय ।
कह कबीर प्रभु को भजे, प्रभुता चेरी होय ॥१३॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग ।
कह कबीर कैसे मिटै, चारों दीरघ रोग ॥१४॥
अहं अगिन हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान ।
तिन को जम न्योता दिया, हो हमरे मिहमान ॥१५॥
ऊँचा कुल नीचा मता, नाहिँ गुरू से हेत ।
हीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥१६॥

(१) मज़बूत टाट के थैले। (२) सिर ऊँचा करके नमस्कार करै।

ऊँचे कुल के कारने, भूला सब संसार।
तब कुल की क्या लाज है, यह तन होवै छार ॥१७॥
हस्ती चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर ढुराय।
लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥१८॥
जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय।
चेला को चेला मिलै, तब कछु होय तो होय ॥१९॥
बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहु इतराय।
ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय[1] ॥२०॥
जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे, दया करै सब कोय ॥२१॥

६—कपट का अंग

कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता[2] मन सेत[3] ॥१॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त।
परपूठा अवगुन घना, मुहँड़े ऊपर मित्त[4] ॥२॥
चित कपटी सब से मिलै, माहीं कुटिल कठोर।
इक दुर्जन इक आरसी, आगे पीछे और ॥३॥
हेत प्रीति से जो मिलै, ता को मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥४॥
नवनि नवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि।
पारधिया[5] दूना नवै, मिरगाहिं टूकै जाहि ॥५॥

---

(१) शतरंज के खेल में जब प्यादा वज़ीर बन जाता है तो वह टेढ़ा चल सकता है। (२) लाल; रंगीन। (३) सपेद। (४) पीठ पीछे बुराई करै और मुँह पर बड़ाई। (५) शिकारी।

७-आशा का अंग

आसा जीवै जग मरै, लोक मरै मन जाहि।
धन संचै सो भी मरै, उबरै सो धन खाहि ॥१॥
आसा बेली कर्म बन, बाढ़त मन के साथ।
त्रिस्ना फूल चौगान मेँ, फल करता के हाथ ॥२॥
जो तू चाहै मुज्झ को, राखो और न आस।
मुझहि सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥३॥
आसा मनसा दुइ नदी, तहाँ न पग ठहराय।
इन दोनोँ को लाँघि कै, चौड़े बैठो जाय ॥४॥
चौड़ा बैठा जाइ कै, नाम धरा रनजीत।
साहिब न्यारा देखिया, अंतरगत की प्रीत ॥५॥
आस बास[1] जग फंदिया, रहा अरध लपटाय।
नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥६॥
आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्योँ तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥७॥
कबीर जग को कहा कहूँ, भवजल बूड़े दास।
सतगुरु सम पति छोड़ि के, करै मनुष की आस ॥८॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीँ घर करै, सो भी मरै पियास ॥९॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निवारि।
दूजी आसा मारसी, ज्योँ चौपड़ की सार ॥१०॥
कबीर जोगी जगत-गुरू, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरू वह दास ॥११॥

(१) बासना।

बहुत पसारा जनि करै, कर थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१२॥
आसा का ईंधन करूँ, मनसा करूँ भभूत।
जोगी फिरि फेरी करूँ, योँ बनि आवै सूत ॥१३॥

८-तृष्णा का अंग

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
सीस चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१॥
त्रिस्ना केरि बिसेषता, कहँ लगि करौं बखान।
देँह मरै इंद्री मरै, त्रिस्ना मरि न निदान ॥२॥
की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निसि दिन चहै, जीवन करै बिहाल ॥३॥
त्रिस्ना अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय ॥४॥
नामहिं छोटा जानि कै, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, त्रिस्ना के आधीन ॥५॥

नव रत्न वा सकारी अंग।

१-शील का अंग

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं, लाख कथै जो कोय ॥१॥
सीलवंत सब तेँ बड़ा, सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि ॥२॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक ॥३॥

सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह।
सबद बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह ॥४॥
बिषय पियारे प्रीति से, तब लगि गुरुमुख नाहिं।
जब अंतर सतगुरु बसैं, बिषया से रुचि नाहिं ॥५॥
सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरे जागि।
बासन बासन के खिसे, चोर न सकई लागि ॥६॥
आव कहै सो औलिया, बैठु कहै सो पीर।
जा घर आव न बैठु है, सो काफिर बेपीर ॥७॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय।
भर जोबन में सीलवँत, बिरला होय तो होय ॥८॥

२–क्षमा का अंग

छिमा क्रोध को छय करै, जो काहू पै होय।
कह कबीर ता दास को, गंजि न सक्कै कोय ॥१॥
छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा बिस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥२॥
भली भली सब कोउ कहै, रही छिमा ठहराय।
कह कबीर सीतल भया, गई जो अग्नि बुझाय ॥३॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥४॥
गारी से सब ऊपजै, कलह कष्ट अरु मीच।
हार चलै सो संत है, लागि मरै सो नीच ॥५॥
करगस[1] सम दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥६॥

(१) नीर।

चोट सुहेली सेल की, पड़ते लेय उसास।
चोट सहारै सबद की, तासु गुरू मैं दास ॥७॥
खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥८॥

३–संतोष का अंग

साध सँतोषो सर्बदा, निरमल जा के बैन।
ता के दरसन परस तेँ, जिय उपजै सुख चैन ॥१॥
चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥२॥
माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिँ।
तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैँ नाहिँ ॥३॥
अनमाँगा तो अति भला, माँगि लिया नहिँ दोष।
उद्र समाना माँगि ले, निस्चय पावै मोष ॥४॥
उत्तम भिष है अजगरी, सुनि लीजै निज बैन।
कह कबीर ता के गहे, महा परम सुख चैन ॥५॥
गोधन गजधन बाजधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥६॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिँ न आवै लाज ॥७॥

४–धीरज का अंग

धीरा होइ धमक[1] सहै, ज्योँ अहरन सिर घाव।
मेघा पर्बत ह्वै रहै, इत उत कहूँ न जाव ॥१॥

---

(१) चोट।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥२॥
कबीर धीरज के घरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥३॥
कबीर तूँ काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि कर डोलिये, कूकर भुसै हजार ॥४॥
कबीर भँवर में बैठि कै, भौचक मना न जोय।
डूबन का भय छाड़ि दे, करता करै सु होय ॥५॥
मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥६॥

५--दीनता का अंग

दीन गरीबी बंदगी, साधन से आधीन।
ता के सँग मैं यों रहूँ, ज्यों पानी सँग मीन ॥१॥
दीन लखै मुख सबन को, दीनहिं लखै न कोय।
भली विचारी दीनता, नरहुँ देवता होय ॥२॥
इक बानी जो दीनता, संतन कियो बिचार।
यही भेंट गुरुदेव की, सब कछु गुरु दरबार ॥३॥
दीन गरीबी बंदगी, सब से आदर भाव।
कह कबीर तेई बड़ा, जा में बड़ा सुभाव ॥४॥
नहीं दीन नाहिं दीनता, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा किया, जीवत भया मसान ॥५॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥६॥

आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय ॥७॥

ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भरि पिवै, ऊँचा प्यासा जाय ॥८॥

नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन।
चढ़ि बोहित[1] अभिमान की, बूड़े ऊँच कुलीन ॥९॥

सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय ॥१०॥

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय ॥११॥

कबीर सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥१२॥

६–दया का अंग

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद्द।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥१॥

दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदै होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय ॥२॥

हम रोवैं संसार को, रोय न हम को कोय।
हम को तो सो रोइहै, जो सब्द-सनेही होय ॥३॥

बैरागी ह्वै गेह तजि, पग पहिरै पैजार।
अंतर दया न ऊपजै, घनी सहैगा मार ॥४॥

---

(१) नाव।

७-साच का अंग

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साच है, ता हिरदे गुरु आप ॥१॥
साईं से सांचा रहौ, साईं साच सुहाय।
भावै लम्बे केस रखु, भावै घोट मुँड़ाय ॥२॥
साचे स्राप न लागई, साचे काल न खाय।
साचे को साचा मिलै, साचे माहिँ समाय ॥३॥
साचै सौदा कीजिये, अपने जिव में जानि।
साचै हीरा पाइये, झूठै मूलहुँ हानि ॥४॥
जो तू साचा बानिया, साची हाट लगाय।
अंदर झाड़ू देइ कै, कूड़ा दूरि बहाय ॥५॥
तेरे अंदर साच जो, बाहर नाहिँ जनाव।
जाननहारा जानिहै, अंतरगति का भाव ॥६॥
जा की साची सुरत है, ता का साचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, साईं सेती मेल ॥७॥
साच विना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय ॥८॥
अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काच।
सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साच ॥९॥
कंचन केवल हरि भजन, दूजा काच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ा साच कबीर ॥१०॥
प्रेम प्रीति का चोलना, पहरि कबीरा नाच।
तन मन ता पर वारहूँ, जो कोइ बोलै साच ॥११॥
साच सबद हिरदे गहा, अलख पुरुष भरपूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरे दास हजूर ॥१२॥

साधू ऐसा चाहिये, साचो कहै बनाय ।
कै टूटै कै फिरि जुरै, कहे बिन भरम न जाय ॥१३॥
जिन नर साच पिछानियाँ, करता केवल सार ।
सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की लार ॥१४॥
कबीर लज्जा लोक को, बोलै नाहीं साच ।
जानि बूझि कंचन तजै, क्यौं तू पकरै काच ॥१५॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय ।
अहो कबीरा साच गहु, आवा गवन नसाय ॥१६॥
साचै कोइ न पतीजई, झूँठे जग पतियाय ।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥१७॥
साच कहूँ तो मारि हैं, झूँठे जग पतियाय ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाय ॥१८॥
साचे को साचा मिलै, अधिका बढ़ै सनेह ।
झूँठे को साचा मिलै, तड़दे टूटै नेह ॥१९॥
जा के बोली बंध नहिं, साच नहीं मन माहिं ।
ता के संग न चालिये, छाड़ै पैंड़े माहिं ॥२०॥
कबीर पूँजी साहु की, तू मत खोवै ख्वार ।
खरी बिगुर्चन होयगी, लेखा देती बार ॥२१॥
लेखा देना सहज है, जो दिल साचा होय ।
साइ के दरबार में, पला न पकरै कोय ॥२२॥
साच सुनै अरु सत कहै, सत्त नाम की आस ।
सत्त नाम को जानि करि, जग से रहै उदास ॥२३॥
साच हुआ तो क्या हुआ, (जो) नाम न साचा जान ।
साचा ह्वै साचै मिलै, (तब) साचै माहिं समान ॥२४॥

साचा सबद कबीर का, हिरदय देखु बिचारि।
चित दै समुझत है नहीं, (मोहिं) कहत भये जुग चारि॥२५

८-बिचार का अंग

आगि कहे दाझै नहीं, पाँव न दीजै माहँ।
जो पै भेद न जानई, नाम कहा तौ काह॥१॥
कबीर सोच बिचारिया, दूजा कोई नाहिं।
आपा परे जब चीन्हिया, उलटि समाना माहिं॥२॥
पानी केरा पूतला, राखा पवन सँचार।
नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार॥३॥
आधी साखी सिर कटै, जो रे बिचारी जाय।
मनहिं प्रतीत न ऊपजै, राति दिवस भरि गाय॥४॥
एक सबद में सब कहा, सबही अर्थ बिचार।
भजिये निर्गुन नाम को, तजिये बिषय बिकार॥५॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तोलि के, तब मुख बाहर खोल॥६॥
सहज तराजू आनि करि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोइ जानै बोल॥७॥
ज्यों आवै त्योंहीं कहै, बोलै नाहिं बिचारि।
हतै पराई आतमा, जीभ लेइ तरवारि॥८॥
बोलै बोल बिचारि कै, बैठै ठौर सँभारि।
कह कबीर वा दास की, कबहुँ न आवै हारि॥९॥
बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस।
खारी से मीठी करी, सतगुरु के उपदेस॥१०॥

कबीर उलटे ज्ञान का, कैसे करूँ बिचार ।
थिर बैठे मारग कटै, चला चलो नहिँ पार ॥११॥
जो कछु करै बिचारि कै, पाप पुन्न तेँ न्यार ।
कह कबीर इक जानि कै, जाय पुरुष दरबार ॥१२॥
आचारी सब जग मिला, बिचारी मिला न कोय ।
कोटि अचारी वारिये, इक बिचारि जो होय ॥१३॥

९–बिबेक का अंग

फूटी आँखि बिबेक की, लखै न संत असंत ।
जा के सँग दस बीस हैँ, ता का नाम महंत ॥१॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
सबद बिबेकी पारखी, सो माथे के मौर ॥२॥
जब लगि नाहिँ बिबेक मन, तब लगि लगै न तौर ।
भवसागर नाहीँ तरै, सतगुरु कहैँ कबीर ॥३॥
गुरुपसु नरपसु नारिपसु, बेदपसू संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाहि बिबेक बिचार ॥४॥
प्रगटै प्रेम बिबेक दल, अभय निसान बजाय ।
उग्र ज्ञान उर आवताँ, यह सुनि मोह दुराय ॥५॥
कर बंदगी बिबेक की, भेष धरै सब कोय ।
वा बँदगी बहि जानि दे, (जहँ) सबद बिबेक न होय ॥६॥
कहै कबीर पुकारि कै, कोइ संत बिबेकी होय ।
जा में सबद बिबेक है, छत्र-धनी है सोय ॥७॥
जीव जंतु जलहर बसै, गये बिबेक जु भूल ।
जल के जलचर यों कहैँ, हम उड़गन[1] समतूल ॥८॥

---

(१) तारा ।

सत्तनाम सब कोइ कहै, कहिबे माहिँ बिबेक।
एक अनेकै फिरि मिलै, एक समाना एक ॥९॥
समझा समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जा के हृदय बिबेक ॥१०॥

बुद्धि और कुबुद्धि का अंग।

बुद्धि बिहूना आदमी, जानै नहीं गँवार।
जैसे कपि परबस पर्‌यो, नाचै घर घर बार[१] ॥१॥
बुद्धि बिहूना अंध गज, पर्‌यो फंद में आय।
ऐसे ही सब जग बँधा, कहा कहौं समझाय ॥२॥
पंख छता[२] परिबस पर्‌यो, सूवा के बुधि नाहिँ।
बुद्धि बिहूना आदमी, योँ बंधा जग माहिँ ॥३॥
बुद्धि बिहूना सिंह ज्योँ, गयो ससा के संग।
अपनी प्रतिमा देखि कै, कीन्ह्यो तन को भंग ॥४॥
अकिल अरस से ऊतरी, बिधना दीन्ही बाँटि।
एक अभागी रहि गया, एकन लीन्ही छाँटि ॥५॥
बिना वसीले चाकरी, बिना बुद्धि की देह।
बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाये खेह ॥६॥
गुन गाड़ै औगुन खनै, जिभ्या कटुक कुदार।
ऐसा मूरख दुर्जना, नरक जाय जम द्वार ॥७॥
समझा का घर और है, अनसमझा का और।
जा घर में साहिब बसैं, बिरला जानै ठौर ॥८॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होइ न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय ॥९॥

---

(१) द्वार। (२) आछत।

कोइला भी होइ ऊजरो, जरि बरि होय जो स्वेत ।
मूरख होय न ऊजरो, ज्यौं कालर[1] का खेत ॥१०॥
मूरख से क्या बोलिये, सठ से कहा बसाय ।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥११॥
पसुआ से पाला परा, रहि रहि हिये में खीज ।
ऊसर परा न नीपजै, केतक डारौ बीज ॥१२॥
एक सबद से सब कहै, गुरू सिष्य समझाय ।
समझाया समझै नहीं, फिरि फिरि पूछै आय ॥१३॥

मन का अंग ।

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक ।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक ॥१॥
मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध ।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध ॥२॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय ।
बिष की क्यारी बोइ के, लुनता क्यों पछिताय ॥३॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय ।
टूटे पीछे फिरि जुरै, बीच गाँठि परि जाय ॥४॥
यह मन फटकि पिछोरि ले, सब आपा मिटि जायं ।
पिंगल ह्वै पिउ पिउ करै, ता को काल न खाय ॥५॥
मन पाँचो के बस परा, मन के बस नहिं पाँच ।
जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आँच ॥६॥
कबीर बैरी सबल हैं, एक जीव रिपु पाँच ।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावैं नाँच ॥७॥

(१) रेहार यानी रेह का ।

कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै बिषय कमाय ॥८॥

मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिँ।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिँ ॥९॥

तीन लोक चोरी भई, सब का धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥१०॥

चोर भरोसे साहु के, लाया बस्तु चुराय।
पहिले बाँधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥११॥

कबीर यह मन मसखरा, कहौँ तो मानै रोस।
जा मारग साहिब मिलै, तहाँ न चालै कोस ॥१२॥

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै, जौ मन आवै ठौर ॥१३॥

समुँद लहर तो थोड़िया, मन लहरैं घनियाय।
केती आइ समाइहै, केति जाइ बिसराय ॥१४॥

कबीर लहर समुद्र की, केती आवैं जाहिँ।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै वाहिँ ॥१५॥

दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ लगि मन की दौड़।
दौड़ थकी मन थिर भया, बस्तु ठौर की ठौर ॥१६॥

पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१७॥

कबीर मन परबत हुआ, अब मैं पाया जानि।
टाँकी लागी सबद की, निकसी कंचन खानि ॥१८॥

अगम पंथ मन थिर करै, बुद्धि करै परवेस।
तन मन सबही छाड़ि के, तब पहुँचै वा देस ॥१९॥

मनहीं को परमोधिये, मनहीं को उपदेस ।
जो यहि मन को बसि करै, (तो) सिष्य होय सब देस ॥२०॥

कबीर सीढ़ी साँकरी, चंचल मनुवाँ चोर ।
गुन गावे लैलीन ह्वै, मन में कछु इक और ॥२१॥

चंचल मनुवाँ चेत रे, सोवै कहा अजान ।
जमधर[1] जम ले जायगा, पड़ा रहैगा म्यान ॥२२॥

कबीर मन मैला भया, या में बहुत बिकार ।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो बिचार ॥२३॥

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार ।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥२४॥

मन गोरख मन गोबिंदा, मनहीं औघड़ सोय ।
जो मन राखै जतन करि, आपै करता होय ॥२५॥

पय पानी की प्रीतड़ी, पड़ा जो कपटी नोन ।
खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावै कौन ॥२६॥

मन मोटा मन पातरा, मन पानी मन लाय[2] ।
मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही ह्वै जाय ॥२७॥

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो यह मन गुरु से मिलै, तो गुरु मिलै निसंक ॥२८॥

कबहूँ मन गगना चढ़ै, कबहूँ गिरै पताल ।
कबहूँ मन उनमुनि लगै, कबहूँ जावै चाल ॥२९॥

मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय ।
एकै रँग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥३०॥

कोटि करम पल में करै, यह मन बिषया स्वाद ।
सतगुरु सबद न मानही, जनम गँवावै बाद ॥३१॥

---

(१) तलवार । (२) आग ।

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिँ ।
घनी सहैगा सासना, जम की दरगह माहिँ ॥३२॥
कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग ।
कह कबीर कैसे तरूँ, पाँच कुसंगी संग ॥३३॥
इन पाँचो से बंधि करि, फिर फिर धरै सरीर ।
जो यह पाँचो बसि करै, सोई लागै तीर[१] ॥३४॥
मनुवाँ तो पंछी भया, उड़ि के चला अकास ।
ऊपर ही तैं गिरि पड़ा, मन माया के पास ॥३५॥
मन पंछी तब लगि उड़ै, बिषय बासना माहिँ ।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आयो नाहिँ ॥३६॥
जहाँ बाज बासा करै, पंछी रहै न और ।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नाहिँ करम को ठौर ॥३७॥
मन कुंजर महमंत था, फिरता गहिर गँभीर ।
दुहरी तिहरी चौहरी, परि गइ प्रेम जँजीर ॥३८॥
अपने अपने चोर को, सब कोइ डारै मार ।
मेरा चोर मुझै मिलै, तो सरबस डारूँ वार ॥३९॥
कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार ।
भजन करन को आलसी, खाने को हुसियार ॥४०॥
या तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर ।
गुरु गम होय तो परखि ले, नहिँ तो कर गुरु और ॥४१॥
नैनौं माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर ।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर मौर ॥४२॥
यह तो गति है अटपटी, सटपट लखै न कोय ।
जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय ॥४३॥

---

(१) किनारे ।

हिरदे भीतर आरसी, मुख देखा नहिँ जाय।
मुख तौ तबहीं देखसी, दिल की दुबिधा जाय ॥४४॥
तन माहीं जो मन धरै, मन धरि उज्जल होय।
साहिब से सन्मुख रहै, अजर अमर सो होय ॥४५॥
पानी हूँ तेँ पातला, धूआँ हूँ तेँ झीन।
पवन हुँ तेँ उतावला[1], दोस्त कबीरा कीन्ह ॥४६॥
मेरा मन हंसा रमै, हंसा गमनि रहाय।
बगुला मन मानै नहीं, घर आँगन फिरि जाय ॥४७॥
पुहुप बास तेँ पातला, सूच्छम जा को रंग।
कबीर ता से मिलि रहा, कबहुँ न छोड़ै संग ॥४८॥
मन मनसा को मारि ले, घट ही माहीं घेर।
जब ही चालै पीठि दै, आँकुस दै दै फेर ॥४९॥
मन मनसा को मारि करि, नंन्हा करि के पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, पद्दुम झलक्कै सीस ॥५०॥
मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और।
जब मन निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥५१॥
काया कजली बन अहै, मन कुंजर महमंत।
आँकुस ज्ञान रतन्न का, फेरै बिरला संत ॥५२॥
कबीर मनहिँ गजंद है, आँकुस दै दै राखु।
बिष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥५३॥
काया देवल मन धुजा, बिषय लहरि फहराय।
मन चालै देवल चलै, ता को सरबस जाय ॥५४॥
काया कसौ कमान ज्यौँ, पाँच तत्त करि बान।
मारो तौ मन मिरग को, नातरु मिथ्या जान ॥५५॥

---

(१) तेज़।

सुर नर मुनि सब को ठगे, मनहिं लिया अवतार।
जो कोइ या तें बचै, तीन लोक तें न्यार ॥५६॥
कुंभै बाँधा जल रहै, जल बिनु कुंभ न होय।
ज्ञानै बाँधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय ॥५७॥
मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।
तीन लोक संशय परी, काहि कहौं समझाय ॥५८॥
मन माया की कोठरी, तन संसय को कोट।
बिषहर मंत्र मानै नहीं, काले सर्प की चोट ॥५९॥
मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहे अनेक।
कह कबीर ते बाचिहै, जा के हृदय बिबेक ॥६०॥
नैनन आगे मन बसै, रल पिल करै जो दौर।
तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥६१॥
तन बोहित[1] मन काग है, लख जोजन उड़ि जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि, कबहीं गगन समाय ॥६२॥

॥ सोरठा ॥

मन जानै सब बात, जानि बूझि औगुन करै।
काहे की कुसलात, लै दीपक कूँए परै ॥६३॥

॥ साखी ॥

कबीर मन मरकट भया, नेक न कहुँ ठहराय।
सत्त नाम बाँधे बिना, जित भावै तित जाय ॥६४॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनहीं की परतीत ॥६५॥
मन जो गया तो जानि दे, दृढ़ करि राखु सरीर।
बिना चढ़े कमान के, कैसे लागै तीर ॥६६॥

---

(१) नाव।

बिना सीस का मिरग है, चहुँ दिसि चरने जाय।
बाँधि लाव गुरु ज्ञान से, राखै तत्त लगाय ॥६८॥

तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को, बिषै बाज लिये हाथ ॥६९॥

मना मनोरथ छाड़ि दे, तेरा किया न होय।
पानी में घी नीकसै, सूखा खाय न कोय ॥७०॥

कहत सुनत सब दिन गये, उरझि न सुरझा मन।
कह कबीर चेता नहीं, अजहूँ पहिला दिन ॥७१॥

मन नाहीं छाड़ै बिषय, बिषय न मन को छाड़ि।
इन का यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि[1] ॥७२॥

अकथ कथा या मनहिं की, कह कबीर समझाय।
जा को येहि समझि परै, ता को काल न खाय ॥७३॥

मेरा मन मकरंद था, करता बहुत बिगार।
सूधा है मारग चला, गुरु आगे हम लार ॥७४॥

मनुवाँ तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।
अमर लोक सुचि[2] पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥७५॥

माया का अंग।

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥१॥[3]

कबीर माया पापिनी, माँगी मिलै न हाथ।
मना उतारी झूठ करि, (तब) लागी डोलै साथ ॥२॥

---

(१) अड़, हठ। (२) पवित्रता, निरमलता। (३) जो माया अर्थात संसार से भागै उसके तो वह छाया की नाईं पीछे लगी फिरती है और जो उसके सन्मुख होकर उसका याचक हो उस से भागती है अर्थात नहीं मिलती।

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग या ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥३॥
कबीर माया पापिनी, फँद ले बैठी हाट।
सब जग तो फंदे परा, गया कबीरा काट ॥४॥
कबीर माया पापिनी, ताही लाये लोग।
पूरी किनहुँ न भोगिया, या का यही बियोग ॥५॥
कबीर माया बेसवा, दोनोँ की इक जाति।
आवत कौँ आदर करै, जाति न पूछै बाति ॥६॥
मोती उपजै सीप मेँ, सीप समुन्दर जोय।
रंचक संचर[1] रहि गया, ना कछु हुआ न होय ॥७॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भे, संचत नरक दुवार ॥८॥
खान खरचन बहु अंतरा, मन मेँ देखु बिचार।
एक खवाया साधु को, एक मिलाया छार ॥९॥
कबीर माया जात है, सुनो सबद निज मोर।
सखियोँ[2] के घर संतजन, सूमोँ के घर चोर ॥१०॥
संतोँ खाई रहत है, चोरा लीन्ही जाय।
कहै कबीर बिचारि के, दरगह मिलिहै आय ॥११॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जा को चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥१२॥
माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहिँ।
सहस बरस की सब करै, मरै महूरत[3] माहिँ ॥१३॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
मूड़ चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१४॥

(१) संचार, प्रवेश। (२) दाता। (३) छिन।

कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।
भागे हूँ छूटै नहीं, भरि भरि मारै बान ॥१५॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड ।
सतगुरु की किरपा भई, नातर करती भाँड ॥१६॥
कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
कोइ इक साधू ऊबरा, तोड़ी कुल की कानि ॥१७॥
कबीर माया मोहिनी, भइ अँधियारी लोय ।
जे सूता तेहि मूसि लै, रहे बस्तु को रोय ॥१८॥
माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय ।
माया इन सब खाइया, माया कोइ न खाय ॥१९॥
कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय ।
दाँत उपारूँ पापिनी, (जो) संतों नियरे जाय ॥२०॥
माया दासी संत की, ऊभी[1] देहि असीस ।
बिलसी अरु लातौं छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥२१॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय ।
पीर पयम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥२२॥
झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय ।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय ॥२३॥
माया आगे जीव सब, ठाढ़ रहैं कर जोरि ।
जिन सिरजा जल बुंद से, ता से बैठे तोरि ॥२४॥
माया के झक[2] जग जरै, कनक कामिनी लागि ।
कह कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि ॥२५॥
मैं जानूँ हरि से मिलूँ, मो मन मोटी आस ।
हरि बिच डारै अंतरा, माया बड़ी पिचास[3] ॥२६॥

---

(१) खड़ी । (२) आँच । (३) पिशाच, भूतिनी ।

कबीर माया सूम की, देखनहीं का लाड़।
जो वा में कौड़ी घटै, तौ हरि तोड़ै हाड़ ॥२७॥
या माया जग भरमिया, सब को लगी उपाध।
यहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥२८॥
कबीर या संसार की, झूठी माया मोह।
जेहि घर जिता बधावना, तेहि घर तेता द्रोह ॥२९॥
भूले थे यहँ आइ के, माया संग लुभाय।
सतगुरु राह बताइया, फेरि मिलूँ तेहि जाय ॥३०॥
सौ पापन को मूल है, एक रुपैया रोक।
साधू ह्वै संग्रह करै, हारै हरि सा थोक[1] ॥३१॥
माया है दुइ भाँति की, देखी ठोंक बजाय।
एक मिलावै नाम से, एक नरक लै जाय ॥३२॥
या माया है चूहड़ी[2], औ चुहड़े की जोय।
बाप पूत अरुझाय के, संग न केहु के होय ॥३३॥
माया के बस सब परे, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
नारद सारद सनक अरु, गौरी-पुत्र गनेस ॥३४॥
आँधी आई ज्ञान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लगी नाम से प्रीति ॥३५॥
मीठा सब कोइ खात है, बिष ह्वै लागै धाय।
नीब न कोई पीवसी, सर्ब रोग मिटि जाय ॥३६॥
माया तरवर त्रिबिधि का, साख बिषय संताप।
सीतलता सपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥३७॥
जिन को साईं रँग दिया, कभी न होइँ कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥३८॥

---

(१) जमा, माल। (२) भंगिन।

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि माहिँ परंत।
कोइ एक गुरु ज्ञान तेँ, उबरे साधू संत ॥३९॥

कनक और कामिनी का अंग।

चलौँ चलौँ सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१॥
नारी की झाँई परत, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, (जो) नित नारी के संग ॥२॥
कामिनि काली नागिनी, तीनौँ लोक मँझारि।
नाम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ॥३॥
कामिनि सुंदर सर्पिनी, जो छेड़ै तेहि खाय।
जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय ॥४॥
इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय।
कबहूँ सरपट नीकसै, उपजै नाग बलाय ॥५॥
नैनौँ काजर पाइ कै, गाढ़े बाँधे केस।
हाथौँ मिहँदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस ॥६॥
पर नारी के राचने, सीधा नरकै जाय।
तिन को जम छाड़ै नहीँ, कोटिन करै उपाय ॥७॥
पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥८॥
पर नारी पैनी छुरी, बिरला बाचै कोय।
ना वहि पेट सँचारिये, (जो) सर्ब सोन की होय ॥९॥
पर नारी का राचना, ज्यौँ लहसुन की घ्रान[1]।
कोने बैठि के खाइये, परगट होय निदान ॥१०॥

---

(१) दुर्गंध।

पर नारी के राचने, औगुन है गुन नाहिँ ।
खार समुंदर माछरी, केती बहि बहि जाहिँ ॥११॥
पर नारी पर सुंदरी, जैसे सूली साल ।
नित कलेस भुगतै सही, तहू न छोड़ै खाल ॥१२॥
दीपक सुन्दर देखि कै, जरि जरि मरै पतंग ।
बढ़ी लहर जो बिषय की, जरत न मोड़ै अंग ॥१३॥
नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय ।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥१४॥
जहर पराया आपना, खाये से मरि जाय ।
अपनी इच्छा ना करै, कह कबीर समझाय ॥१५॥
कूप पराया आपना, गिरै बूड़ि जो जाय ।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मत गोता खाय ॥१६॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय ।
बहु बिधि कहूँ पुकारि कै, कर छूवो मत कोय ॥१७॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर ।
देखेही तेँ बिष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥१८॥
जो कबहूँ कै देखिये, बीर बहिन के भाय ।
आठ पहर अलगा रहै, ता को काल न खाय ॥१९॥
सर्व सोने की सुंदरी, आवै बास सुबास ।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठै पास ॥२०॥
नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय ।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान मेँ, पैठि न सकै कोय ॥२१॥
गाय रोय हँस खेलि के, हरत सबन के प्रान ।
कह कबीर या घात को, समझैँ संत सुजान ॥२२॥

नारी नदी अथाह जल, बूड़ि मुआ संसार ।
ऐसा साधू ना मिला, जा सँग उतरूँ पार ॥२३॥
गाय भैंस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास ।
जा मंदिर में यह बसैं, तहाँ न कीजै बास ॥२४॥
नारि रचंते पुरुष हैं, पुरुष रचंती नारि ।
पुरुष पुरुष तें राचते, ते बिरले संसार ॥२५॥
नारि कहौं की नाहरी, नख सिख से यह खाय ।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥२६॥
भग भोगे भग ऊपजै, भग तें बचै न कोय ।
कह कबीर भग तें बचै, भक्त कहावै सोय ॥२७॥
सेवक अपना करि लई, आज्ञा मेटै नाहिं ।
भग अंतर दै गुरु भई, सिष- हो सबै कमाहिं ॥२८॥
कबीर नारि की प्रीति से, केते गये गड़ंत ।
केते औरो जाहिंगे, नरक हसंत हसंत ॥२९॥
फाटे[1] कानौं बाघिनी, तीन लोक को खाय ।
जीवत खाय कलेजरा, मुए नरक लै जाय ॥३०॥
नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट ।
कोइ कोइ साधू ऊबरै, लै सतगुरु की ओट ॥३१॥
नारी नाहीं जम अहै, तू मत राचै जाय ।
मंजारी[2] ज्यौं बोलि कै, काढ़ि करेजा खाय ॥३२॥
नारी नदिया सारिखी, बहै अपरबल पूर ।
साहिब से न्यारा रहै, अंत परै मुख धूर ॥३३॥
एक कनक अरु कामिनी, ये लंबी तरवारि ।
चाले थे गुरु मिलन को, बीचहिं लीन्हा मारि ॥३४॥

---

(१) फाड़कारे हुए। (२) बिल्ली।

एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अगिन की झाल ।
देखतही तें परजवलै, परसि करै पैमाल ॥३५॥
एक कनक अरु कामिनी, बिष फल लिया उपाय ।
देखतही तें बिष चढ़ै, चाखतही मरि जाय ॥३६॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर ।
गुरु बिच पारै अंतरा, जम देसी मुख धूर ॥३७॥
रज बीरज की कोठरी, ता पर साज्यो रूप ।
एक नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥३८॥
जहाँ जराई सुंदरी; तू जनि जाय कबीर ।
उड़ि के भस्म जो लागसी, सूना होय सरीर ॥३९॥
नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं बिचार ।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा बिकार ॥४०॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही बिष की बेल ।
बैरी मारै दाँव दै, यह मारै हँसि खेल ॥४१॥
नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस ।
जा का डसा न फिरि जिये, मरिहै बिस्वा बीस ॥४२॥
नारी नदिया सारिखी, और जो प्रगटै काल ।
सब कालन तें बाचिहै, नारी जम का जाल ॥४३॥
दीपक झोला पवन का, नर का झोला नारि ।
साधू झोला सबद का, बोलै नाहिं बिचारि ॥४४॥
नारि पुरुष की इसतरी, पुरुष नारि का पूत ।
याही ज्ञान बिचारि कै, छाड़ि चला अवधूत ॥४५॥
अबिनासी बिच धार तिन[1], कुल कंचन अरु नार ।
जो कोइ इन तें बचि चलै, सोई उतरै पार ॥४६॥

(१) तीन ।

नारि से नजरि न जोरिये, अंसहिं खिस ह्वै जाय।
जा के चित नारी बसै, चारि अंस लै जाय ॥४७॥

॥ सोरठा ॥

नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै।
कहा गँवावै देह, कारज कोई ना सरै ॥४८॥

निद्रा का अंग।

कबीर सोया क्या करै, जागि के जपो दयार।
एक दिना है सोवना, लम्बे पैर पसार ॥१॥
कबीर सोया क्या करै, उठि न भजो भगवान।
जमधर[1] जब लै जायँगे, पड़ा रहैगा म्यान ॥२॥
कबीर सोया क्या करै, सोये होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥३॥
कबीर सोया क्या करै, उट्ठि न रोवै दुक्ख।
जा का बासा गोर[2] मैं, सो क्यौं सोवै सुक्ख ॥४॥
कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौंप।
ये दम हीरा लाल है, गिनि गिनि गुरु को सौंप ॥५॥
कबीर सोया क्या करै, काहे न देखै जागि।
जा के सँग तैं बीछुरा, ताही के सँग लागि ॥६॥
नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जागु।
और रसायन छाड़ि कै, नाम रसायन लागु ॥७॥
सोया सो निरफल गया, जागा सो फल लेय।
साहिब हक्क न राखसी, जब माँगै तब देय ॥८॥

---

(१) तलवार। (२) क़बर।

पिउ पिउ कहि कहि कूकिये, ना सोइये इसरार[1]।
रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥९॥
सोता साध जगाइये, करै नाम का जाप।
यह तीनौं सोते भले, साकित सिंह अरु साँप ॥१०॥
जागन से सोवन भला, जो कोइ जानै सोय।
अंतर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय ॥११॥
जागन में सोवन करै, सोवन में लौ लाय।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥१२॥
कबीर खालिक जागता, और न जागै कोय।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी सोय ॥१३॥

निंदा का अंग।

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१॥
निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान।
निर्मल तन मन सब करै, बकै आनही आन ॥२॥
निन्दक हमरा जनि मरो, जीवो आदि जुगादि।
कबीर सतगुरु पाइया, निन्दक के परसादि ॥३॥
कबीर मेरे साधु की, निन्दा करौ न कोय।
जो पै चन्द्र कलंक है, तऊ उँजारा होय ॥४॥
जो कोइ निन्दै साधु को, संकट आवै सोइ।
नरक माहिं जनमै मरै, मुक्ति न कबहूँ होइ ॥५॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥६॥

---

(१) भेद।

साता सायर[1] मैं फिरा, जंबु दीप दै पीठ।
पर निन्दा नाहीं करै, सो कोइ बिरला दीठ ॥७॥
दोष पराया देख करि, चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई, जा का आदि न अंत ॥८॥
निन्दक एकहु मत मिलै, पापी मिलौ हजार।
इक निन्दक के सीस पर, कोटि पाप को भार ॥९॥

[अहार]

स्वादिष्ट भोजन का अंग।

खट्टा मीठा चरपरा, जिह्वा सब रस लेय।
चोरोँ कुतिया मिलि गई, पहरा किस का देय ॥१॥
खट्टा मीठा देखि कै, रसना मेलै नीर।
जब लगि मन पाको नहीं, काँचो निपट कबीर ॥२॥
अहार करै मन भावता, जिह्वा केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरै, को कहिहै परसाद ॥३॥
माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रह्यो लपटाय।
तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥४॥

मांस अहार का अंग।

माँस अहारी मानवा, परतछ राछस अंग।
ता की संगति मत करो, परत भजन में भंग ॥१॥
माँस मछरिया खात हैं, सुरा पान से हेत।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी का खेत ॥२॥

---

(१) समुद्र।

माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
आँखि देखि नर खात है, ते नर नरकहिं जाय ॥३॥
यह कूकर को खान है, मनुष देँह क्योँ खाय।
मुख में आमिख[1] मेलता, नरक परै सो जाय ॥४॥
बिष्टा[2] का चौका दिया, हाँड़ी सीझै हाड़।
छूत बरावै चाम की, ता का गुरु है राड़[3] ॥५॥
हनिया सोई हनसी, भावै जानि बिजान।
कर गहि चोटी तानसी, साहिब के दीवान ॥६॥
तिल भर मछरी खाइकै, कोटि गऊ दै दान।
कासी करवत लै मरै, तौ हू नरक निदान ॥७॥
बकरी पाती खात है, ता की काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात हैं, तिन का कौन हवाल ॥८॥
पीर सबन को एकसी, मूरख जानै नाहिं।
अपना गला कटाइ कै, भिस्त[4] बसै क्योँ नाहिं ॥९॥
मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं।
साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं ॥१०॥
काला मुँह कर करद[5] का, दिल से दुई निवार।
सबही सुरति सुभान[6] की, अहमक मुला[7] न मार ॥११॥
गल गुस्सा को काटिये, मियाँ कहर को मार।
जो पाँचो बिस्मिल[8] करै, तो पावै दीदार ॥१२॥
दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
येह खून वह बंदगी, कहु क्योँ खुसी खुदाय ॥१३॥

---

(१) माँस। (२) गोबर। (३) कलह ? (४) बिहिश्त=बैकुंठ। (५) छुरी। (६) खुदा। (७) मुल्ला। (८) ज़िबह, अधमुआ।

खुस खाना है खीचरी, माहिँ परा टुक नोन।
माँस पराया खाइ करि, गला कटावै कौन ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जो मान हमार।
जा का गर तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हार ॥१५॥
हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाहिँ।
कह कबीर दोनोँ गये, लख चौरासी माहिँ ॥१६॥

नशे का अंग।

गऊ जो बिष्टा भच्छई, बिप्र तमाखू भंग।
सस्तर बाँधै दर्सनी[1], यह कलिजुग का रंग ॥१॥
कलिजुग काल पठाइया, भाँग तमाल[2] अफीम।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीँ, बसै इन्हीँ की सीम[3] ॥२॥
भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ[4] और सराब।
कह कबीर इन को तजै, तब पावै दीदार ॥३॥
औगुन कहूँ सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय।
मानुष से पसुआ करै, द्रब्य गाँठि को देय ॥४॥
अमल अहारी आतमा, कबहुँ न पावै पारि।
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागौ ताहि बिचारि ॥५॥
मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय।
तनमद मनमद जातिमद, मायामद सब लोय ॥६॥
बिद्यामद और गुनहुँ मद, राज मद्द उनमद्द।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद्द ॥७॥
कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिँ।
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला नाहिँ ॥८॥

---

(१) कनफटा साधू। (२)-तमाखू। (३) हद मेँ। (४) अफ़ीम।

सादे खान पान का अंग।

रूखा सूखा खाइ कै, ठंढा पानी पीव।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ॥१॥
कबीर साईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय।
चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, (कहूँ) रूखो छीनि न लेय ॥२॥
आधी अरु रूखी भली, सारी से संताप।
जो चाहैगा चूपड़ी, (तो) बहुत करैगा पाप ॥३॥
अन पानी आहार है, स्वाद संग नहिं खाय।
जो चाहै दीदार को, (तो) चुपड़ी चखै बलाय ॥४॥

आनदेव की पूजा का अंग।

सौ बरसाँ भक्ती करै, इक दिन पूजै आन।
सो अपराधी आत्मा, परि चौरासी खान ॥१॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै आन को जाप।
ता के मुहड़े दीजिये, नौसादर को बाप[1] ॥२॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै और को जाप।
बेस्या केरे पूत ज्यौं, कहै कौन को बाप ॥३॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै अन्य की आस।
कह कबीर ता दास का, होय नरक में बास ॥४॥
कामी तरै क्रोधी तरै, लोभी तरै अनंत।
आन उपासी कृतघ्नी, तरै न गुरू कहंत ॥५॥
देवी देव मानै सबै, अलख न मानै कोय।
जा अलक्ख का सब किया, ता से बेमुख होय ॥६॥

---

(१) विष्ठा।

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥७॥

मूरत पूजा का अंग।

पाहन केरी पूतरी, करि पूजै करतार।
वाहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार ॥१॥

काजर केरी कोठरी, मसि के किये कपाट।
पाहन भूली पिरथवी, पंडित पारी बाट ॥२॥

पाहन को क्या पूजिये, जो नहिँ देइ जवाब।
अंधा नर आसामुखी, योँहीं होय खराब ॥३॥

हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डारा सिर का बोझ ॥४॥

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पुजूँ पहार।
ता तेँ यह चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥५॥

मूरति धरि धंधा रचा, पाहन का जगदीस।
मोल लिया बोलै नहीं, खोटा बिस्वा बीस ॥६॥

पाथर ही का देहरा, पाथर ही का देव।
पूजनहारा आँधरा, क्योंकरि मानै सेव ॥७॥

पाहन पानी पूजि कै, सेवा जासी बाद।
सेवा कीजै साध की, सत्तनाम करु याद ॥८॥

पाथर लै देवल चुना, मोटी मूरति माहिँ।
पिंड फूटि परबस रहै, सो लै तारै काहि ॥९॥

कागद केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।
कहै कबीर विचारि कै, भव बूड़ा संसार ॥१०॥

कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं हरि बसै, तू ताही लौ लाय ॥११॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान ॥१२॥
काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥१३॥
मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
जेहि कारन तूँ बाँग दे, सो दिलही अंदर जोय ॥१४॥
तुर्क मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाय।
अलख पुरुष घट भीतरे, ता का द्वार न पाय ॥१५॥
पूजा सेवा नेम ब्रत, गुड़ियन का सा खेल।
जब लगि पिव परसै नहीं, तब लगि संसय मेल ॥१६॥
कबीर या संसार को, समझायौ सौ बार।
पूँछ तो पकड़े भेड़ की, उतरा चाहै पार ॥१७॥

तीर्थ ब्रत का अंग।

जप तप दीखै थोथरा, तीरथ ब्रत बिस्वास।
सूआ सैंभल सेइ कै, फिर उड़ि चला निरास ॥१॥
तीरथ ब्रत विष बेलरी, सब जग राखा छाय।
कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय ॥२॥
तीरथ ब्रत करि जग मुआ, जूड़े पानी न्हाय।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥३॥
तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न उतरिया, मन दस लाये और ॥४॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥५॥
निर्मल गुरु के नाम से, कै निर्मल साधू भाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥६॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लगि साधु न सेइहै, तब लगि काँचा काम ॥७॥
मन में तो फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म।
कोटि करम सिर पर चढ़ै, चेति न देखै मर्म ॥८॥
और धरम सब करम हैं, भक्ति धरम निःकर्म।
नदिया हत्यारी अहै, कुवा बावड़ी भर्म ॥९॥
कर्म हमारे काटिहै, कोइ गुरुमुख कलि माहिं।
कहै हमारी बासना, सो गुरुमुख कहियत नाहिं ॥१०॥
बहुत दान जो देत हैं, करि करि बहुतै आस।
काहू के गज होहिंगे, खइहैं सेर पचास ॥११॥

पंडित और संस्कृत का अंग।

संस्कृतहिं पंडित कहै, बहुत करै अभिमान।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥१॥
संस्किरत संसार में, पंडित करै बखान।
भाषा भक्ति दृढ़ावही, न्यारा पद निरबान ॥२॥
संसकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥३॥
पूरन बानी बेद की, सोहत परम अनूप।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप ॥४॥

बानी तो पानी भरै, चारो बेद मजूर।
करनी तो गारा करै, रहनी का घर दूर ॥५॥
वेद कहै जानौं न कछु, स्वासा के सँग आय।
दरस हेतु करूँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥६॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥७॥
पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईंट।
कबीर अंतर प्रेम की, लगी न एको छींट ॥८॥
पंडित पोथी बाँधि के, दे सिरहाने सोय।
वह अच्छर इन में नहीं, हँसि दे भावै रोय ॥९॥
पंडित केरी पोथियाँ, ज्यौं तीतर को ज्ञान।
औरन सगुन बतावही, अपना फंद न जान ॥१०॥
पढ़े गुने सीखे सुने, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, येही दुख का मूल ॥११॥
कबीर पढ़ना दूर करु, पुस्तक देहु बहाय।
बावन अच्छर सोधि के, सत्त नाम लौ लाय ॥१२॥
पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुसकिल ॥१३॥
पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिं।
औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिं ॥१४॥
नहिं कागद नहिं लेखनी, नहिं अच्छर है सोय।
पाँचहि पुस्तक छाड़ि कै, पंडित कहिये सोय ॥१५॥
धरती अम्बर ना हता, कौन था पंडित पास।
कौन महूरत थापिया, चाँद सूर आकास ॥१६॥

पंडित बोरौ पत्तरा, काजी छोड़ु कुरान ।
वह तारीख बताइदे, थे न जमीं असमान ॥१७॥
बाम्हन गुरु है जगत का, करम भरम का खाहि ।
उरझि पुरझि के मरि गया, चारो बेदों माहिं ॥१८॥
बाम्हन गदहा जगत का, तीरथ लादा जाय ।
जजमान कहै मैं पुन किया, वह मिहनत का खाय ॥१९॥
बाम्हन तेँ गदहा भला, आन देव तेँ कुत्ता ।
मुलना तेँ मुरगा भला, सहर जगावै सुत्ता ॥२०॥
कबीर बाम्हन की कथा, सो चोरन की नाव ।
सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ लै जाव ॥२१॥
कबीर बाम्हन बूड़िया, जनेऊ केरे जोरि ।
लख चैारासी माँगि लइ, सतगुरु सेती तोरि ॥२२॥
कलि का बाम्हन मसखरा, ताहि न दीजै दान ।
कुटुँब सहित नरकै चला, साथ लिया जजमान ॥२३॥

मिश्रित का अंग ।

साईं केरे बहुत गुन, लिखे जो हिरदे माहिं ।
पिऊँ न पानी डरपता, मत वै धोये जाहिं ॥१॥
सुपने में साईं मिले, सोवत लिया जगाय ।
आँखि न खोलूँ डरपता, मत सुपना ह्वै जाय ॥२॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहिं ।
लोचन राते सुभ घड़ी, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥३॥
कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय ।
हिलि मिलि कै सँग खेलई, कधी बिछोह न होय ॥४॥

यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कूँ पाँय ॥५॥
तरवर तासु बिलंबिये, बारह मास फलंत।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करंत ॥६॥
तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेँह।
परमारथ के कारने, चारौ धारैँ देँह ॥७॥
नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान।
ये तीनोँ बहुतै नवैँ, चीता चोर कमान ॥८॥
कबीर सुख को जाय था, आगे मिलिया दुक्ख।
जाहु सुक्ख घर आपने, हम जानैँ अरु दुक्ख ॥९॥
कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिँ लेय।
पानी पावै स्वाँति का, सोभा सागर देय ॥१०॥
ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति[1] को याँचई, कै दुख सहै सरीर ॥११॥
पड़ा पपीहा सुरसरी[2], लगा बधिक का बान।
मुख मूँदे सुत गगन मेँ, निकस गये योँ प्रान ॥१२॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीँ, पन छूटे है लाज ।१३॥
चात्रिक[3] सुतहिँ पढ़ावही, आन नीर मत लेय।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाँति बूँद चित देय ॥१४॥
जा के हिरदे गुरु बसैँ, सो जन कल्पै काहि।
एकै लहर समुद्र की, दुख दरिद्र सब जाहि ॥१५॥
प्रेम प्रीति से जो मिलै, ता से मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥१६॥

(१) इन्द्र। (२) गंगा। (३) पपीहा।

हाथी अटका कीच में, काढ़े कोइ समरत्थ ।
कै निकसै बल आपने, कै धनी पसारै हत्थ ॥१७॥
भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक बिपरीत ।
कह कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत ॥१८॥
काँसे ऊपर बीजुली, परै अचानक आय ।
ता तें निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय ॥१९॥
लम्बा मारग दूर घर, बिकट पंथ बहु मार ।
कह कबीर कस पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥२०॥
कबीर मैं तो बैठि कै, सब से कहूँ पुकारि ।
धरा[1] धरै सो धरि कुटै, अधर धरै सो तारि ॥२१॥
हेरत हेरत हे सखी, हेरत गया हिराय ।
बुन्द समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय ॥२२॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय ।
समुँद समाना बुंद में, सो कित हेरा जाय ॥२३॥
बुंद समानी समुँद में, सो जानै सब कोय ।
समुँद समाना बुंद में, जानै बिरला कोय ॥२४॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि ।
कबीर समाना बूझ में, जहाँ दूसरा नाहिं ॥२५॥
गुरू नहीं चेला नहीं, नहिं मुरीद नहिं पीर ।
एक नहीं दूजा नहीं, बिलमे तहाँ कबीर ॥२६॥
बृच्छ जो ढूँढ़ै बीज को, बीज बृच्छ के माहिं ।
जीव जो ढूँढ़ै पीव को, पीव जीव के माहिं ॥२७॥
आदि होत सब आप में, सकल होत ता माहिं ।
ज्यों तरवर के बीज में, डार पात फल छाहिं ॥२८॥

---

(१) पृथ्वी ।

खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होय ॥२९॥
घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा[1] लेय।
सत्तनाम जाने बिना, उलटि नरक में देय ॥३०॥
जब का माई जनमिया, कतहुँ न पाया सुक्ख।
डारी डारी मैं फिरौं, पात पात में दुक्ख ॥३१॥
क़बीर मैं तो तब डरौं, जो मुझही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥३२॥
सात दीप नौखंड में, तीन लोक ब्रह्मंड।
कह कबीर सब को लगै, दैंह धरे का दंड ॥३३॥
दैंह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥३४॥
एक बस्तु के नाम बहु, लीजै बस्तु पिछानि।
नाम पच्छ नहिं कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥३५॥
सब काहू का लीजिये, साचा सबद निहारि।
पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर बिचारि ॥३६॥
देखन ही की बात है, कहने को कछु नाहिं।
आदि अंत को मिलि रहा, हरिजन हरि ही माहिं ॥३७॥
सबै हमारे एक हैं, जो सुमिरै सत नाम।
बस्तु लही पहिचानि कै, बासन से क्या काम ॥३८॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछिताये होत का, चिरियाँ चुग गईं खेत ॥३९॥
कबीर दर दीवान जो, क्योंकर पावै दाद।
पहिले बुरा कमाइ कै, पाछे करै फ़रियाद ॥४०॥
कौन कसै अरु कौन क़सावै, कौन जो लेइ छुड़ाय।
यह संसा जिव ह्वै रही, साधु कहौ समझाय ॥४१॥

(१) तलाशी।

काल कसै अरु कर्म कसावै, सतगुरु लेइ छुड़ाय।
कहै कबीर बिचारि कै, सुनौ संत चित लाय ॥४२॥
माटी मेँ माटी मिली, मिली पौन से पौन।
मैँ तोहि बूझौँ पंडिता, दो मेँ मूवा कौन ॥४३॥
कुमति हती सो मिटि गई, मिट्यो बाद हंकार।
दूनौँ का मरना भया, कहै कबीर बिचार ॥४४॥
जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नारि।
जो चाहै दीदार को, ऐती बस्तु निवारि ॥४५॥
करता दीखै कीरतन, ऊँचा करि के तुंड।
जानै बूझै कछु नहीं, योँ ही आधा रुंड ॥४६॥
मो मेँ इतनी सक्ति कहँ, गाऔँ गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥४७॥
रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्या रोय।
दिल मंदिर में पैठि करि, तानि पिछौरा सोय ॥४८॥
सब से भली मधूकरी, भाँति भाँति का नाज।
दावा काहू का नहीं, बिना बिलायत राज ॥४९॥
भौसागर जल बिष भरा, मन नहिँ बाँधै धीर।
सबद-सनेही पिउ मिला, उतरा पार कबीर ॥५०॥
हंसा बगुला एक रँग, मानसरोवर माहिँ।
बगुला ढूँढै माछरी, हंसा मोती खाहिँ ५१॥
तन संदूक मन रतन है, चुपके दे हठ ताल।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी सबद रसाल ॥५२॥
हीरा गुरु का सबद है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा अगम अलेख ॥५३॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥५४॥

याहि उदर के कारने, जग याच्यो निसि जाम ।
स्वामीपन सिर पर चढ्यौ, सर्यो न एकौ काम ॥५५॥
परतिष्ठा का टोकरा, लीये डोलै साथ ।
सत्त नाम जाना नहीं, जनम गँवाया बाद ॥५६॥
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहा बँधाय ।
रुपया देवै ब्याज पर, लेखा करत दिन जाय ॥५७॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतरि धरै खटाइ ।
राज दुवारे यों फिरै, ज्यौं हरियाई गाइ ॥५८॥
राज दुवारे साधुजन, तीनि बस्तु को जाय ।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥५९॥
कबीर कलिजुग कठिन है, साधु न मानै कोय ।
कामी क्रोधी मसखरा, तिन कैा आदर होय ॥६०॥
सतगुरु की साची कथा, कोई सुनही कान ।
कलिजुग पूजा डिम्भ की, बाजारी कौ मान ॥६१॥
देखन को सब कोइ भला, जैसा सीत का कोट ।
देखत ही ढहि जायगा, बाँधि सकै नहिं पोट ॥६२॥
पद गावै मन हरखि कै, साखी कहै अनन्द ।
तत्त मूल नहिं जानिया, गल में परिगा फंद ॥६३॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु से हेत ।
कह कबीर क्यौं नीपजै, बीज बिहूना खेत ॥६४॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं पदहिं समाय ।
कोटिक गुन सुवना पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥६५॥
ब्रह्महिं तें जग ऊपजा, कहत सयाने लोग ।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु, जगत न त्यागन जोग ॥६६॥
ब्रह्म जगत का बीज है, जो नहिं ता को त्याग ।
जगत ब्रह्म में लीन है, कहहु कौन बैराग ॥६७॥

नेत नेत जेहिँ बेद कहि, जहाँ न मन ठहराय।
मन बानी की गमि नहीं, ब्रह्म कहा किन आय ॥६८॥
एक कर्म है बोवना, उपजै बीज बहूत।
एक कर्म है भूँजना, उदय न अंकुर सूत ॥६९॥
चाँद सुरज निज किरनि को, त्याग कवन बिधि कीन।
जा की किरनी ताहि मेँ, उपजि होत पुनि लीन ॥७०॥
जब दिल मिला दयाल से, फाँसी गई बिलाय।
मोहिँ भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥७१॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिँ।
पाला गलि पानी भया, योँ हरिजन हरि माहिँ ॥७२॥
कबीर मोह पिनाक[1] जग, गुरु बिनु टूटत नाहिँ।
सुर नर मुनि तोरन लगे, छुवत अधिक गरुआहि ॥७३॥
साधू ऐसा चाहिये, ज्यौँ मोती मेँ आब।
उतरे तेँ फिरि नहिँ चढ़ै, अनादर होइ रहाब ॥७४॥
मूरख लघु को गरु कहैँ, लघु गरु कहैँ बनाय।
यह अबिचारी देखि कै, कहत कबीर लजाय ॥७५॥
कबीर निगुरे नरन कैा, संसय कबहुँ न जाय।
संसय छूटै गुरु कृपा, तासु बिमुख जहँड़ाय[2] ॥७६॥
कबीर जो गुरु-बेमुखी, (तेहि) ठौर न तीनिउँ लोक।
चौरासी भरमत फिरै, भोगै नाना सोक ॥७७॥
गुरू झरोखे बैठि के, सब का मुजरा लेइ।
जैसी जा की चाकरी, तैसा ता को देइ ॥७८॥
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माहिँ।
सैँतमैँत ही देत हैाँ, गाहक कोई नाहिँ ॥७९॥

॥ इति ॥

(१) धनुष। (२) ठगाय।

॥ भूमिका ॥

लोक-प्रसिद्ध श्री गोस्वामी तुलसीदासजी कृत सरस बाणी और अद्भुत भक्तिरस को कौन नहीं जानता। आज उन्हीं गोस्वामीजी की एक ज्ञान बैराग्यमय बारहमासी सर्व सज्जनौं के कृतार्थ हेतु उपस्थित करता हूं। इस बारहमासी मैं गोस्वामी जी ने वह ज्ञान बैराग्य कूट कूट कर भरा है कि श्रवण रंध्र मैं प्रवेश करते ही रोमांच खड़े हो जाते हैं, थोड़ी देर के लिये इस असार संसार से चित्त हट कर यह शोकमय भवसागर निरस सा प्रतीत होने लगता है।

जहाँ तक मैं जानता हूँ यह बारहमासी पहिले कहीं नहीं छपी है परंतु बुँदेलखंड निवासियौं मैं बहुधा ऐसे पुराने सज्जन मिलैंगे जिन को इसकी एक एक कड़ी कंठस्थ है। अपने मित्र भगवत-भक्त बाबू माधो-प्रसाद खँपरिया के मुख से सुनकर मैंने यह अद्भुत बाणी लिखी है और अब उसे छपवा कर प्रेमी जनौं के भैंट करता हूं।

बिजावर-निवासी,

पं० पुरुषोत्तम भट्ट।

बेलवेडियर प्रेस—हमको इस बारहमासी की भाषा से संदेह होता है कि यह रामायन के ग्रंथकरता श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की बानी नहीं है जिनका जन्म चित्रकोट के पास राजापुर गाँव मैँ संबत १५८९ बिक्रमी मैँ और देहांत काशी मैँ संबत १६८० मैँ हुआ। पर जो हो यह बारहमासी ऐसी मधुर और वैराग व प्रेम के उपदेश रस मैँ पगी है कि अवश्य उसी नाम के किसी बड़े महातमा की बनाई हुई है इस लिये हम उसे उत्साह से छापते हैँ और उस के भेजने के लिये पंडित पुरुषोत्तम भट्ट जी को धन्यवाद देते हैँ।

—o—

संतबानी पुस्तक-माला के बहुत से सब्सक्रैबरोँ की सलाह से यह पुस्तक बड़े पैमाने मैँ छापी जाती है जिस मैँ और पुस्तकोँ के साथ इस की जिल्दबंदी हो सके।

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कृत

बारहमासी

॥ चैत्र ॥

चैत चिरजीवै न कोई, जीव जम को ग्रास है ।
मूढ़ निश्चय समुझ अन्धे, स्वप्न सो जग बास है ॥
विषय तृष्णा लोभ बंशी, मोह माया जार है ।
तात माता भ्रात बनिता, झूठ सब परिवार है ॥
जठर मेँ जिन प्राण राखे, सो बिसारे बावरे ।
देख मृग-तृष्णा जो भूले, वृथा धोखा खाव रे ॥
राम भजु मन पाय नर तन, बनो अच्छो दाव रे ।
ऐसो अवसर खोय के, फिर मूढ़ गोता खाव रे ॥

॥ बैशाख ॥

भजन कर भगवान को मन, आइयो बैसाख रे ।
घटत छिन छिन अवधि तेरी, जायगी मिलि खाख रे ॥
कठिन काल कराल सिर पर, करि अचानक घात रे ।
नाम बिन जमदंड त्रासन, कोइ न दैहै हाथ रे ॥
सीस दस दुर्योधनादिक, गये सब मिलि धूर रे ।
हरि बिमुख बिस्राम नाहीँ, समुझि देखो कूर रे ॥
नीर बुल्ला जस कुसुम रँग, ऐसही संसार रे ।
सार केवल नाम हरि को, ताहि नाहिँ बिसार रे ॥

॥ ज्येष्ठ ॥

जेठ जग अति धूप गाढ़ी, तेज तामस घाम रे ।
तपत है त्रयताप सौं तन, मूढ़ बिनु हरि नाम रे ॥
लपट तृष्णा अधिक बाढ़ी, चहूँ दिश झहरात रे ।
चलतु है निशि दिवस जग मैं, जरतु है जिय गात रे ॥
संतोष दाया क्षमा मन मैं, शील शीतल छाँय रे ।
साधु संगत भजन करि ले, नहीं और उपाय रे ॥
कोटि कोटि उपाय कर मन, जीव जरनि न जाय रे ।
पियौ अमृत नाम हरि को, तुरत तपति बुझाय रे ॥

॥ आषाढ़ ॥

लग्यो मास असाढ़ आगम, का सँवारत गेह रे ।
नाम सीताराम को भजु, नाहिँ निश्चल देह रे ॥
महल कंचन के बने, बहु भाँति शोभा होति रे ।
जटित मणिगण के झरोखा, दीप माणिक जोति रे ॥
यदपि ऐसो धाम तेरो, रच्यो श्रम करि सूम रे ।
भजन बिन नहिँ सोहै जैसे, अशुभ मरघट भूमि रे ॥
लग्यो धंधो धाम को, तू करतु है केहि काम रे ।
वृथा जीवन जात जग मैं, लेत नहिँ हरि नाम रे ॥

॥ स्रावन ॥

संसार सागर बढ़्यो सावन, अगम अकथ अपार रे।
नाव जीरण बोझ भारी, नाहिं वारा पार रे॥
जात बूड़्यो मूढ़ अंधे, पर्‍यो माँझाधार रे।
बैठि नाम जहाज हरि के, उतरु पैले पार रे* ॥
कर्म कीच बढ़ी जहाँ तहँ, मलिन मन चित देहि रे।
अमल नीर बिबेक सौँ, तू बिमल मन कर लेहि रे॥
जन्म जन्म अनेक के अघ, ओघ दारुण जे करे।
अग्नि किनका नाम हरि को, पुंज पापन के जरे॥

॥ भादौँ ॥

मास भादौँ अति भयानक, गहगहे अति गाजहीं।
तन गगन मैँ कूच के, श्वासा नगारे बाजहीं॥
दुरित प्रगटत थिरत नाहीं, चित्त चंचल दामिनी।
दंभ जुगनू निशि अविद्या, अविवेक कारी यामिनी॥
करौ हिय मैँ आयके, हरिनाम भानु प्रकाश रे।
दंभ जुगनू निशि अविद्या, होय सब कर नाश रे॥
जगत आशा कान कुल तजि, करौ हरि सौँ हेत रे।
मेटि के अघ ओघ जन के, आपनो कर लेत रे॥

---

* पल्ली पार।

॥ क्वाँर ॥

क्वाँर कुल की भीर भारी, रूप शोभा धाम रे ।
देखिके जिन भूल कोऊ, नाहिँ आवत काम रे ॥
बसत पक्षी वृक्ष पै निशि, आय के बहु भाँति रे ।
प्रातही दिशि समुझ अपनी, तुरतही उड़ि जात रे ॥
पंथ मेँ पंथी अनेकन, जुरे सरिता घाट रे ।
नाव चढ़ि भये पार पैले, गये निज निज बाट रे ॥
ऐसही चल जात सब जग, जात नहिँ कोइ साथ रे ।
नेह कर भगवान सोँ, जग मेँ सखा पितु मात रे ॥

॥ कार्तिक ॥

मास कातिक बालकन सँग, खेल बालापन गयो ।
जोर जोबन जुबा तन मेँ, नाम हरि को नहिँ लयो ॥
जरा तन भइ छीन काया, थके कर पग नैन रे ।
घटी प्रीति न लगत नीके, चंद्रबदनी बैन रे ॥
बीत योँ पन तीनहूँ, कफ आइयो पित बात रे ।
काल सिर पर निकट आयो, मूढ़ मन पछितात रे ॥
अश्व गज रथ माल मुक्ता, जात नहिँ कछु साथ रे ।
राम-बिमुख गँवाय के सब, चलत शठ धुनि माथ रे ॥

॥ अगहन ॥

मास अगहन रहट घरिया, चलत चित दै देख रे।
जात आवत भरी रीती,* ऐसही जग लेख रे॥
तैसही फल चाखिहै, जस करै करनी आप है।
आन स्वारथ पुण्य सोई, आन पीड़ा पाप है॥
देख के परदोष रज सम, कहत गिरि सम सोय रे।
दोष अपने मेरु सम हैं, तिन्हैं राखत गोय† रे
आय जग मैं बदी तजु, यामैं कछू न सवाद रे।
द्रोह पर परदार‡ निंद्रा, छाडु मिथ्या बाद रे॥

॥ पूष ॥

पूस कीट पतंग होते, किधौं तरवर पच्छि रे।
किधौं जल के जीव होते, किधौं सागर मच्छि रे॥
भ्रमत षट ऋतु दिवस निशि, तन सहत है बहु दुःख रे।
हरि बिमुख शठ जीव कतहूँ, नाहिं पावत सुःख रे॥
जगत सोवत फिरत इत उत, अवधि छिन छिन घटतु रे।
सुबस रसना पाइ के, हरि नाम काहे न रटतु रे॥
फिरत भटकत जगत मैं, हरि हृदय जीवन मूरि रे।
नाम को जान्यो नहीं, सब जानिबे मैं धूरि रे॥

---

* ख़ाली। † गुप्त। ‡ पराई स्त्री।

॥ माघ ॥

माघ कुल गुरु शील शोभा, बन्यो रूप सरूप रे ।
भक्ति बिन भगवंत की नर, नीर बिन जिमि कूप रे ॥
पतित-पावन नाम हरि को, ताहि हिरदे राख रे ।
नाम दीन्ही गति खलन को, वेद जा की साख रे ॥
व्याध* सदना श्वपच गणिका, भीलनी जप नाम को ।
बिना जप तप योग संयम, गये हैं निज धाम को ॥
होइ कोऊ रंक राजा, ऊँच नीच न जाति रे ।
बान है रघुनाथ की, निज दासही सों नात रे ॥

॥ फाल्गुण ॥

मास फागुन धन रतन रथ, देइ कंचन दान रे ।
अश्व गज गो भूमि सेज्या, नाहिं नाम समान रे ॥
भ्रमत तीरथ सकल व्रत, कर जोग साधन सोय रे ।
यज्ञ जप तप नेम हरि के, नाम सम नहिं होय रे ॥
सिर जटा नख मौन धारत, गेह तज बन बास रे ।
वेद शास्त्र पुराण पढ़ि, नहिं जात ओसन प्यास रे ॥
तर्यो चाहै जीव जो तूँ, त्यागु आन उपाव रे ।
विश्वास करु निज दास तुलसी, प्रेम हरि गुण गाव रे ॥

---

* बालमीकजी जो जाति के बहेलिया थे ।

फ़िहरिस्त छपी हुई पुस्तकौं की

कबीर साहिब का साखी-संग्रह (२१५२ साखियाँ) ... ... ।।।)।।
कबीर साहिब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ तीसरा एडिशन ।।)
" " " भाग २ ... ... ।।)
" " " भाग ३ ... ... ।)
" " " भाग ४ ... ... ≈)
" " ज्ञान-गुदड़ी रेखते और झूलने ... ... ।)
" " अखरावती ... ... ~)
" " अखरावती का पूरा ग्रंथ जिस में १७ चौपाई दोहे और सोरठे विशेष हैं ... ... ~)।।
धनी धरमदास जी की शब्दावली और जीवन-चरित्र ... ... ।≈)
तुलसी साहिब (हाथरस वाले) की शब्दावली मय जीवन-चरित्र भाग १ ।।।)
" " " " भाग २ .. ।।।)
" " रत्न सागर मय जीवन-चरित्र .. ।।।≈)
" " घट रामायन दो भागों में, मय जीवन-चरित्र
पहिला भाग ... १)
" " दूसरा भाग . १)
गुरु नानक साहिब की प्राण-संगली सटिप्पण, जीवन-चरित्र सहित
पहिला भाग ... १)
" " " " दूसरा भाग ... १)
दादू दयाल की बानी भाग १ (साखी) ... ... १~)
" " भाग २ (शब्द) ... ... ।।।~)
सुंदर विलास और सुंदरदास जी का जीवन-चरित्र ... ।।≈)
पलटू साहिब की शब्दावली (कुंडलिया इत्यादि) और जीवन-चरित्र, भाग १ ।।)
" " " भाग २ ... ... ।~)।।
जगजीवन साहिब की शब्दावली और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ।।~)
" " " भाग २ ... ... ।।~)
दूलन दास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ≈)
चरनदासजी की बानी और जीवन-चरित्र, भाग १ ... ... ।।)।।
" " " भाग २ .. ... ।≈)।।
ग़रीबदास जी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ।।।≈)
रैदासजी की बानी और जीवन-चरित्र ... ... ।~)।।

Printed at The Belvedere Steam Printing Works, Allahabad, by E. Hall.